विश्वकोशीय शिक्षा पाठमाला-3

बाल मनोविकास

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार

शिक्षा पाठमाला-3

बाल मनोविकास

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा मंत्रालय
भारत सरकार
1985

संपादन परामर्श मंडल

संपादन परामर्श

प्रो. मलिक मोहम्मद

अध्यक्ष, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

श्री भवानी दत्त पंड्या

उपनिदेशक (सामाजिक विज्ञान), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

श्रीमती प्रेम कपूर

सहायक निदेशक (शिक्षा), वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

श्रीमती कांति सक्सेना

अनुसंधान सहायक, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग

तकनीकी परामर्श

प्रो. राम नारायण महरोत्रा

आचार्य, कन्द्रीय शिक्षा संस्थान, शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-3

मुद्रण एवं प्रकाशन

1. श्री भवानी दत्त पंड्या	उपनिदेशक
2. डा. बालकृष्ण सिन्हा	सहायक शिक्षा अधिकारी
3. श्री अरविन्द आशधीर	अनुसंधान सहायक
4. श्री आलोक वाही	कलाकार
5. श्री राम फूल	

प्रस्तावना

पिछले तीस-पैंतीस वर्षों से सामाजिक विज्ञानों का महत्व पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ा है। सामान्य जीवन, अध्ययन-अध्यापन, सामाजिक प्रयोग-व्यवहार आदि विविध क्षेत्रों में सामाजिक विज्ञानों की महत्ता और उपयोगिता अधिकाधिक स्वीकार्य हुई है। इन वर्षों में प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में सामाजिक विज्ञानों के विभाग स्थापित हुए हैं और यह भी प्रयत्न किया गया है कि सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन के लिए स्वतंत्र विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाए ताकि इन विज्ञानों के अंतर्गत आने वाले विषयों में पारस्परिक समन्वय और अनुसंधान बड़े पैमाने पर किया जा सके।

उक्त स्थिति को ध्यान में रखते हुए विद्वानों के परामर्श से यह निश्चय किया गया है कि सामाजिक विज्ञानों के ऐसे संदर्भ ग्रंथ तैयार किए जाएं जो शैक्षिक दृष्टि से महत्वपूर्ण और उपयोगी हों। पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय किया गया है कि मैकमिलन एंड फ्री-प्रैस द्वारा प्रकाशित 'इटरनेशनल इन्साएक्लोपीडिया ऑफ द सोशल साइंसेज़' में संकलित सामग्री को आधार मानते हुए उसमें भारतीय परिवेश के अनुरूप आवश्यक संशोधन-परिवर्धन करके विभिन्न विषयों में दो-दो, तीन-तीन सौ पृष्ठों की विश्वकोशीय पुस्तकें प्रकाशित की जाएं। विश्वकोशीय पाठमाला के इस क्रम में शिक्षा विषय से संबंधित दो पुस्तकें 'शिक्षा' तथा 'अध्ययन और अध्यापन' शीर्षक से पहले प्रकाशित हो चुकी हैं।

शिक्षा विषय के अन्तर्गत "बाल मनोविकास" शीर्षक से यह तीसरी पुस्तक-प्रस्तुत की जा रही है। वस्तुतः शिक्षा का उद्देश्य बालक का सर्वतोमुखी विकास-करना है जिससे वह अपनी नैसर्गिक प्रतिभाओं के उच्चतम शिखर तक पहुंच सके और समाज में महत्वपूर्ण योगदान कर सके। प्रस्तुत पुस्तक में इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए स्वयं सीखने तथा व्यक्तित्व के सर्वोत्तम विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं का संक्षेप में वर्णन किया गया है। हम उन सभी विद्वानों के

इस संकलन की सीमाओं से हम अवगत हैं फिर भी हमारा उद्देश्य है कि हिंदी माध्यम से अध्ययन और अध्यापन करने वालों को उपयोगी सामग्री प्रदान करके उनकी सहायता की जाए। यदि इस उद्देश्य की पूर्ति में थोड़ी-सी सफलता मिली तो हम अपने प्रयत्न को सार्थक समझेंगे।

प्रेम कपूर

सहायक निदेशक

विषय-सूची

	विषय	लेखक	पृष्ठ संख्या
1	कार्यक्रमबद्ध सीखना	श्री एस. पी. मलिक	1
2	बच्चों में सीखने की प्रक्रिया	श्रीमती प्रेम कपूर	45
3	बौद्धिक विकास	प्रो. सी. एच. के. मिश्रा	55
4	संप्रत्यय-निर्माण	प्रो. नरेन्द्र वैद्य	81
5	संवेदनात्मक तथा गत्यात्मक विकास	प्रो. सी. एल. आनन्द	121
6	अतिकल्पना	प्रो. सच्चिदानन्द ढौंडियाल	135
7	अभिवृत्ति परिवर्तन	श्रीमती प्रेम कपूर	163
8	क्षेत्र सिद्धांत	श्रीमती प्रेम कपूर	191
9	व्यक्तिगत भेद और लिंग भेद	श्रीमती प्रेम कपूर	215
10	शब्दावली		245
11	विशेषज्ञों का परिचय		253

चूंकि सीखने के लिए प्रस्तुत की जाने वाली सामग्री पर अनुक्रियाओं और प्रस्तुत करने के क्रमों का नियंत्रण होता है, इसलिए इस सामग्री को कार्यक्रमबद्ध सामग्री कहा जाता है। शिक्षार्थी द्वारा की गई अनुक्रियाएं निम्नलिखित हो सकती हैं, जैसे एक या कई शब्दों से कथन को पूरा करना, बहुविकल्पों में से एक विकल्प को चुनना, मौखिक अथवा गति अनुक्रियाओं से श्रव्य अथवा चाक्षुष उद्दीपनों का अनुकरण करना, सहमति अथवा असहमति का उल्लेख करना अथवा किसी समस्या को हल करना। यह योजना यांत्रिक युक्ति जैसे अध्यापन यंत्र और क्रमबद्ध पुस्तक के रूप में, जिसे कार्य क्रमबद्ध पाठ्यक्रम कहते हैं, शिक्षार्थी के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। आजकल यह कार्यक्रम प्रणाली अध्यापन/सीखने की प्रणालियों के रूप में विकसित की जा रही है, जिसमें टैप्स, स्लाईड्स फिल्म, कम्प्यूटर्स के फिल्म लूप्स आदि सम्मिलित हैं। इन सामग्रियों को इसलिए विकसित किया गया है कि अध्यापक की अनुपस्थिति में भी अनुशिक्षण की स्थिति बनाई रखी जा सके।

मनुष्य को सीखने के प्रयासों के लगभग सभी क्षेत्रों में बढ़ती हुई कठिनाईयों का सामना करने के लिए शिक्षा में कार्यक्रमबद्ध सीखने को प्रौद्योगिक प्रगति माना जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षित करने वाले व्यक्तियों की संख्या, शिक्षण द्वारा दिए जाने वाले ज्ञानों का बढ़ता क्षेत्र तथा एक जन समूह में विशिष्ट मामलों जसे प्रतिभाशाली, मन्दितमना, किशोरापचारी तथा निरक्षर व्यक्ति को शिक्षित करने में अनेक कठिनाइयां हैं। प्रबंध विकास और स्वचलन से संबद्ध प्रशिक्षण और पुर्नप्रशिक्षण की समस्याएं उन उद्योगों और व्यापारों की समस्याएं हैं जिन पर कार्यक्रमबद्ध सीखने के तकनीक लागू होते हैं।

इतिहास

सिडनी एल. प्रेसी---1924 में सिडनी एल. प्रैसी ने एक ऐसी युक्ति का प्रदर्शन किया था जिससे प्राप्तांक परीक्षणों को स्वतः दिया जा सकता था। ओहायो राज्य विश्वविद्यालय में शिक्षा मनोविज्ञान की कक्षाओं में इस युक्ति का वर्णन करते हुए प्रैसी ने अभ्यास और सस्वर पाठ के लिए इस मशीन की प्रभावशीलता के विषय में बताया था (1926–1960)। यह मशीन चार कुंजियों वाले टाइपराइटर की तरह होती है और विद्यार्थियों के सामने बहुविकल्प प्रश्न प्रस्तुत करती है। विद्यार्थी जब अध्यापक के व्याख्यानों पर आधारित पाठ्य-सामग्री ग्रहण कर लेता है और पाठ्य पुस्तक भी पढ़ लेता है तो उसके प्रतिधारण को इस यंत्र द्वारा मापा जाता है। छात्र द्वारा चुने गए विकल्पानुसार प्रत्येक मद के लिए यंत्र की कुंजी दबाई जाती है। यदि छात्र का विकल्प सही है तो यंत्र उसके लिए दूसरा प्रश्न प्रस्तुत करता है और यदि उसका विकल्प गलत है तो यंत्र आगे नहीं चलता। संपूर्ण परीक्षा के दौरान दबाई गई कुंजियों की संख्या मशीन में रिकार्ड

हो जाती है। एक अनुक्रिया के सही होने की तत्काल जानकारी अध्यापक के सामान्य व्यवहार से प्राप्त जानकारी की अपेक्षा थार्नडाइक द्वारा प्रतिपादित सीखने के कई नियमों को प्रभावशाली रूप स लागू करने में अधिक सहायक है। विशेषज्ञ श्री प्रैसी ने यह देखा कि रूढ़िबद्ध परीक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की तुलना में मशीन द्वारा साप्ताहिक-कार्य का परीक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की उपलब्धि अधिक थी।

शिक्षकों व प्रशिक्षकों ने प्रैसी द्वारा मशीन से संबंधित किए गए कार्य पर कोई ध्यान नहीं दिया। इस युक्ति को सुधारने और उसे विभिन्न आयु स्तरों के पाठ्यक्रमों पर लागू करके कई वर्षों बाद प्रैसी ने इस युक्ति पर कार्य करना बन्द कर दिया और कहा कि "शिक्षा अपरिष्कृत हस्तशिल्प" अवस्था में नहीं रह सकती बल्कि "मात्रात्मक उत्पादन विधियों" को प्रारंभ करने की आवश्यकता है (1932–1960)। उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की कि शिक्षा और सीखने के क्षेत्र में अनुसंधान और व्यापक प्रगति में सहायतार्थ नए उपकरण और सामग्रियों का विकास आवश्य होगा। चाहे वह सांस्कृतिक अकर्मण्यता के कारण हो और चाहे अन्य किसी कारण से हो, शिक्षकों और मनोवैज्ञानिकों में स्वचालित शिक्षण युक्तियाँ प्रचलित नहीं हुई हैं।

बी. एफ. स्किनर—बीस वर्ष बाद, 1950 के दशक में बी. एफ. स्किनर ने यह बताया कि सीखने की प्रौद्योगिकी के रूप में शिक्षा ने उन नियमों का सामान्य व्यवहार में प्रयोग नहीं किया जो सीखने से संबंधित अनुसंधान मे प्रेक्षित और पुष्ट किए गए हैं। स्किनर ने कहा कि शिक्षण और प्रशिक्षण में रत व्यक्तियों के लिए सीखने की प्रक्रिया के दो नियम हैं जिन पर उन्हें ध्यान देना है। पहले नियम के अनुसार "पुनर्बलन की आकस्मिकताएं" हैं जिन्हें उन्होंने थॉर्नडाइक के "प्रभाव नियम" का गम्भीर प्रयोग कहा है। वह यह निश्चित रूप से मानते हैं कि छात्रों के व्यवहार से वांछित अनुक्रियाएं प्रदर्शित होती हैं और इन अनुक्रियाओं को तत्काल ही पुनर्बलित किया जा सकता है। दूसरे नियम के अनुसार पुनर्बलन को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहिए कि शिक्षार्थी अनुक्रियाएं करता रहे अर्थात् सामग्री में उसकी रुचि बनी रहे। वे अनुक्रियाएं जो सफलतापूर्वक सीखे हुए व्यवहार की कसौटी पर खरी उतरती हैं शिक्षार्थियों द्वारा ग्रहण की जानी चाहिए।

इन नियमों के आधार पर स्किनर ने कहा कि जो भी व्यक्ति सीखन की स्थिति पर नियंत्रण रखना चाहता है जिससे कि उसके व्यवहार में वांछित परिवर्तन आये उसे निम्नलिखित प्रश्नों पर ध्यान देना चाहिए :— (1) सीखने की कसोटी पर खरी उतरने के लिए कौन-कौन सी अपेक्षित अनुक्रियाएं हैं?

को इस सीमा तक समझना असंभव है कि एक आदर्श चरण-बार उपगमन बनाया जा सके। इस बाधा को दूर करने के लिए उन्होंने कार्यक्रम में शिक्षार्थी के उत्तरों का मूल्यांकन इसलिए रख दिया कि जब शिक्षार्थी प्रत्यक चरण को पर्याप्त रूप से समझ नहीं पाए तो उसमें संशोधन कर दिया जाए। यह संशोधन किस प्रकार किया जाता है इसका एक साधारण उदाहरण है क्राउडर का 'ट्यूटर टैक्सट'। इसमें एक समस्या दी जाती है और शिक्षार्थी पृष्ठ के नीचे दिए गए विकल्पों में से एक विकल्प को चुन लेता है। प्रत्येक विकल्प के साथ पृष्ठ संख्या भी दी जाती है और शिक्षार्थी के उत्तर के आधार पर उसे वह निश्चित पृष्ठ भी देखना होता है। यदि उसका उत्तर सही होता है तो उसे वहां यह बताया जाता है कि उसका प्रश्न सही है और उसे दूसरे चरण का प्रश्न दे दिया जाता है। यदि उसका उत्तर सही नहीं होता तो उसकी त्रुटि बताई और समझाई जाती है और उसे दोबारा प्रश्न देखने को कहा जाता है। "ऑटोट्यूटर" अथवा स्वयं अध्यापन एक अधिक जटिल युक्ति है जो कि माइक्रो-फिल्म, मोशन पिक्चर फिल्म या दोनों ही प्रस्तुत करती है और उत्तरों तथा उत्तर देने के समय को एक पेपर टेप पर रिकार्ड करती है। क्राउडर कार्यक्रम के चरणों में तथा उनके बीच अधिक लचीलेपन का वर्णन करते हैं। चरण में लचीलेपन का अर्थ है प्रत्येक पृष्ठ का प्रत्येक एकांश अथवा स्क्रीन प्रस्तुतीकरण। इसमें स्किनर के कार्यक्रम में प्रस्तुत एक फ्रेम की सामग्री से अधिक सामग्री होती है। क्राउडर का कथन है कि सामग्री का अधिक होना या लचीला होना सामग्री की जटिलता और शिक्षार्थी की जटिलता के कारण आवश्यक है। "एकांशों" के बीच नम्यता का कभी-कभी अर्थ होता है शाखन। यह इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक गलत उत्तर गलत सम्प्रेषण का द्योतक है जिसे ठीक करना चाहिए। इसे केवल कुछ एकांशों को दोबारा प्रस्तुत करके या भ्रम को दूर करने के लिए विशेष एकांशों को प्रस्तुत करके ही किया जा सकता है।

स्किनर और क्राउडर के दृष्टिकोण में एक और प्रमुख भेद उत्तर देने की विधि है। स्किनर बहु विकल्प स्थिति में उत्तर देने की बजाए शिक्षार्थी द्वारा अपने उत्तर को गढ़ने पर अधिक महत्व देते हैं। इस भेद का संबंध इस तथ्य से है कि स्किनर के रेखीय कार्यक्रम के छोटे चरणों की तुलना में क्राउडर के आंतर कार्यक्रमण में एक फ्रेम से दूसरे फ्रेम तक के चरणों तक पहुंचने में भारी आंतर होता है।

थामस एफ. गिलबर्ट

इन्होंने गणितीय शैली में कायक्रमबद्ध सीखने का विकास किया है। उनके द्वारा लिखी गई दो पुस्तकों 'द टकनौलोजी आफ एजुकेशन' तथा 'द डिस्क्रिप्शन आफ टीचिंग एक्सरसाइजिज' में 1962 में गणितीय शैली के तर्काधार और प्रक्रियाओं

का उल्लेख किया है। पहली पुस्तक में उन्होंने 'क्रिया प्रसूत' को व्यवहार के विश्लेषण करने का तकनीक बताया है। क्रिया प्रसूत एक ऐकिक क्रिया है जिसके परिणाम-स्वरूप प्रत्यक्ष प्रभाव होते हैं जैसे 'द्वार खोलना'। एक क्रिया प्रसूत विस्तार क्रिया प्रसूतों का सबसे बड़ा सैट होता है जिसे एक छात्र संभाल सकता है। गणितीय कार्य क्रम में सीखने की इकाई एक्सरसाइज होती है। दूसरी पुस्तक में उन्होंने विस्तार से यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार अध्यापन एक्सरसाइज़ों को शिक्षार्थी के अनुमानित क्रिया प्रसूत विस्तार के अनुसार डिजाइन किया गया है। शिक्षार्थी तीन प्रावस्थाओं वाले एक स्थाई पैटर्न का अनुसरण करता है। ये प्रावस्थायें इस प्रकार हैं जैसे--प्रदर्शन प्रावस्था, अनुबोधित प्रावस्था तथा निर्मोचन प्रावस्था। प्रथम एक्सरसाइज़ में शिक्षार्थी के सामने अनुक्रिया अथवा अनुक्रिया के फल का प्रदर्शन किया जाता है। दूसरी एक्सरसाइज़ में शिक्षार्थी को अनुबोधनों की सहायता से उत्तर देना होता है और तीसरी एक्सरसाइज़ में उसे बिना अनुबोधनों के उत्तर देना होता है।

गिलवर्ट द्वारा प्रयुक्त शब्दावली अन्य योजनाकारों और मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली से भिन्न थी। "नई शब्दावली और स्रोत सामग्री की अप्राप्यता के कारण यह प्रौद्योगिकी कार्यक्रमण की अन्य सभी विधियों में वरिष्ठ मानी जाती थी"। गणितीय शैली भी स्किनर (1954) द्वारा बताए गए रेखीय माडल के फार्मेट का ही अनुसरण है। अंतर केवल इतना है कि रेखीय फ्रेम की तुलना में इसकी एक्सरसाइज़ बहुत बड़ी है और उनकी रचना का प्रारंभ गिलवर्ट द्वारा प्रतिपादित पश्चगामी श्रृंखलाबद्ध प्रक्रियाओं से हुआ है। गिलवर्ट ने इस बात का समर्थन किया कि श्रृंखला-वार अनुक्रम को पश्चगामी रूप से पढ़ाना चाहिए अर्थात् शिक्षार्थी को अंतिम अनुक्रिया पहले करनी चाहिए। उनका तर्क था कि अंतिम अनुक्रिया करना श्रृंखला को पूर्ण करने के लिए सबसे सरल अनुक्रिया है तथा यह पुनर्बलन के लिए सबसे अधिक अभिप्रेरित करने वाली होती है। उनका कथन था कि शिक्षार्थियों को चाहिए कि वे प्रश्न श्रृंखला का उत्तर सही क्रम में दें और सदा श्रृंखला के अंत तक प्रश्नावली को पूरा करें। इस प्रकार के विचारों के प्रयोगात्मक परीक्षण अधिक नहीं हुए हैं। परन्तु जो थोड़े बहुत हुए हैं वे इस दृष्टिकोण की श्रेष्ठता का औचित्य नहीं दे पाए हैं। (विलफोक्स, 1974) फिर भी रेखीय शैली के अब तक कई कार्यक्रमकर्ता फ्रेम रचना के लिए गिलवर्ट द्वारा बताई गई प्रक्रियाओं का ही प्रयोग करते हैं।

कार्यक्रमबद्ध सीखने की कसौटी

रेखीय, गणितीय और आंतर कार्यक्रमण में भेदों पर ध्यान न देते हुए हर

को सुधार कर सही क्रिया करेंगे जिससे अंत में निष्पादन उच्च स्तरीय होता। जब निष्पादन कसौटी अधिक संवेदनशील नहीं होती तब तक त्रुटियों की संभावना वाले छोटे कार्यक्रम में इस प्रकार के भेद नहीं पाए जाते।

अनुक्रिया के माध्यम के अतिरिक्त शिक्षण सामग्री के साथ अनुक्रिया के संबंध पर भी जांच की गई है अर्थात् क्या अनुक्रिया उद्दीपन द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री के प्रति विवेचनात्मक है ? यद्यपि इस विषय पर बहुत कम अध्ययन हुए हैं परन्तु प्रमाणों से ज्ञात होता है कि जिन कार्यक्रमों में विवेचनात्मक अनुक्रिया अपेक्षित होती है उनके परिणाम श्रेष्ठ होते हैं।

पुनर्बलन का स्वरूप

कार्यक्रमबद्ध सीखने में किए गए प्रारंभिक शोध में पुनर्बलन नियम पर अधिक बल दिया गया है। कार्यक्रमण स्थिति में क्या पुनर्बलित होता है ? सही अनुक्रियाओं की पुष्टि सभी कार्यक्रमण स्थितियों में स्पष्ट रूप से पुनर्बलनक नहीं होती जैसे कुछ छात्रों के उत्तर पुष्टि की उपस्थिति में लुप्त हो जाते हैं। तो कुछ छात्रों के उत्तर पुष्टि की अनुपस्थिति में लुप्त हो जाते हैं। कई अध्ययनों में अनुदेशों के प्रभाव की तुलना पुष्टि से की गई यथा-शिक्षार्थी को सही उत्तर दिखाना, जिसे छात्र को फिर से दोहराना होता है। अधिकांश अध्ययनों में पुष्टि के स्थान पर अनुदेश देने से निष्पादन उच्च होता है। स्पष्टतः कार्यक्रमण स्थिति में पुनर्बलन का संबध उन प्रेरणात्मक स्थितियों से होता है जिनके अंतर्गत शिक्षार्थी उत्तर देता है। एक अध्ययन के अनुसार मशीन में फ्रेम का होना ही पुनर्बलन है। अनुक्रियाओं को नियंत्रित करने के लिए किए गए प्रयास अति वांछित व्यवहारों को किसी कार्यक्रम में अनुक्रियाओ के लिए अनुषंगी बना देते हैं। उदाहरण के लिए इसका उपयोग एक सहपाठी-अध्यापन स्थिति में किया जाता है जिसमें एक विद्यार्थी दूसरे विद्यार्थी को पढ़ाने के लिए सीखता है। यह पद्धति प्रौढ़ निरक्षर को पढ़ना और लिखना सिखाने के लिए अति सफल सिद्ध हुई है। फिर भी मनुष्य के सीखने की अवस्थाओं में विद्यमान आन्तरिक और बाह्य पुनर्बलन के जटिल संबंध प्रभावी पुनर्बलनों को पहचानने का कार्य कठिन बना देते हैं।

त्रुटियाँ—अनुसंधान का सबसे स्पष्ट परिणाम त्रुटियों की संख्या और निष्पादन निकष के बीच संबंध को मानना रहा है। कम अनुक्रिया त्रुटियों की संभावना वाले कार्यक्रमों का संबंध वास्तव में उच्च निकष निष्पादन से होता है। स्पष्ट है कि त्रुटियों की उच्च दर को शिक्षण स्थिति के अन्य चरों से पृथक नहीं किया जा सकता। इसलिए इस विशेष समस्या का समाधान करने के सभी प्रयास असफल रहे हैं। केवल इस

जानकारी को छोड़कर कि जब त्रुटियां अधिक होती हैं तो शिक्षार्थी की नकारात्मक प्रवृत्ति हो जाती है। अंतर कार्यक्रम में त्रुटियों के प्रभाव का पर्याप्त विश्लेषण नहीं हुआ है। किसी प्रकार का भी कार्यक्रम हो उसके प्रमाणों से यह इंगित होता है कि कार्यक्रम को आगे बढ़ाने से पहले त्रुटियों को तुरन्त सुधार लेना चाहिए ।

प्रथम दशक के दौरान कार्यक्रमबद्ध सीखने के क्षेत्र में महत्वपूर्ण चरों का अध्ययन करने के लिए सयुंक्त प्रयास किए गए परन्तु आश्चर्य है कि इतने अधिक अध्ययनों में चरों के बीच कोई भेद नहीं पाया गया। प्रभावशाली शिक्षण में पाए जाने वाले चरों को न तो अलग किया गया और न ही उनका वर्णन किया गया। कई अध्ययनों ने उल्लेखनीय भेदों पर प्रकाश डाला परन्तु अन्य अनुसंधानों में परस्पर विरोधी प्रमाणों के कारण वे व्यर्थ हो गए। यद्यपि इस ओर काफी प्रयास किए गए परन्तु जिस अवधि में यह कार्य किया वह अवधि बहुत कम थी। कार्यक्रमों में थोड़ी सामग्री को लिया गया तथा मूल्यांकन के उपकरणों में सूक्ष्मता का अभाव था।

दूसरा दशक (1964–1974)

इस दशक के दौरान कार्यक्रमबद्ध सीखने में विशेषज्ञों द्वारा किए गए अनुसंधान और विकास विषयों में काफी परिवर्तन हुए। कार्यक्रमबद्ध सीखने और रूढ़िवादी अध्ययन के बीच तुलना करने का प्रारंभिक प्रयास अब उद्देश्यहीन और कभी-कभी अनुपयोगी सिद्ध हो चुका था। प्रत्यक्ष और प्रच्छन्न, आन्तरिक, रेखीय और गणितीय, तुरन्त और विलंबित पुष्टियां, छोटे तथा बड़े चरण, आगमनात्मक और निगमनात्मक क्रमबद्धता जैसे विवाद अब खोदा पहाड़ निकला चूहा जैसे तुच्छ विषय लगते थे। इसलिए अनुदेश, प्रतिपुष्टि, पुनर्बलन, अनुक्रिया माध्यम, चरणों के आकार और त्रुटि दर जैसे प्रश्नों पर कम ध्यान दिया जाने लगा (टोबिन 1967)। अब अध्यापक के लिए तात्कालिक महत्व की समस्याओं के समाधान पर अधिक बल दिया जाने लगा जैसे कार्यक्रमबद्ध सीखने की विधियों को अध्यापन और सीखने के उपागमों तथा युक्तियों के साथ एकीकृत करके प्रयोग किया जाए। सिद्धांतवादियों और मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान का यह क्षेत्र छोड़ा नहीं था, परन्तु कार्यक्रमबद्ध सीखने में उनकी मुख्य रुचि भूत और भविष्य में उभरती हुई सीखने के सिद्धांतों के सामान्य क्षेत्र में आने वाली समस्याओं की जांच के रूप में थी।

समूहों के बीच कार्यक्रमबद्ध सीखना

अमेरिया एटल (1966), हार्टले और कुक (1968) ने युगलों के साथ कार्यक्रमबद्ध सीखने के प्रयोग पर जांच की। ओल्डफील्ड (1964), क्रिस्ट (1966), सविरिस (1966), रोक्सन (1967) ने बड़े और छोटे समूहों में कार्यक्रमबद्ध

सीखने की सामग्रियों के प्रयोग पर जांच की। लीधम (1966) ने 3–8 व्यक्तियों के समूहों के लिए स्वचालित अनुक्रिया प्रणाली का विकास किया। इन अध्ययनों में अनुसंधानकर्त्ता समूह शिक्षण के सामाजिक और अभिप्रेरणात्मक लाभों का उपयोग करने में रुचि रखते थे। वे व्यक्तिपरक शिक्षण की तुलना में समूह शिक्षण द्वारा प्रतिव्यक्ति व्यय को कम करना चाहते थे। इन तुलनात्मक अध्ययनों के परिणाम परीक्षण निष्पादन में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं दर्शाते थे (हार्टले 1968)। इस क्षेत्र में किए गए अनुसंधान से यह तथ्य प्रकाश में आया कि स्वतः गति नियमन से काफी प्रशासनात्मक कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं क्योंकि समान योग्यता वाले समूह भी एक कार्यक्रम को पूर्ण करने के लिए जो समय लेते हैं वह काफी लम्बा होता है। इससे यह भी प्रकट हुआ कि सामूहिक गति नियमन विधियों की स्थापना प्रायः तकनीकी रूप से जटिल होती है तथा जितना उनमें तकनीकी श्रम करना होता है उनसे लाभ उतना नहीं होता।

बहु-माध्यम युक्तियों द्वारा कार्यक्रमबद्ध सीखना

शिक्षा में प्रौद्योगिकी संचार माध्यम का एक विस्तृत क्षेत्र प्रदान करती है जिसका प्रयोग शक्षिक उद्यम की प्रभावशीलता को सुधारने में किया जा सकता है। इस प्रकार कार्यक्रमबद्ध फिल्मों, फिल्म लुपों तथा टेप स्लाइड आदि प्रस्तुत करने के विकास में एक लहर उत्पन्न हुई है। बहु-माध्यम वाली कार्यक्रमबद्ध प्रणालियों का विकास और मूल्यांकन तथा उन्हें परिशुद्ध किया जाने लगा। ऐलन तथा रिचर्डसन (1966) ने छोटे और बड़े समूहों में व्याख्यानों, प्रवचनों, सामूहिक चर्चाओं, कार्यक्रमों तथा फिल्मों वाली एकीकृत प्रणाली की प्रभावशीलता के संबंध में जांच की। मैकिनी (1969) ने भू-विज्ञान में बहु-माध्यम पाठ्यक्रम विकसित किया जिसको 24 अध्ययन मंडपों से चलाया जा सकता था। इन मंडपों में हैडसैट के साथ फिल्म लूप प्रोजेक्टर लगे थे। एक स्लाइड प्रोजेक्टर तथा एक डैस्क लैम्प और पूर्व तथा पश्चयूनिट परीक्षण के साथ एक औपचारिक पाठ भी विद्यमान था। जैनकिन (1966), बट्स तथा फ्रिकेट (1969), पैरी, (1970) स्पार्क्स (1970), जमाइसन तथा मर्चेन्ट (1971) तथा एमलिंग (1974) ने विविध विषयों जैसे आरेखीय कला, लेखाकरण नियम, अध्यापन और अध्यापन उपकरण, व्यक्ति सापेक्ष शिक्षण, दशमलव सिक्का ढलाई तथा दन्त स्वास्थ्य आदि में प्रस्तुत करने के लिए कार्यक्रमबद्ध स्लाइडों को विकसित किया। एल्सवर्थ (1972) ने भौतिक भूगोल तथा भू-विज्ञान के मूल तत्वो पर एक पाठ्यक्रम विकसित किया और इच्छुक शिक्षार्थियों पर उसकी प्रभाविता का अध्ययन किया। पाठ्यक्रम की सभी अपेक्षाओं को विद्यार्थियों के एक अध्ययन कक्ष या उसके आसपास के क्षेत्र में पूर्ण किया गया। प्रत्येक अध्ययन कक्ष में निम्नलिखित सामग्री विद्यमान थी जैसे ओडियो टेप प्लेयर तथा हैड सैट, एक स्लाइड प्रोजेक्टर तथा एक

छोटा स्क्रीन, एक छोटा ग्लोब, एक अध्ययन नोट बुक जिसमें रेखाचित्र और अन्य सामग्री होती थी। बुअर (1974) ने पेड़ पौधों की पादप शरीर-रचना पर एक कार्यक्रम-बद्ध पाठ्यक्रम विकसित किया और उसे चार वर्ष में पूरा किया। वे इस पाठ्यक्रम में 1969–70 तक की अवधि में लगातार सुधार करते रहे। विद्यार्थियों को अध्ययन कक्ष में टेप डैक अध्ययन निर्देशिका, पाठ्य पुस्तक, स्लाइडों, नमनों और अन्य सामग्री के साथ लगभग 5 घंटे काम करना होता था।

बहु-माध्यम तथा पुस्तक फार्मेट कार्यक्रम की सापेक्ष प्रभावशीलता

प्रारंभ में कार्यक्रमबद्ध सीखना मशीन द्वारा पढ़ाने से लागू किया गया परन्तु मशीनों में कुछ दोष और सीमायें हैं। मशीनों के माध्यम में सामग्री प्रस्तुत करने, उत्तर प्राप्त करने, प्रतिपुष्टि अथवा पुनर्बलन के संदर्भ में कार्यक्रमकर्त्ताओं पर कुछ प्रतिबन्ध होते थे। मशीनों के अधिक मूल्य के अतिरिक्त उनका बार बार खराब होना तथा अन्य प्रशासनीय और रखरखाव की समस्याओं के कारण प्रथम दशक में मशीनें अलोकप्रिय हो गई। दूसरे, मशीन कार्यक्रमबद्ध सीखने में निर्णायक नहीं होती। मशीन के अन्दर जो कार्यक्रम है वह निर्णायक होता है और उसे मुद्रित स्थित में भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इसे प्रचलित रूप में बुक फार्मेट कहते हैं। मशीनों को प्रयोग करने से पहले बुक फार्मेट कार्यक्रमों की तुलना मशीन द्वारा अध्यापन से की गई थी। मेयर (1959), होले (1959) तथा पोटर (1960) द्वारा किए गए अध्ययनों से यह प्रदर्शित हुआ है कि बुक फार्मेट भी मशीन द्वारा अध्यापन की तरह ही अध्यापन करते हैं। स्टोलुरो (1964) ने कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों के प्रयोग पर एक व्यापक सर्वेक्षण किया और निष्कर्ष निकाला कि 'वर्तमान प्रवृत्तियां से यह सुझाव मिलता है कि अध्यापन मशीनें अब प्रयुक्त नहीं की जातीं। कार्यक्रमबद्ध पठन सामग्री ही अब प्रयुक्त होती है और होती रहेगी।

अगले दशक में बुक फार्मेट कार्यक्रम आधार रेखा बन गए जिनके साथ नवीन सामग्री की प्रभावशीलता की तुलना की जाने लगी। बट् तथा फ्रिकेट (1969), जेमीसन तथा मर्चेन्ट (1971), डॉयर (1971, 1972), जाहन् (1972), एम्लिंग (1974), ग्रिस (1974), मैडले (1975) ने बहु-माध्यम कार्यक्रम की तुलना बुक फार्मेट कार्यक्रम से की। जेसीमन और मर्चेन्ट (1971) ने यह रिपोर्ट दी कि बुक फार्मेट पाठ बहु-माध्यम पाठ से अधिक श्रेष्ठ होता है। डोयर को छोड़कर (1971, 1972) पांच अन्य अध्ययन कर्त्ताओं ने कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं बताए। डोयर (1971, 1972) ने दो अध्ययन किए जिनमें उन्होंने चार पृथक-पृथक निकष वाले उपायों तथा एक पूर्ण निकष वाले उपाय पर बहु-माध्यम कार्यक्रम तथा बुक फार्मेट की प्रभावशीलता की तुलना की। ये परीक्षण निम्नलिखित विषयों पर थे

यथा-ड्राइंग, पहचान, शब्दावली, अर्थग्रहण तथा पूर्ण निकष परीक्षण। उन्होंने पाया कि इन दो विधियों से भिन्न निकष उपायों पर भिन्न प्रभाव उत्पन्न होते हैं। क्योंकि ये अध्ययन केवल दो ही थे और थोड़ी मात्रा पर ही किए गए थे और एक सीमित आयु वर्ग पर ही किए गए थे इसलिए इनके परिणामों को सामान्यीकृत नहीं माना जा सकता। विकास और अनुसंधान में विभिन्न रूप में विस्तार का कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों और अनुसंधान के विकास की कार्यप्रणाली पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा।

कार्यप्रणाली

प्रारंभ में कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्री के विकास की कार्यप्रणाली रुढ़िवादी व्यवहारात्मक दृष्टिकोण से उत्पन्न हुई। स्किनर ने प्रयोगशाला में किए गए अभ्यासों तथा शिक्षा में सुधार लाने वाले रीति अभ्यासों के बीच भारी समानता पाई। इन समानताओं के बावजूद पशुओं के व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए प्रयोगशाला में प्रयुक्त तकनीक मानव द्वारा सीखने की श्रृंखलाएं तैयार करने में भिन्न है। इस संदर्भ में हार्ट्ले (1974) ने टिप्पणी की कि स्किनर के तकनीक सार्वभौमिक रूप से वैध नहीं हैं परन्तु वे निरर्थक भी नहीं है।

इन दस वर्षों के दौरान कार्यक्रमकर्त्ताओं ने सीखने के सिद्धांतवादियों, मनोविज्ञानिकों और शिक्षाविदों जैसे ब्रूनर (1964) औसुबल, (1959, 1969), गैग्ने (1970), गैग्ने और ब्रिग्स (1974) द्वारा सुझाए गए मानव द्वारा सीखने के उपागमों का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। मानव व्यवहार अति जटिल होता है और शिक्षण के उद्देश्य विविध होते हैं। शिक्षण उद्देश्यों (मानव क्षमताओं) का वर्गीकरण करने और प्रत्येक वर्ग के लक्षणों को पहचानने के प्रयास किए गए हैं। संज्ञानात्मक, मनोगतिक और प्रभावित क्षेत्रों में कार्यकर्त्ताओं ने उद्देश्यों का वर्गीकरण करना प्रारंभ कर दिया (ब्लूनी एट एल. 1956, ब्लूम तथा क्रैथवौल 1964)। श्रृंखलाओं, संकल्पनाओं तथा नियमों को ग्रहण करने के संदर्भ में गैग्ने के सीखने के सोपानों का प्रयोग कार्यक्रमबद्ध सीखने की विधियों और सामग्रियों को बनाने में विस्तृत रूप से होने लगा।

कार्यक्रमबद्ध सीखने में अनुसंधान की कार्यप्रणाली में भी धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ। कार्यक्रमबद्ध सीखने में अधिक आलोचनात्मक दृष्टिकोण की आवश्यकता पर ग्लेसर (1962), एनैट (1967) तथा अन्य विशेषज्ञों ने समय-समय पर विचार प्रकट किए।

प्रारंभिक अनुसंधानों की कम से कम दो त्रुटियां नजर आई :—

(क) स्वतंत्र चरों को नियंत्रित करने की विधियों और अस्वतंत्र चरों को मापने की विधियों में सुधार की आवश्यकता है।

(ख) अनुक्रिया माध्यम तथा पुष्टिकरण तकनीक के अतिरिक्त कई अन्य निर्णायक कारकों की अपेक्षा की जाती है।

'क' के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि एक व्यापक परीक्षण में एक समूह के माध्य उपलब्धि प्राप्तांकों को एकत्र करना एक सामान्य अभ्यास रहा है और इस परीक्षण की परिणति योग्यताओं के साधारण अंतर परिणामों की प्राप्ति में हुई। बाद में यह प्रयोग ऐसे बनाए गए जिनमें उपपरीक्षण भी सम्मिलित किए जा सकते थे और जिनसे भिन्न प्रकार की योग्यताओं को मापा जा सकता था। (उदाहरण के लिए डोयर 1971, 1972)। यह भी संभव हो सकता था कि दोनों विधियां केवल समग्र माध्य प्राप्तांकों पर बराबर हों परन्तु परीक्षण के विविध प्रकार के उद्देश्यों पर उनमें भिन्नता हो सकती है। इस प्रकार का उपागम विशेषकर तब सफल होता है जब यह खोजना होता है कि एक विशेष शिक्षार्थी समूह में विशिष्ट उद्देश्य प्राप्त करने के लिए कौन सी कार्यक्रमबद्ध सीखने की युक्ति उचित है ?

'ख' के संबंध में प्रणालियों के दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षण की प्रक्रिया के पुन-परीक्षण के संबंध में एक लहर उठी हुई है जिससे कि शिक्षण पर प्रभाव डालने वाले महत्वपूर्ण चरों का पता लगाया जाए और यह भी पता लगाया जाए कि अनुसंधान का विषय क्या है। पी. होज (1967) ने विभिन्न शिक्षण माडलों का विश्लेषण किया और शिक्षण प्रक्रिया की जांच करने के लिए एक माडल तैयार किया। उनके माडल द्वारा पांच शिक्षार्थी समूह के अन्तर्गत 150 चरों का वर्गीकरण किया जा सकता था जैसे शिक्षण प्रक्रिया, मापन तकनीक, तुलना तथा निकष चर तथा प्रतिक्रिया करने वाले और निर्णय करने वाले चर आदि। चरों के ये समूह एक जटिल रूप में संक्रिया और अनोन्यक्रिया करते हैं तथा सीखने पर इनके शिक्षणात्मक प्रभावों को जानने के लिए अधिक परिष्कृत तकनीकों की आवश्यकता होती है। विशेषज्ञों द्वारा कहे गए और लिखित कथनों से भिन्न समयों पर कार्यक्रमबद्ध सीखने में किए गए अनुसंधान और विकास की स्थिति प्रतिबिंबित होती है।

वर्ष 1954 में स्किनर ने यह कहा था "इस दिशा में एक सरल कार्य ही करना है। इस कार्य को स्पष्ट शब्दों में बताया जा सकता है। आवश्यक तकनीक तो पता ही है। कार्य के निष्पादन में सांस्कृतिक अकर्मण्यता के अतिरिक्त और कोई रुकावट नहीं है"

1969 में मार्कल ने कहा था "कार्यक्रमबद्ध शिक्षण जैसे जीवन्त क्षेत्र में शीघ्रता से परिवर्तन आना ही चाहिए। अब तक नए तकनीक आ चुके हैं, और हमारी सुविधा के लिए पुराने विषय लुप्त हो चुके हैं। कार्यक्रमकर्त्ताओं के लिए चुनाव के क्षेत्र अधिक उपलब्ध हो गए हैं क्योंकि उन्होंने व्यक्तिगत शिक्षण के क्षेत्र में नए माध्यम अपनाए हैं"

देशों ने सैद्धांतिक अध्ययन और आद्य प्ररूप विकास के क्षेत्रों में तो काफी प्रगति कर ली थी परन्तु मूलरूप में इसका प्रभाव स्कूलों में केवल 1970 के दशक में ही अनुभव किया गया । चैकोस्लोवाकिया अध्यापन मशीनों और लिखित पत्रों पर आधारित कार्यक्रमबद्ध शिक्षण प्रणाली का बड़े पैमाने पर उपयोग करने का प्रयोग कर रहा था । अध्यापन मशीन उद्योग ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका की तुलना में तीनों देशों में ही उन्नति कर रहा था । उनके अनुसार हाल में बनाए जाने वाली अध्यापन मशीनें प्रायः जटिल होती हैं । ये प्रायः दृष्य-श्रव्य मशीनें होती हैं जिनमें अधिकतर शाखन सुविधाएं होती हैं तथा कभी भी उन्हें कम्प्यूटर आधारित नियंत्रण प्रणाली से भी जोड़ा जा सकता है (रोमिज़ोस्की, 1976) ।

भारत जैसे देश में कार्यक्रमबद्ध सीखने का प्रयोग दूसरे दशक में फैला और इस प्रणाली का प्रयोग विभिन्न स्तरों, विषयों और शिक्षा के भिन्न भिन्न खंडो में होने लगा । अध्यापन मशीनें भारत में कभी लोकप्रिय नहीं रहीं । यदाकदा मामले जैसे 1971 में भारतीय स्टेट बैंक द्वारा 100 बिग्ले ट्यूटर्स (रेखीय प्रकार की एक मशीन) के प्रयोग के विषय में उल्लेख किया गया है । बुक फार्मेट कार्यक्रम के प्रयोग पर बहुत बल दिया जाता है । स्लाइड्स और टेप्स के प्रयोग द्वारा कुछ बहु-माध्यम पाठ्यक्रमों का विकास किया गया है, परन्तु इस क्षेत्र में भी कोई उल्लेखनीय प्रगति सुविधाओं और दृश्य-श्रव्य उपकरणों के द्वारा कार्यक्रमबद्ध सीखने के प्रयोग के लिए आधारिक संरचनाओं के अभाव के कारण नहीं हुई है । यहां यह कहा जा सकता है कि 1966 में "इन्डियन एसोसिएशन फार प्रोग्राम्ड लर्निंग" के नाम से एक संघ गठित हुआ था । 1974 में इस संघ का नाम बदल कर "इन्डियन एसोसिएशन फॉर प्रोग्राम्ड लर्निंग एण्ड एजुकेशन इनोवेशन" रख दिया गया था । इस क्षेत्र में प्रगति का कारण यह अनुभव करना है कि सभी शैक्षिक समस्याओं का समाधान केवल कार्यक्रमबद्ध सीखना ही नहीं है और संघ को अन्य शैक्षिक नवीन प्रक्रियाओं के संदर्भ में अपनी क्रियाओं का विस्तार बढ़ाना चाहिए । दूसरे दशक में सोवियत संघ द्वारा कार्यक्रमबद्ध सीखने के प्रयोग के विषय में जानकारी 1976 में यूनेस्कों के सहयोग से टिबलिसि में सोवियत संघ द्वारा आयोजित संगोष्ठी के विचार विमर्शों द्वारा हुई । ऐसा प्रतीत होता है कि गाल पैरिन के मनोविज्ञान स्कूल ने कार्यक्रमबद्ध सीखने के नये मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किए जो अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुए । "सोवियत जोर्जिया विश्वविद्यालय के मनोवैज्ञानिक इस तथ्य से सहमत नहीं थे" । इस सम्मेलन में प्रोफेसर टैलिज़ानिया ने स्पष्ट किया कि किस प्रकार उन्होंने सोवियत संघ में सीखने के दक्ष नियमों को सफलता पूर्वक लागू किया । उन्होंने यह भी बताया कि समाजवादी देशों को व्यवहारवाद की दक्षता पर सदा संदेह रहा है । उन्होंने अध्ययन के क्रियात्मक कार्यों पर बल दिया । इस प्रकार क्रिया के लिए एक प्रारंभिक आधार की खोज करना

और सीखने की संक्रियात्मक संरचना बनाने की आवश्यकता है जिसमें कार्यात्मक प्रणाली प्रयोग की जाती है। इस प्रकार संज्ञानात्मक प्रशिक्षण अनिवार्य था। इससे योजना बनाने के लिए योग्यता, स्वतंत्रता और गति की आदतें पड़ जाती हैं। उन्होंने यह भी बाताया कि किस प्रकार समस्या समाधानोन्मुख सीखना सफल हो सकता है। वे अपने दृष्टिकोण की व्यावहारिक प्रयोज्यता की बात भी करते हैं कि कैसे बड़ी कक्षाओं को समस्या के रूप में पूरे वर्ष का काम दिया गया था। उन व्यक्तिगत समाधानों की तुलना की गई और उत्तम समाधान की प्रशंसा की गई। इस प्रकार सीखने की परिस्थितियों में उत्पन्न व्यक्तिगत कारकों और अभिप्रेरणा का भी ध्यान रखा जा सकता था। गाल पेरिन के मनोविज्ञान के स्कूल में सीखने की स्थितियां उत्पन्न करने के दो तरीके बताए गए हैं।

(1) उपलब्धि प्राप्त करने में सहायक सामग्री का संगठन करके;

(2) सीखने की सामान्य संकल्पनाओं और युक्तियों को विशिष्ट कार्यों की ओर स्थानान्तरित करने की योग्यता विद्यार्थियों को सिखा कर।

प्रारंभिक सिद्धांत यह था कि ज्ञान क्रिया है और यदि इस क्रिया का उपयोग न किया जाये तो वह विस्तृत नहीं हो सकती। अनावश्यक को हटाने के लिए जिस सामग्री को सीखना है उसका तर्कपूर्ण विश्लेषण किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए गाल पैरिन मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षण के लिए रुसी भाषा के परम्परागत 400 उच्चारणों को घटा कर 300 कर दिया। शिक्षण प्रक्रिया के लिए माडल बनाने का एक तरीका है—सफल समूह के व्यवहार स्वरूप का विश्लेषण करना। समस्याओं के विश्लेषण, समूह और कार्य पर आधारित माडल भविष्य की शिक्षण स्थितियों में उपयोगी हो सकते हैं।

कार्यक्रमबद्ध सीखने की वर्तमान स्थिति

मोटे तौर पर कार्यक्रमबद्ध सीखने के नाम का स्थान अब कार्यक्रमबद्ध शिक्षण ने ले लिया है। मार्केल (1967) ने कार्यक्रमबद्ध शिक्षण की परिभाषा इस प्रकार दी है—

"प्रत्येक स्वीकार्य विद्यार्थियों के व्यवहार पर पर्याप्त और अनुकूल प्रभाव डालने के लिए शिक्षण घटनाओं का पुनरुत्पादय क्रम।" यह परिभाषा समय के पैमाने पर भी खरी उतरी है क्योंकि कार्यक्रमबद्ध सीखने की विधियों उनकी प्रस्तुतीकरण युक्तियों और उनकी कार्यान्वयन प्रक्रियाओं से इस परिभाषा का कोई सरोकार नहीं था। इस परिभाषा में "शिक्षण घटनाओं" शब्द का प्रयोग किया गया है जिसका

कारण या तो अध्यापक है या बुक फ्रेमेंट कार्यक्रम। अध्यापन मशीनें या टेप, फिल्म-स्ट्रिप, फिल्मलूप्स, टेलीविजन तथा कम्प्यूटर युक्त अध्यापन सीखने की प्रणालियों जैसी कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियां हैं। कार्यक्रमण की विभिन्न विधियों के अनुसार कार्यक्रमों को विकसित किया जा सकता है जैसे-रेखीय, आंतर, गणितीय और संकर। इस परिभाषा से ब्रिटेन में शैक्षिक प्रौद्योगिकी और संयुक्त राज्य अमरीका में निष्पादन प्रौद्योगिकी के बीच सीमा रेखा निर्धारित करने में सहायता मिली। शैक्षिक प्रौद्योगिकी में कार्यक्रमबद्ध सीखने की सभी विधि और सामग्रियों का प्रयोग होता है। सामग्रियों का विकास होने के बाद यह देखना आवश्यक होता है कि वे शिक्षार्थियों तक पहुंच रही हैं या नहीं और शैक्षिक प्रणालियों का निरन्तर परिवीक्षण हो रहा है या नहीं। शैक्षिक प्रौद्योगिकी का संबंध विशिष्ट उद्देश्यों के संदर्भ में संपूर्ण शैक्षिक, प्रक्रियाओं के डिजाइन बनाने, कार्यान्वयन और मूल्यांकन से है। शैक्षिक प्रणाली का गठन करने के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी प्रणालीबद्ध उपागम का प्रयोग करती है जिसमें वह निम्नलिखित कारकों को ध्यान में रखती है, यथा-मुख्य-मुख्य लक्ष्य, उपलब्ध संसाधन, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और तकनीकी प्रतिबंध। सार्थक सामग्री को सीखने में किस प्रकार व्यवहारात्मक विश्लेषण तकनीकों को लागू करके एक शिक्षण प्रणाली का डिजाइन बनाया जाए और किस प्रकार उसे कार्यान्वित किया जाए तथा वैद्य बनाया जाए इस प्रश्न को हल करने में कार्यक्रमबद्ध सीखने ने काफी योगदान दिया है। इस प्रकार कार्यक्रमबद्ध सीखना शैक्षिक प्राद्योगिक की एक निर्णायक उप प्रणाली बन गया है।

बढ़ते हुए मानवीय निष्पादन कार्यों के संदर्भ में संयुक्त राज्य अमरीका में निष्पादन प्रौद्योगिकी एक उभरती प्रौद्योगिकी है जो सीखने के सिद्धांतों, संचार सिद्धांतों प्रणाली उपागम तथा सूचना सिद्धांतों तथा मानवीय इंजिनियरिंग का प्रयोग करती है। निष्पादन प्रौद्योगिकी की परिधि में निम्नलिखित उप-प्रौद्योगिकियों का विकास हुआ अथवा हो रहा है (बुल्क 1976) —

(क) निष्पादन संबंधी समस्याओं का समाधान करने वाली विश्लेषण प्रौद्योगिकी जिसका कार्यक्षेत्र प्रशिक्षण की खोज करना और शैक्षिक तथा निष्पादन समस्याएं हल करना है।

(ख) निष्पादन विशिष्टीकरण प्रौद्योगिकी का कार्यक्षेत्र शिक्षण उद्देश्यों को प्राप्त करने के आधार के रूप में वांछित या निपुण निष्पादन का वर्णन करना है।

(ग) शिक्षण प्रौद्योगिकी में निम्नलिखित विषय सम्मिलत हैं यथा-आवश्यकताओं का मूल्यांकन, प्रणाली का डिजाइन बनाना, लक्ष्य

दर्शक विश्लेषण, उद्देश्यों की व्युत्पत्ति, मूल्यांकन उपकरण, सीखने की समस्याओं के विश्लेषण की युक्तियां, विधियों का चयन, स्वत: निर्देशित शिक्षण (उदाहरण के लिए प्रशिक्षण की वैयक्तीकृत प्रणालियां, (पी. एस. आई.), स्वत: शिक्षण कार्यक्रम उदाहरणार्थी-कार्यक्रमबद्ध पाठ्यसामग्री तथा बहु माध्यम सामग्री आदि)

(घ) निम्नलिखित विषयों सहित अभिप्रेरणात्मक प्रौद्योगिकी यथा अभिवृत्ति परिवर्तन, हस्तक्षेप, व्यवहार परिवर्तन आकस्मिक, (व्यय) प्रबंध, प्रतिपुष्टि प्रणालियां/तकनीक ।

(ङ) पर्यावरण डिजाइन तथा मूल्यांकन प्रौद्योगिकी--बाह्य मूल्यांकन, मूल्य निर्धारण आदि ।

शैक्षिक प्रौद्योगिकी या निष्पादन प्रौद्योगिकी का विस्तार स्वयं ही शिक्षा के समान हो गया है । इन प्रौद्योगिकियों का संबंध पाठ्यचर्या तथा सीखने के अनुभवों के डिजाइन बनाने और उनके मूल्यांकन से है तथा उनके कार्यान्वयन और नवीकरण की समस्याओं से है । ये प्रौद्योगिकियां शिक्षा के लिए समस्या समाधान तथा युक्ति-संगत दृष्टीकोण रखने वाली होती हैं' और सीखने तथा अध्यापन के लिए संदेहास्पद रूप से व्यवस्थित चिंतन की तकनीक होती है । इन प्रौद्योगिकों के अंतर में कायक्रम-बद्ध सीखने को वह आत्मा रहती है जिसने उद्देश्यों को स्थापित करने की विधियां, सीखने के पर्यावरण की योजना, विषयवस्तु को स्पष्ट करने, उचित अध्यापन युक्तियों और सीखने के माध्यम को चुनने, सीखने की प्रणाली की प्रभावशीलता का मूल्यां-कन करने और किए गए मूल्यांकन से प्राप्त दूरदर्शिता का प्रयोग करके भविष्य की प्रभावशीलता सुधारने की विधियां प्रस्तुत की हैं । नये प्रौद्योगिकों ने "कार्यक्रमबद्ध सीखने" के नाम को तो उड़ा दिया है यद्यपि इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यांकन, क्रिया-न्वयन, डिजाइन और उद्देश्यों के सभी पक्षों की भावनाओं को इसमें व्याप्त रखा है ।

भारत में कार्यक्रमबद्ध सीखना

भारत में कार्यक्रमबद्ध सीखने का आन्दोलन 1963 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनु-संधान तथा प्रशिक्षण परिषद् द्वारा गोष्ठियों और मूल्यांकन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करके आरंभ किया गया था । 1965 में इस संस्थान ने कार्यक्रमबद्ध सीखने की विधियों और सामग्री के अनुसंधान, प्रशिक्षण और विकास के लिए नियमित कार्य प्रारंभ किया । कार्यक्रमबद्ध सीखने पर अखिल भारतीय स्तर पर प्रथम पाठ्यक्रम 1966 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् ने संगठित किया । 1967 में कुछ उत्साही व्यक्तियों ने कार्यक्रमबद्ध सीखने के लिए भारतीय संघ स्थापित किया । कार्यक्रमबद्ध

सीखना केवल शिक्षा में ही नहीं अपनाया गया है वरन सुरक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग और कृषि आदि क्षेत्रों में भी प्रशिक्षण साधन के रूप में अपना लिया गया है। कार्यक्रमबद्ध सीखने के क्षेत्र के कई विदेशी विशेषज्ञ भी समय-समय पर भारत सरकार के विभिन्न सहयोगात्मक कार्यक्रमों के अंतर्गत यूनेस्को, यूनिसेफ, संयुक्त राज्य अमरीका, ब्रिटेन और रूस के साथ भारत आए हैं। वर्तमान में भी कई सक्रिय केन्द्र कार्यक्रम-बद्ध सीखने के अनुसंधान विकास और सूचना प्रसारण में रत है। इस संबंध में विस्तृत विवरण नीचे दिया जा रहा है।

कार्यक्रमबद्ध सीखने में किए गए अनुसंधान

शिक्षा और मनोविज्ञान में एम. ए., एम. एड. एम. फिल. तथा पी. एच. डी. स्तर पर अनुसंधान किए जा रहे हैं। कुछ विश्वविद्यालयों ने एम. एड., एम. फिल. तथा डिप्लोमा स्तर पर शैक्षिक प्रौद्योगिकी का पाठ्यक्रम लागू किया है जिसमें विशेष विषय के रूप में कार्यक्रमबद्ध सीखना भी शामिल है। संस्थान स्तर पर भी कुछ अनु-संधान कार्य किए जा रहे हैं। इस प्रकार कायक्रमबद्ध सीखने के कई अनुसंधान केन्द्र भी बन गए हैं। कुछ महत्वपूर्ण केन्द्रों के नाम इस लेख के अंत में दिए गए हैं। इन केन्द्रों पर किए गए अध्ययनों की एक चयनात्मक समालोचना यहां प्रस्तुत की जा रही है।

मुख्य रूप से अनुसंधान कार्यों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बांटा जा सकता है :–

(क) कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों की प्रभाविता ;

(ख) विभिन्न प्रकार की कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों की तुलनात्मक प्रभाविता;

(ग) कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियां और शिक्षार्थी चर।

कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों की प्रभाविता

कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों की प्रभाविता का अध्ययन परीक्षण के पूर्व और बाद में 'प्राप्तांकों' की तुलना तथा रुढ़िवादी विधि से अध्यापन और कार्यक्रम-बद्ध सीखने के माध्यम से किए गए अध्यापन के बीच तुलना करके किया गया है। कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों का प्रयोग करने वाले व्यक्तियों की अभिवृत्तियों की जांच की।

कृष्णा मूर्ति (1966) ने कार्यक्रमबद्ध सीखने के माध्यम से परिवार नियोजन के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित किया। उन्होंने वादविवाद के लिखित अभिलेखों का

विश्लेषण किया जिससे यह पता लगा कि समूह ने प्रस्तुत की गई सामग्री को सीख लिया है। शर्मा (1966) ने नवीं कक्षा के विद्यार्थियों के कुछ समूहों पर कार्यक्रमबद्ध एकक का प्रयोग किया। आनन्द भूषण (1973) ने बी. एड. के छात्रों पर सांख्यिकी के एक पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रयोग किया, । चौहान (1973) ने शैक्षिक मनोविज्ञान सिखाया तथा गोविन्दा (1975) ने बी. एड. के छात्रों को शैक्षिक मूल्यांकन पढ़ाया। दयाल (1975) ने 8वीं कक्षा के छात्रों को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए एक कार्यक्रमबद्ध अध्यापन सीखने का विकास किया। कपाडिया तथा शाह (1974) ने ग्रामीण स्कूलों में 8वीं कक्षा के छात्रों को बीजगणित में सुधारात्मक पाठ पढ़ाए। श्री मलिक ने (1978) में 5वीं कक्षा को 'फूल' पर एक पाठ पढ़ाया। सभी के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया कि उनके द्वारा विकसित कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियां शिक्षण का प्रभावशाली साधन है।

यदि हम किसी भी शैक्षिक नवीन प्रक्रिया के इतिहास की जांच करें तो हम देखते है कि रुढ़िवादी विधि से अध्यापन के साथ नवीन प्रक्रिया की तुलना के संदर्भ में अनुसंधान किए गए हैं। इस स्थिति को ऐलेन (1971) ने अपने लेख "इन्स्ट्रक्शनल मीडिया रिसर्च, पास्ट, प्रैजेन्ट एण्ड फ्यूचर" में संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया है। उनका कथन है कि "शैक्षिक संस्थाओं ने नवीनप्रक्रिया तकनीक की प्रभाविता का प्रमाण मांगा और इनके बीच तुलना का आधार स्पष्ट रूप में वर्तमान अध्यापन प्रथा थी।" कार्यक्रमबद्ध सीखने के साथ यह विदेशों में हुआ और भारत में भी यही हुआ। प्रथम दशक (1965–1975) में तुलनात्मक अध्ययनों की प्रचुरता थी जिसमें दो प्रतिपादित समूहों -यथाप्रयोगात्मक और नियंत्रण के विषय निर्धारित किए गए। उदाहरण के लिए शाह (1965) ने 'समीकरण हल करने' पर एक प्रयोगात्मक समूह तथा छठी कक्षा के नियंत्रण समूह पर एक कार्यक्रमबद्ध पाठ दिया। इसी प्रकार श्री जे. एम. शर्मा (1966) ने भी नवीं कक्षा के समूहों को एक पाठ पढ़ाया। देसाई (1966) ने नवीं कक्षा को गुजराती भाषा में विभिन्न प्रकार के समासों पर एक पाठ पढ़ाया। श्री एम. एम. शर्मा (1966) ने नवीं कक्षा को बीजगणित पर एक पाठ पढ़ाया। श्री आर. ए. शर्मा (1966) ने 8वीं कक्षा को भूमि आकार, घूर्णण, परिक्रमण, अक्षांश और रेखांश पर पाठ पढ़ाया। अग्रवाल (1968) ने बी. एड. के छात्रों को केन्द्रीय प्रवृत्ति के उपायों पर पाठ पढ़ाया और भूषण (1972) ने बी. एड. छात्रों को श्रेणी सहसंबंध पर एक पाठ पढ़ाया। इन अध्ययनों द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से यह पता लगा कि रुढ़िवादी विधि से पढ़ाए गए छात्रों के समूह की तुलना में कार्यक्रमबद्ध पाठों को पढ़ाए जाने वाले छात्र समूहों ने परीक्षणोपरान्त अधिक प्राप्तांक प्राप्त किए।

अनेक अनुसंधानकर्ताओं ने पूर्ण कार्यक्रमबद्ध पाठ्यक्रमों का विकास किया है और उनकी प्रभाविता की तुलना रुढ़िवादी विधि द्वारा अध्यापन से की है। श्री शाह (1969) नें 8वीं कक्षा के लिए बीजगणित का संपूर्ण पाठ्यक्रम योजनाबद्ध किया। चौहान (1973) ने बी. एड. के छात्रों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का एक कार्यक्रमबद्ध पाठ्यक्रम विकसित किया। दोनों विशेषज्ञों ने पाया कि रुढ़िवादी विधि द्वारा अध्यापन की तुलना में कार्यक्रमबद्ध सीखना अधिक श्रेष्ठ है।

श्री देवल (1975) ने अंग्रेजी में सुधारात्मक अध्यापन के लिए कार्यक्रमबद्ध अध्यापन प्रणाली की प्रभाविता की तुलना की और पाया कि उनके प्रयोग में यद्यपि अप्रशिक्षित अध्यापक लगे थे फिर भी यह प्रणाली रुढ़िवादी प्रणाली की तुलना में अत्यधिक प्रभावशाली थी। अतः उनका निष्कर्ष था कि अंग्रेजी पढ़ाने वाले ऐसे अध्यापकों के लिए कार्यक्रमबद्ध अध्यापन कारगर है जो अप्रशिक्षित हैं। यह बात अति महत्व की है। बहुत सी माध्यमिक और उच्च प्रारंभिक पाठशालाओं में प्रशिक्षित अध्यापक नहीं हैं। यह विधि उन पाठशालाओं में उपयोगी सिद्ध होगी जहां पर प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है।

कृष्णामूर्ति (1966) ने आयुर्विज्ञान के द्वितीय वर्ष के छात्रों को जैव सांख्यिकी में एक कार्यक्रमबद्ध पाठ पढ़ाया और बाद में उन्हें एक प्रश्नावली यह जांचने के लिए दी कि कार्यक्रमबद्ध सामग्री के प्रति उनकी क्या अभिवृत्ति है। अधिकांश छात्रों ने अन्य विषयों के लिए भी कार्यक्रमबद्ध पाठ्यसामग्री को तरजीह दी। श्री मलिक (1967) ने बी.एड. के छात्रों को श्रेणी सहसंबंध पर एक कार्यक्रमबद्ध पत्राचार पाठ दिया और पत्राचार शिक्षा में इस प्रकार के प्रयोग पर उन छात्रों से उनके विचार मांगे। ये छात्रअन्य पाठ भी कार्यक्रमबद्ध सीखने के रूप में चाहते थे। श्री देसाई (1966) ने भी यह पाया कि छात्र कार्यक्रमबद्ध सीखने के दृष्टिकोण से ही पढ़ना पसन्द करते हैं।

विभिन्न प्रकार की कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों की तुलनात्मक प्रभाविता

योजना के विकास, प्रस्तुत करने की विधि, अनुक्रिया प्राप्त करने की प्रक्रिया तथा पुष्टि प्रदान करने की विधियों के आधार पर ही कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्रियों में भेद किया जाता है। विधियों का उस शैली से संबंध होता है जिसमें विषयवस्तु को व्यवस्थित किया जाता है उदाहरणार्थ–रेखीय, शाखन, गणित और ब्रैनियर तथा स्किप जैसी संकर शैलियां (कृष्णा स्वामी 1972)। विषय वस्तु प्रस्तुत करने के लिए युक्तियों का

प्रयोग किया जाता है जैसे पुस्तक फार्मेट, यन्त्र, टेप, स्लाइड, टेलीविजन आदि। कार्यक्रमबद्ध सीखने की प्रक्रिया में योजनाएं विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएं प्राप्त कर लेती हैं जैसे गुप्त और प्रकट। एक अनुक्रिया तात्कालिक अनुक्रिया भी हो सकती है जिसमें सही अनुक्रिया पहले से ही दी गई होती है। छात्र को उसे केवल पढ़ना या अनुकरण करना होता है। यदि वह उसे अप्रत्यक्ष रूप में पढ़ता है तो वह 'गुप्त अनुक्रिया अनुबोधन' का प्रयोग कर रहा है और यदि वह लिखता है तो वह 'प्रकट अनुक्रिया अनुबोधन' का प्रयोग करता है। इसी प्रकार पुष्टि युक्तियां भी भिन्न-भिन्न होती हैं। वे 'आंशिक' और 'पूर्ण' भी हो सकती हैं। वे प्रश्नावली 'अभ्यास' के रूप में हो सकती हैं (कपाडिया तथा कुलकर्णी 1974)।

विधियां, प्रस्तुत करने के तरीके और प्रक्रियाएं तीन स्वतंत्र वर्ग के चर होते हैं। समीक्षाधीन तुलनात्मक अध्ययनों में प्रयोगकर्ता जहां तक संभव हो सके एक वर्ग के चरों को बदलते रहे और अन्य चरों को स्थिर रखे रहे। यादव और कुलकर्णी (1966) ने 'साधारण समीकरण हल करने' में शाखन और रेखीय शैली के कार्यक्रमण का विकास किया है और उसकी प्रभाविता की तुलना की है। इसी प्रकार वर्मा (1971) और हुसैन (1974) ने भूगोल के विभिन्न विषयों में शाखन और रेखीय शैलियों के कार्यक्रमण की तुलना की है। कृष्णामूर्ति (1972) ने 'थर्मामीटर' पर शाखन, रेखीय, कक्षांतर पलुति और ब्रैंचीनियर (शाखन तथा रेखीय) प्रकार के कार्यक्रमण का विकास किया। कुलकर्णी (1969) ने बीजगणित पर रेखीय शैली के कार्यक्रमण का विकास किया और सारांश समीक्षा पुस्तिका प्रस्तुत की। उन्होंने बाद में यह कार्यक्रम दो समूहों पर लागू किया और परीक्षणोपरांत प्राप्तांक प्राप्त किए। उसके बाद उन्होंने एक समूह को कार्यक्रम के माध्यम से विषयों का पुनर्विलोकन करने को कहा और दूसरे समूह को सारांश समीक्षा पुस्तिकाओं के माध्यम से पुनर्विलोकन करने को कहा और बाद में उनकी उपलब्धियों की तुलना की। सिंह (1972) ने मानचित्र अध्ययन में औपचारिक और कथानक अनुबोधों का प्रयोग करके दो प्रकार की रेखीय शैली कार्यक्रमों का विकास किया और उनकी तुलनात्मक प्रभाविता की जांच की। श्री गुप्त (1973) ने क्रिया अनुसंधान में बड़े चरण और छोटे चरण रेखीय कार्यक्रमों का विकास किया और उनकी प्रभावशीलता की तुलना की।

प्रस्तुत करने की युक्तियों के संदर्भ में शर्मा (1966), सेठी (1974), सिंह (1976) तथा मलिक (1978) द्वारा अध्ययन किए गए हैं। श्री शर्मा (1966) ने एक एकक को 'रोल-अप बोर्ड' और पुस्तक फार्मेट कार्यक्रम के माध्यम से बीजगणित पढ़ाया। श्री सेठी (1974) ने टेप रिकार्डर का प्रयोग करके दृश्य और श्रव्य सामग्री के माध्यम से अंग्रेजी की वर्तनी सिखाई। सिंह (1976) ने अंधे बच्चों के लिए ब्रेल प्रणाली का प्रयोग किया और दृष्टि सम्पन्न बालकों पर कार्य-

क्रमबद्ध पाठ्यसामग्री का प्रयोग किया। श्री मलिक (1968) ने 'फूल' विषय को टेप स्लाइड कार्यक्रमण और पुस्तक फार्मेट कार्यक्रमण के माध्यम से पढ़ाया।

प्रक्रिया चरों पर श्री शाह (1971), कृष्णामूर्ति (1972) गुप्ता, (1973) तथा दीवान (1966) ने अध्ययन किया। 'निदेशित अंकों के योग और अंतरों' पर श्री शाह (1971) ने एक कार्यक्रम का प्रयोग करके चार अनुक्रिया माध्यमों की प्रभाविता का अध्ययन किया। यह अनुक्रिया माध्यम निम्नलिखित थे क–प्रकट उत्तर नहीं दिया गया, ख–प्रकट उत्तर दिया गया, ग–गुप्त उत्तर नहीं दिया गया तथा घ–गुप्त उत्तर दिया गया। कृष्णामूर्ति (1972) ने इन अनुक्रिया माध्यमों का अध्ययन थर्मामीटर पर एक कार्यक्रम का प्रयोग करके किया। श्री गुप्ता ने (1973) 'क्रिया अनुसंधान' में वर्गिकीय कोटि के संदर्भ में गुप्त और प्रकट अनुक्रिया उपलब्धियों की जाच की। दीवान (1968) ने एक कार्यक्रमबद्ध पाठ विकसित किया और पुष्टि तकनीक का परिवर्तित किया। एक समूह में एक अध्यापक ने टेलीविजन पर पाठ का एक चरण सिखाया और फिर एक प्रश्न पूछा और कुछ सैक-न्ड्स के लिए ठहरा। टेलीविजन पर एक प्रश्न चिन्ह् दिखाया गया और इसके बाद अध्यापक टेलीविजन पर फिर दिखा और उसने सही उत्तर बता दिया। एक दूसरे समूह में एक स्वः विशदीकरण परीक्षण दिया गया। छात्र द्वारा उत्तर देने के एकदम बाद एक कीमो कार्ड का प्रयोग यह जानने के लिए किया गया कि उत्तर सही थे अथवा नहीं।

विभिन्न तुलनात्मक अध्ययनों के परिणामों में कोई निश्चित प्रवृत्ति नहीं है। हुसैन को रेखीय शैली की तुलना में शाखन शैली अधिक श्रेष्ट लगी, वर्मा (1971) को इसके विपरीत लगा तथा यादव, कुलकर्णी (1969) तथा कृष्णामूर्ति (1972) ने पाया कि इनके व्यवहार में कोई भेद नहीं है। इसी प्रकार की अनिर्णयात्मक प्रवृत्ति उन परिणामों से उत्पन्न हुई जो प्रस्तुतीकरण युक्तियों और कार्यक्रमबद्ध सीखने की प्रक्रियाओं की तुलना से निकले थे। इसके अतिरिक्त अध्ययनों की संख्या इतनी कम थी कि सामान्यीकरण करना कठिन है।

कार्यक्रमबद्ध सीखना और शिक्षार्थी के चर

विभिन्न प्रकार के शिक्षार्थियों पर कार्यक्रमबद्ध सीखने के प्रभावों के विषयों में अनेक अध्ययनों द्वारा जांच की जा रही है। अध्ययनाधीन शिक्षार्थी चर निम्नलिखित हैं यथा–सामाजिक पृष्ठभूमि, काम, बुद्धि, उपलब्धि व व्यक्तित्व।

शर्मा (1967) तथा नेगी (1967) ने पाया कि कार्यक्रमबद्ध सीखने के माध्यम से पढ़ाए जाने पर ग्रामीण और शहरी छात्रों की उपलब्धियों में कोई

महत्वपूर्ण अन्तर नहीं होता । फिर भी सिंह (1972) ने पाया कि उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले छात्रों के उपलब्धि प्राप्तांक बहुत अधिक होते हैं ।

लाथे (1968) ने यह निष्कर्ष निकाला कि कार्यक्रमबद्ध सीखने से लड़के और लड़कियां समान रूप से लाभ पाते हैं । फिर भी भूषण (1972) ने अपने प्रयोगों में पाया कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों की उपलब्धि अधिक थी। इसके विपरीत सिंह (1972) ने पाया कि लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की उपलब्धि अधिक थी ।

गोयल (1970) ने पाया कि निम्न बुद्धि वाले छात्रों की अपेक्षा बुद्धिमान छात्र कम गलतियां करते हैं। भूषण (1972) ने पाया कि उच्च बुद्धि वाले छात्र परीक्षोपरान्त अधिक प्राप्तांक प्राप्त करते हैं। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला कि उच्च बुद्धि वाले छात्रों को कार्यक्रम समाप्त करने में कम समय लगता है। कपाडिया (1974) ने भी बुद्धि और उपलब्धि के बीच सकारात्मक सहसंबंध पाया । इसके विपरीत मलिक (1978) ने यह पाया कि निम्न बुद्धि वाले छात्र-समूह की उतनी ही उपलब्धि होती है जितनी अधिक बुद्धि वाले छात्र समूह की होती है । फिर भी यह देखा गया है कि कम बुद्धि वाले छात्र समूह को कार्यक्रम पूर्ण करने में अधिक समय लगता है ।

कमला (1969) तथा वर्मा (1971) ने पूर्व-परीक्षा उपलब्धि का परीक्षोपरान्त उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव की जांच की है। उन्होंने पाया कि पूर्व परीक्षा प्राप्तांक और परीक्षोपरान्त प्राप्तांक में 'सहसंबंध' सकारात्मक होता है । नेगी (1969) ने यह पाया कि छमाही परीक्षाओं में उपलब्धि के आधार पर बनाए गए 3 वर्गों में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं है। भूषण (1973) ने यह भी पाया कि शैक्षिक सांख्यिकीय कार्यक्रम में गणित के प्रारंभिक स्तर का परीक्षोपरांत प्राप्तांक के साथ कोई महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं है परन्तु मलिक (1978) ने यह पाया कि सामान्य विज्ञान विषय में जब एक कार्यक्रमबद्ध पाठ पढ़ाया गया तो उसकी परीक्षा में प्राप्त उपलब्धि के आधार पर बने 3 वर्गों में महत्वपूर्ण अन्तर पाया गया। यह कार्यक्रम अंग्रेजी में लिखा गया था। उन्होंने अंग्रेजी विषय की परीक्षा में प्राप्त उपलब्धि के आधार पर भी छात्रों के वर्ग बनाए और यह पाया कि अंग्रेजी में उच्च उपलब्धि वाले छात्रों को निम्न उपलब्धि वाले छात्रों की अपेक्षा अधिक लाभ हुआ ।

कपाडिया (1974) ने व्यक्तित्व चरों और कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्री पर छात्रों की उपलब्धियों के बीच संबंध की जांच की । उन्होंने पाया कि दुश्चिन्ता और उपलब्धि के बीच सहसंबंध नकारात्मक और महत्वहीन होता है ।

इसी प्रकार अंतर्मुखता-बहिर्मुखता और उपलब्धि के बीच सहसंबंध भी नकारात्मक और महत्वहीन होता है। परन्तु आत्मनिर्भरता और उपलब्धि के बीच सहसंबंध सकारात्मक होता है और वह महत्वहीन होता है। गंगोपाध्याय (1977) ने यह पाया कि दुश्चिंता और उपलब्धि के बीच कोई महत्वपूर्ण सहसंबंध नहीं है उन्होंने दुराग्रह और उपलब्धि के बीच संबंध की भी जांच की।

इन अध्ययनों के परिशीलन से यह पता लगा कि अनुसंधानकर्त्ताओं ने कार्यक्रमबद्ध सीखने के कई पक्षों पर अनुसंधान किए हैं। विपरीत निष्कर्षों के कारण और विभिन्न कारकों जैसे विषय का स्वरूप तथा एक प्रयोग से दूसरे प्रयोग तक शिक्षार्थियों के स्तर के अलग-अलग प्रभावों के कारण सामान्य निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है।

कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्री का विकास

भारत में विभिन्न प्रकार की कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्री तैयार की जा रही है। इनमें से अधिकांश पुस्तकें फार्मेट के रूप में हैं। परन्तु हाल में कई बहु-माध्यम कार्यक्रमबद्ध सामग्री का भी विकास हुआ है। किस प्रकार के कार्यक्रमों का विकास हुआ है, किन विषयों पर हुआ है और किन संस्थाओं द्वारा हुआ है, इसकी सूचना नीचे दी जा रही है।

1. शिक्षा मनोविज्ञान एकक, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली

(क) कायक्रमबद्ध सीखने के पाठ्यक्रमों में भाग लेने वाले व्यक्तियों द्वारा विकसित गणित, विज्ञान, भाषा तथा सामाजिक विज्ञान में 'पुस्तक फार्मेट कार्यक्रमबद्ध पाठ। निम्नलिखित शीर्षकों के अतर्गत कार्यक्रमबद्ध पाठ प्रकाशित हो चुके हैं– जैसे फूल, श्रेणी सहसंबंधी यथार्थ गणित, निदेशित अंक, स्लाइड रूल का प्रयोग कैसे करें, बीज और उनका अंकुरण तथा बंगाली लिपि स्वय सीखें आदि। निम्नलिखित कार्यक्रम पाठों को अंतिम रूप दिया जा चुका है सीखना, कुशल सीखने के 6 नियम, कक्षा में अध्यापक, शिक्षण, पर्यावरणी दबाव तथा संकुचलन-अपस्ट्रोफी का प्रयोग, बी. एड. के पत्राचार पाठ्यक्रम के लिए शिक्षा मनोविज्ञान और सांख्यिकी में पाठ भी विकसित किए गए हैं।

(ख) मक्खियों से सावधान, दांतों की देखरेख, फूल, शुद्ध जल आदि शीर्षकों पर बहुमाध्यम कार्यक्रमबद्ध एकक विकसित किए गए हैं जिनमें स्लाइड्स, टेप व अभ्यास पुस्तकें सम्मिलित हैं।

2–प्रारंभिक शिक्षा समूह तक व्यापक अभिगमन, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद

शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों के लिए निम्नलिखित विषयों पर पुस्तक फार्मेट में स्वयं सीखने वाले संपुटों का विकास किया गया है यथा–

पाठ्यचर्या के विकास में आधारभूत नियम और सक्रियायें, ज्ञान के लक्ष्यों के लिए पाठ्यचर्या विकास, स्वयं सीखने की सामग्री के फार्मेट, स्वयं सीखने की सामग्री की विषयवस्तु, समस्याओं की पहचान और लक्ष्य का निर्माण, सीखने के संपुट का डिजाइन बनाना आदि ।

3–शैक्षिक प्रौद्योगिकी का केन्द्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद

(क) पत्राचार पाठ्यक्रम सामग्री किस प्रकार विकसित की जाए इस विषय पर पुस्तक फार्मेट स्वंय सीखने वाले पाठ तैयार किए गए है । प्रारंभिक पाठशाला पाठ्यक्रम में विज्ञान की कठिन संकल्पनाओं पर कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्री का विकास किया गया है।

(ख) बहु माध्यम शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम विकसित किए गए हैं जिनमें टेलीविजन पाठ, रेडियो, प्रसारण, अध्यापक-मानीटर पुस्तिकाएं, कार्यक्रमबद्ध पाठ्य सामग्री तथा अनुशिक्षण सामग्री आदि सम्मिलित हैं।

4. शिक्षा राज्य संस्थान, उदयपुर

निम्नलिखित विषयों पर हिन्दी में पुस्तक फार्मेट कार्यक्रम विकसित हुए हैं, जैसे कार्यक्रमबद्ध सीखने के सिद्धांत, आगिवक विधि, कोशिका-रचना और कार्य, अलंकार, वचन, सन्धि, समास, हिन्दी में वर्तनी दोष । प्रारंभिक शिक्षक प्रशिक्षण [illegible] के शिक्षा मनोविज्ञान में कई पाठ विकसित किए गए हैं ।

5– विद्या भवन शिक्षक प्रशिक्षण कालिज, उदयपुर

(क) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की परियोजना के अंतर्गत अंग्रेजी और विज्ञान में पुस्तक फार्मेट कार्यक्रमबद्ध पाठ विकसित किए गए हैं।

(ख) एक मूक फिल्म और छात्र अभ्यास पुस्तक माला तथा एक बहु-माध्यम कार्यक्रमबद्ध पाठ भी विकसित किया गया है।

6–शिक्षा राज्य संस्थान, पूना

मराठी भाषा में चौथी कक्षा के लिए विज्ञान और गणित में पुस्तक फार्मेट

18–नेशनल इंस्टीट्यूट आफ बैंक मैनेजमेंट, बम्बई

बैंकिंग विषयों जैसे–सेफ डिपोजिट्स वाल्ट्स, प्रेषित धन, तुलन पत्र का विश्लेषण आदि पर पुस्तक फार्मेट कार्यक्रम विकसित किए गए हैं।

19--भारतीय जीवन बीमा निगम, बम्बई

जीवन बीमा निगम और अभ्यास, योजनाएं और बीमा, बिक्री के सरल उपाय, बिक्री के बाद सेवाएं–विषयों पर पुस्तक फार्मेट कार्यक्रम बनाए गए हैं ।

20–स्टेट बैंक आफ इंडिया स्टाफ ट्रेनिंग कालेज, हैदराबाद

(क) निम्नलिखित विषयों पर पुस्तक फार्मेट कार्यक्रम प्रकाशित किए गए हैं यथा–लेखाकरण प्रक्रिया, बचत बैंक लेखा, शाखा निपटान, सामान्य लेखा, सरकारी प्राप्तियाँ, लेखा विवरण, दैनिक पंजी और सहायक दैनिक पंजी आदि ।

(ख) कुछ योजनाओं का प्रयोग अध्यापन यंत्र के माध्यम (विग्ले ट्यूटर) से किया जाता है ।

21–लघु उद्योग प्रसार तथा प्रशिक्षण संस्थान, हैदराबाद

'लघु उद्योग प्रारंभ करने के लिए साध्यता अध्ययन कैसे किए जाए' विषय पर पुस्तक फार्मेट और बहुमाध्यम कार्यक्रम पाठ बनाए गए हैं । ठेकेदारों के प्रयोग करने के लिए कुछ और पाठ विकसित किए जा रहे हैं ।

22–संसाधन एकक, शिक्षा विभाग, दक्षिण गुजरात, विश्वविधालय

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की अनुदान परियोजना के अंतर्गत भारत और विदेशों में बनाए गए कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्री को एकत्र किया गया है। जिन विषयों पर पाठ नहीं बने हैं वे निम्नलिखित हैं :–संविधान का परिचय, ड्राइंग बुक, अपकेन्द्री लैम्प, बजट, लघुगणक, क्रिया अनुसंधान, शिक्षा के मूल्यांकन, मूल गणित, रसायन शास्त्र के नियम तथा अध्ययन कौशल आदि ।

सूचना प्रसार

कार्यक्रमबद्ध सीखने की विधियों और सामग्री के संबंध में सूचना को पाठ्यक्रमों, वर्कशाप, संगोष्ठियों और सम्मेलनों के माध्यम से प्रसारित किया जा रहा है। विदेशों से विशेषज्ञों ने भी संबंधित सूचना के प्रसार में भाग लिया है ।

कार्यक्रमबद्ध सीखने में पाठ्यक्रम कार्य संगोष्ठी

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एंव प्रशिक्षण परिषद् द्वारा नियमित रूप से प्रतिवर्ष कार्यक्रमबद्ध सीखने पर एक अखिल भारतीय पाठयक्रम चलाया जाता है। 1976

तक ऐसे दस पाठ्यक्रम चलाए जा चुके हैं। स्थिति का पुनर्विलोकन किया गया और अब इसी पाठ्यक्रम को पत्राचार पाठ्यक्रमों में प्रयुक्त करने के लिए स्वंय सीखने वाले पाठों के रूप में प्रशिक्षण व विकासात्मक कार्य संगोष्ठी में परिवर्तित कर दिया गया है।

प्रारम्भ में कार्यक्रमबद्ध सीखना पाठ्यक्रम विदेशी विशेषज्ञों की सहायता से चलाए जाते थे। प्रथम पाठ्यक्रम में सूजान मेयर मार्कल तथा बी. बिल्सन परामर्शदाता रहे और तीसरे पाठ्यक्रम में पाल जैकब परामर्शदाता रहे।

यह पाठ्यक्रम केवल अध्यापकों, प्राध्यापकों, मुख्याध्यापकों और शैक्षिक प्रशासकों के लिए ही नहीं था बल्कि रक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और उद्योग के क्षेत्र में प्रशिक्षण देने वाले व्यक्तियों के लिए भी था। यह पाठ्यक्रम दो चरणों में चलाया गया। प्रथम चरण सामान्यतः मई में और दूसरा नवम्बर में होता था। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य व्यक्तियों को कार्यक्रमबद्ध सीखने की सामग्री विकसित करने के लिए प्रशिक्षित करना है जिससे कि वह अन्य व्यक्तियों को राज्य स्तर पर या अन्य अभिकरणों में जो उन्हें प्रायोजित करते हैं प्रशिक्षित कर सकें। यह पाठ्यक्रम अब एक संगोष्ठी में परिवर्तित कर दिया गया है जिससे कि स्वंय सीखने वाले पाठ विकसित किए जा सकें।

कार्य संगोष्ठी के उद्देश्य लगभग वही हैं केवल कुछ क्षेत्रों में स्वंय सीखने-वाले पाठों पर अब अधिक बल दिया जाता है। इस कारण भाग लेने वाले व्यक्ति उसी क्षेत्र से चुने जाते हैं। प्रथम कार्य संगोष्ठी 1977-78 में संगठित की गई थी। इसके दो चरण क्रमशः फरवरी, 1977 और अगस्त, 1978 में हुए। इस कार्य संगोष्ठी में बी. एड. के पाठ्यक्रम के लिए शिक्षा मनोविज्ञान और सांख्यिकी पर कार्यक्रमबद्ध पाठ विकसित किए गए।

अखिल भारतीय सम्मेलन

कार्यक्रमबद्ध सीखने से संबंधित भारतीय संघ प्रतिवर्ष कार्यक्रमबद्ध सीखने में अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन कर रहा है। ये सम्मेलन ऐसी विषय-वस्तु पर व्यवस्थित किए जाते हैं जो उस समय भारत में कार्यक्रमबद्ध सीखने के आन्दोलन की स्थितियों और अवस्थाओं के लिए उचित हों।

इसकी व्याप्ति और उद्देश्यों के बढ़ जाने के कारण 1974 में इस संघ का नाम बदल कर 'इंडियन एसोसिएशन फार प्रोग्राम्ड लर्निंग एण्ड एजुकेशन इनोवेशन्स'

कर दिया गया था। निम्नलिखित सारणी में सम्मेलनों की विषयवस्तु और संगठनों जहां सम्मेलन हुए हैं, आदि की सूची दी गई है।

अखिल भारतीय सम्मेलन

क्रम संख्या	सम्मेलन की विषय वस्तु	सहयोग देने वाला संगठन	वर्ष
1	शैक्षिक प्रौद्योगिकी की ओर	एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली	1968
2	उद्योग, सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा शिक्षा में कार्यक्रमबद्ध शिक्षण	सी. ए. एस. ई., एम. एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा	1969
3	शैक्षिक प्रौद्योगिकी में कार्यक्रमबद्ध सीखना	एस. एन. डी. टी. वीमेन्स यूनिवर्सिटी, बम्बई	1970
4	क्रिया में शैक्षिक प्रौद्योगिकी	टी. टी. टी. आई. मद्रास	1972
5	शक्षिक प्रौद्योगिकी तथा विकास	एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली	1973
6	शैक्षिक प्रौद्योगिकी की सीमाएं और संभाव्यताएं	बर्ल्ड एजुकेशन फैलोशिप के सहयोग से	1974
7	अध्ययापन एंव प्रशिक्षण के लिए प्रौद्योगिकी/राष्ट्रीय आवश्यकताओं के लिए नवीकरण और रूपांतरण	सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट आफ इंग्लिश एण्ड फारेन लैग्वेजिज, हैदराबाद	1975
8	शिक्षा में नवीकरण की भूमिका	आई. आई. एम., कलकत्ता	1976
9	ग्रामीण विकास के लिए शिक्षा	गांधी विद्यामन्दिर सरकार शहर, राजस्थान	1977
10	प्रौढ़ शिक्षा के लिए प्रौद्योगिकी और नवीकरण।	सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, गुजरात	1979

इस संघ के मुख्य कार्यालय दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत के शिक्षा विभाग से एक तिमाही समाचार पत्र प्रकाशित होता है। इसी संघ की एक छमाही पत्रिका भी हैदराबाद के केन्द्रीय अंग्रेजी व विदेशी भाषा संस्थान के संपादकीय एकक से प्रकाशित होती है।

विदेशी विशेषज्ञों और अभिकरणों की भूमिका

कार्यक्रमबद्ध सीखने में अन्य देशों से कई विशेषज्ञ भारत आए और उन्होंने कार्यक्रमबद्ध सीखने के तकनीक संबंधी सूचना को प्रसारित करने में सहायता की। सूज़ान एम. मार्कले भारत में दो बार आई। एक बार 1966 में और दूसरी बार 1970 में जबकि उनके साथ फिलिप डब्ल्यू थीमन भी थे। 1967–69 में कुमारी बी. विल्सन, भरगोलिस तथा पॉल जेकब भारत आए और उन्होंने कार्यक्रम-बद्ध सीखने के पाठ्यक्रम चलाने में सहायता प्रदान की। 1969-70 में फिलिप्स सी. लोगे तथा डैसमोन्ड पी. डब्ल्यू. एडवर्स ने कार्यक्रमबद्ध सीखने में एक साध्यता अध्ययन प्रारंभ किया।

इसके अतिरिक्त निम्नलिखित ने इस देश में कार्यक्रमबद्ध सीखने के प्रचार-प्रसार में सहायता की यथा-जी. एस. हैमंड, जौसेफ कार्टर, जोरोम डी. कल्लान, एम. डेनियल स्मिथ, मोर्टन टर्पैल, हैनरी एच, वाल्पीज, पाल वी. राबिन्सन, जी. एम. डल्लापियना, क्लिन्सटन बैस्ट, फ्रांसिस ए. कोटियर। भारत में कार्यक्रम-बद्ध सीखने के विभिन्न कार्यक्रमों में यूनेस्कों और यूनिसेफ तथा अन्य संगठन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यूनेस्कों के योजनाबद्ध सीखने की परामर्शदाता कुमारी ऐन. हाकिन्स भारत में 1971 में आई। 1975 में मद्रास में हुए कार्य-क्रमबद्ध सीखने के सम्मेलन में वर्जिनिया विश्वविद्यालय के एलियन प्लेनेल ने यूनेस्को का प्रतिनिधित्व किया। यूनेस्को के और विशेषज्ञ जे. रत्नायक भारत में 1978 में आए। उन्होंने भारत के विशेषज्ञों तथा यूनिसेफ के सहयोग से अनेक विचार-विमर्श किए। इसके परिणामस्वरूप यूनिसेफ 'कम्प्रिहेन्सिव एक्सेस टू प्राइमरी एजुकेशन' परियोजना में सहायता कर रहा है। यह परियोजना एन. सी. ई. आर. टी. तथा भारत के विभिन्न राज्यों के सहयोग द्वारा क्रियान्वित की जा रही है। इस परियोजना के माध्यम से 9 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के विद्यालयेत्तर बालकों के लिए, भाग लेने वाले राज्यों के हजारों अध्यापकों और अध्यापक प्रशिक्षकों को स्वतः सीखने के संपुटों के विकास और प्रयोग में इस परियोजना के द्वारा प्रशिक्षित किया जा रहा है।

भारत में कार्यक्रमबद्ध सीखने के महत्वपूर्ण केन्द्रों की सूची

केन्द्र	कार्यस्तर
1. मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	एम. ए., पी. एच. डी.,
2. शिक्षा का उच्च अध्ययन केन्द्र, एम. एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा–2	एम. ए., एम. एड., पी. एच. डी.

केन्द्र	कार्यस्तर
3. शिक्षा विभाग, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश)	एम. फिल., एम. एड. पी. एच. डी.
4. उच्च अध्ययन संस्थान, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश)	एम. एड., एम. फिल. पी. एच. डी.
5. शिक्षा विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय (शिमला), हिमाचल प्रदेश	एम. एड., पी. एच. डी.
6. शिक्षा विभाग, दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय, सूरत (गुजरात)	एम. एड., पी. एच. डी.
7. शिक्षा विभाग, एस. एन. डी. टी. विश्वविद्यालय, बम्बई	एम. एड.
8. विद्या भवन, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान	एम. एड.
9. तिलक शिक्षा महाविद्यालय पूना, महाराष्ट्र	एम. एड.
10. राजकीय शिक्षा संस्थान, अहमदाबाद	एम. एड.
11. राजकीय शिक्षा संस्थान, पूना, महाराष्ट्र	—
12. शैक्षिक मनोविज्ञान एकक, एन. सी.ई. आर. टी., नई दिल्ली–16	इंस्टिट्यूशनल

केन्द्र	कार्यस्तर
13. शैक्षिक प्रौद्योगिकी केन्द्र एन. सी. इ. आर. टी., नई दिल्ली	—
24. बैंक प्रबंध का राष्ट्रीय संस्थान, बम्बई	इंस्टिट्यूशनल
15. भारतीय जीवन बीमा निगम, बम्बई ।	,,

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एलन, जे. तथा रिजर्डसन, आर. कार्यक्रमबद्ध सीखना : एक बहुमाध्यम उपागम : प्रोबलम एंड मेथड इन प्रोग्रामड लर्निंग : कार्यक्रमबद्ध सीखने का राष्ट्रीय केन्द्र, बरमिंघम विश्वविद्यालय, 1966 ।

2. अमेरिका, आर. प्रारंभिक भौतिकी पर स्व-प्रशिक्षण कार्यक्रम से सीखने के समूह तथा वैयक्तिक विधियों की तुलना । एम. एड. थीसिस बरमिंघम यूनि. (1966) ।

3. एनेट, जे. 'रिसर्च स्ट्रेटेजी फार टैक्नोलोजी ऑफ टीचिंग' इन रेस्पैक्ट ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, अनविन डी. तथा लिंडहाऊस द्वारा संपादित, जे. मैथ्यून, लंदन, 1967 ।

4. ब्लूम, बी. एस. (संशोधित संस्करण) टैक्सोनोमी ऑफ एजुकेशनल ओब्जेक्टिवस, कोगनेटिव डोमेन, डेविड मैकट, न्यूयॉर्क (1950) ।

5. ब्रेवर, जे. एम., एन अडियोविज्यूल मैथड ऑफ टीचिंग एंड लर्निंग इन बायोलौजी सिडनी यूनि. पी. एच. डी. थीसिस 1974 ।

6. ब्रुनर, जे. एस., हिलगार्ड, आर., की "थियोरी ऑफ लर्निंग एंड इस्ट्रक्शन में गणित के संदर्भ में चित्रित प्रशिक्षण से संबंधित कुछ सिद्धांत : शिक्षा के अध्ययन के लिए राष्ट्रीय सोसाइटी की 63वीं वार्षिक पुस्तक ।

7. बूटर, ई. एम., एजुकेशनल साइंस इन हौलैंड, कार्यक्रमबद्ध सीखना तथा शैक्षिक प्रौद्योगिकी लंदन 1976 के लिए शैक्षणिक तथा प्रशिक्षक से संबंधी प्रौद्योगिकीय संघ की अंतर्राष्ट्रीय वर्ष पुस्तक ।

8. क्राइस्ट, आर. एल. ग्रुप., यूज ऑफ प्रोग्रामड इस्ट्रेक्शन फॉर एकेडमिक्ली एबिल स्टूडेंट्स, एन. एस. पी. आई. जर्नल. खंड 9, (1960) ।

9. डायर, एफ. एम., ए गाइड फार इम्प्रूविंग विज्यूलाइज्ड इंस्ट्रेक्शन, सिल्वेनिया स्टेट यूनि. पेनिसिल्वेनिया, 1972 ।

10. एमलिंग, आर. एस, एन. एवेल्यूशन ऑफ द यूज ऑफ प्रोग्रामड इस्ट्रेक्शन ऐट सिक्स डेंटल स्कूलज, पी. एच. डी. थीसिस, पेनिसिल्वेनिया यूनि० 1974।

11. गेगने, आर. एम., द कंडीशन आफ लर्निग, होल्ड, राइन हार्ट एंड विसंटन न्यूयॉर्क, 1970 ।

12. गिलबर्ट, टी. एफ. मैथेटिक्स-1, 'द टैक्नोलॉजी ऑफ एजूकेशन एंड मैथेटिक्स, 1962 ।

13. हार्टले, जे. एण्ड कूक–प्रोग्रामड लर्निग इन पेरिस, द रजर्ट ऑफ मिनिएचर एक्सपेरिमेंट, ए. पी. एल./एन., सी. पी. एल. सम्मेलन में प्रस्तुत शोध-पत्र बरमिंघम, 1967 ।

14. हौलैंड जे. जी., ए टीचिंग मशीन प्रोग्राम इन साइकोलोजी इन गेलेटर ई ओटोमेटिक टीचिंग : द स्टेट ऑफ आर्ट, विले, 1959।

15. जेकिन्स, जॉन डेविड, 'एन एक्सपैरिमेंट टू डिटर्मिन द इफक्टिवनेस ऑफ स्लाइड्स एंड ओडियो टेप्स फॉर प्रेजेंटिंग मैनीपूलेटिप डैमोंस्ट्रेशन इन ग्राफिक आर्टस, पी. एच. डी. थीसीस टैक्साज, ए. एम. यूनि. 1969।

16. मार्फल, सूसान, एम. 'इम्पीरिकल टेस्टिंग ऑफ प्रोग्राम' इन प्रोग्रामड इन्स्ट्रक्शन फिल. सी. लांग, शिक्षा के अध्ययन की राष्ट्रीय सोसाइटी, यू. एस. ए., 1967।

17. ओल्डफिल्ड डब्ल्यू. जे. कार्यक्रमबद्ध सीखने में वैयक्तिक बनाम समूह विधियां : कार्यक्रमबद्ध सीखने में अनुसंधान टिप्पणियां नं. 1 एन. सी. पी. एल. बरमिंघम यू नि. 1964 ।

18. स्कीनर बी. एफ. 'द साइंस ऑफ लर्निग एण्ड आर्ट ऑफ टीचिंग, हारवार्ड एजुकेशनल रिव्यू, 1954 ।

19. स्कीनर बी०एड० 'और होलैंड जे०जी., द यूज ऑफ टीचिंग मशीन इन कालिज इन्स्ट्रक्शन', शिक्षा के वकास के लिए फण्ड के लिए रिपोर्ट 1958 ।

20. अग्रवाल, संतोष 'एन इन्स्ट्रक्शनल प्रोग्राम इन मेजर ऑफ सेंट्रल टेन्डेंसी' एम. एड. शोध-पत्र, मेरठ विश्व., 1968 ।

21. भूषण आनन्द 'एन एक्सपेरिमेंटल स्टडी ऑफ लिनियर प्रोग्राम इन एजुकेशन,' स्टेटिस्टिक फॉर बी. एड. स्टूडैंट्स एण्ड टीचर्स : पी. एच. डी थीसिस, मेरठ विश्व. 1973 ।

किया गया है) तथा क्लासिकीय अनुकूलन की दर के बीच सकारात्मक संबंध प्रदर्शित किए गए हैं। अन्य जीवों की तरह यह प्रदर्शित किया गया है कि संवेदन वृत्तियां जिनकी ओर अनुकूलित उद्दीपन और अननुकूलित उद्दीपन निदेशित होते हैं, अनुकलन प्रक्रिया के अनुरुप होती है जैसाकि अनुकूलित उद्दीपन तथा अननुकूलित उद्दीपन के युगलों के लिए किए गए प्रयत्नों की संख्या और अनुकूलन की शक्ति और विद्यमानता को मापने में प्रयुक्त परीक्षकों की प्रकृति से प्रकट होता है। वास्तव में, यह निष्कर्ष निकालना कि अनुकूलन हुआ है इन परीक्षणों की प्रकृति पर निर्भर करता है जिसमें निम्नलिखित तकनीक सम्मिलित हैं जैसे कि प्रशिक्षण प्रयासों की अवधि में भिन्न-भिन्न विकिरित परीक्षण प्रयास किए गए अथवा नहीं, उद्दीपन के लुप्त हो जाने के समय अनुकूलन मापा गया या नहीं, या अनुक्रिया का रिकार्ड रखने वाला उपकरण प्रतिक्रिया के सूक्ष्म पक्ष को भी पहचानने की क्षमता रखता है या नहीं आदि। कुल मिला कर शिशुओं और बच्चों में क्लासिकीय अनुकूलन एक सुप्रलेखित घटना है यद्यपि घटना को प्रभावित करने वाले चरों जैसे बच्चों की आयु आदि के विषय में अतिरिक्त और विस्तृत जांच की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए फिलहाल ऐसा प्रतीत होता है कि बच्चे की आयु और अनुकूलन की शक्ति और गति से संबंधित अन्य परिमापों के बीच अन्योन्यक्रिया की संभावना है। एक सुझाव यह है कि बड़े व्यक्ति की तुलना में एक छोटे बच्चे के इष्टतम अनुकूलन के लिए अनुकूलित उद्दीपन-अननुकूलित उद्दीपन के लंबे अंतरालों की आवश्यकता होती है।

कई जांचकर्ताओं ने हाल में सुनियंत्रित प्रायोगिक परिस्थितियों में नवजात शिशुओं में क्लासिकी अनुकूलन स्थापित किया है।' प्रयोग किए जाने वाले हानिकारक उद्दीपन के अन्तर्गत की जाने वाली परिहार अनुक्रियाओं के क्लासिकीय अनुकूलन की तुलना में भूख से संबंधित अनुक्रियाओं का अनुकूलन प्राप्त करना सरल है। कुछ जांचकर्ताओं ने यह बताया है कि मौखिक उद्दीपन के प्रति भ्रूण की अनुक्रिया तंत्रिका शरीर क्रियात्मक रूप से बहुत जल्दी विकसित हो जाती है और उसकी स्पीसीज़ को बनाए रखने में अति मूल्यवान है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि हानिकारक उद्दीपनों के प्रति कुछ बचाव प्रतिक्रियाएं भी जल्दी विकसित हो जाती हैं और खराब से खराब परिस्थितियों में, जीव के बने रहने में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती ह। बच्चों में भूख संबंधी और परिहार प्रक्रियाओं की जांच की आवश्यकता है।

यह भी कहा जा सकता है कि शिशुओं और बालकों में अभ्यसन की व्यावहारिक उपस्थिति प्रमाणित की जा चुकी है जैसे कि विविध अवमानवीय जीवों में की जा चुकी है। अभ्यसन अनुक्रिया का वह प्रगतिशील ह्रास है जो कि एक उद्दीपन को बार-बार प्रस्तुत करने के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है। वास्तव में, प्रस्तुत

किए गए उद्दीपन से उत्पन्न स्थितियों और जीव के बदलते हुए वृत्तों के फलस्वरूप कई प्रकार की अनुक्रिया कम हो सकती हैं और इनमें से केवल एक अथवा कुछ ही को सीखने की प्रक्रिया के वर्ग में रखा जा सकता है।

क्रियाप्रसूत अनुकूलन

बाल व्यवहार के जांचकर्त्ताओं ने क्रियाप्रसूत अनुकूलन पर काफी ध्यान दिया है। बच्चे की अनुक्रिया सोपानिकी में प्रारंभ से ही निम्न कोटि की अनुक्रिया का प्रणालीबद्ध पुनर्बलन बाद की प्रक्रियाओं की गति पर महत्वपूर्ण रूप से प्रभाव डालता है। क्रिया प्रसूत अनुकूलन में वांछित अनुक्रिया पर 'सकारात्मक' पुनर्बलन का समावेश होता है। इस प्रकार के सकारात्मक पुनर्बलक का उदाहरण है—पुरस्कार रूप में बच्चों को मिठाई देना अथवा अनुक्रिया के सही होने का संकेत देना। इसके विपरीत 'नकारात्मक' पुनर्बलन में सीखी जाने वाली अनुक्रिया के विद्यमान होने पर अप्रिय उद्दीपन की समाप्ति सम्मिलित होती है। अन्त में दोनों प्रकार के पुनर्बलन द्वारा उस अनुक्रिया की शक्ति बढ़ जाती है जिस पर पुनर्बलन किया गया है। एक तीसरी प्रकार की अनुक्रिया आनुषंगिक घटना होती है जिसमें किसी अवांछित अनुक्रिया के समय सकारात्मक पुनर्बलन को हटा दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी अवांछित व्यवहार (जैसे बच्चों में अंगूठा चूसना) को समाप्त या कम करने के लिए किसी चलचित्र का स्वतः निरुपण अत्यन्त प्रभावशाली है। क्रिया प्रसूत तकनीक सुविख्यात प्रभाव नियम से लाभ उठाता है, और देखा गया है कि विभिन्न प्रकार के व्यवहारों में जैसे अनुकरणात्मक अनुक्रियाओं, मुस्कराने, विनय भाव दर्शाने में तथा भाषा आदि में प्रायोगिक स्थितियों के अन्तर्गत यह तकनीक शक्तिशाली नियंत्रण करता है। यह पाया गया है कि विभिन्न प्रकार की पुनर्बलन सूचियां (उदाहरणार्थ अन्तर्विरामी बनाम सतत) बच्चों में विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएं उत्पन्न करती हैं, जब पुनर्बलन हटा लिया जाता है तो अनुक्रियाओं के विलोप की विभेदी संभाव्यताएं उत्पन्न हो जाती हैं।

विभेदात्मक सीखना

विभेदात्मक सीखने से संबंधित अध्ययन एक और प्रकार की अनुकूलन जांच है जिसका संबंध कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यवहार के जनन या उसे बनाए रखने में पुनर्बलन के प्रभावों से है। इन अध्ययनों में ऐसे तकनीकों की बजाय, जो कि पात्र को किसी भी समय प्रतिक्रिया करने की अनुमति देते हैं, विविक्त प्रयास प्रक्रियाएं सम्मिलित होती हैं। विभेदात्मक सीखने में बच्चे को अनेक अवसरों की उपस्थिति में सही उद्दीपन चुनने के लिए पुरस्कृत किया जाता है। इन अध्ययनों में बच्चे के विभेदात्मक सीखने की गति पर प्रभाव डालने वाले अनेक परिमापों को दिखाया गया है जिसमें

करण, जिसमें एक उद्दीपन के प्रति किसी विशेष अनुक्रिया सीख जाने पर जीव अन्य समान उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया करने के लिए तैयार रहता है और फलस्वरूप उस की अनुक्रिया उद्दीपनों में समानता के अनुपात में होती है।

बच्चों में दो सामान्य प्रकार के प्रशिक्षण के अंतरण यथा—गैर-विशिष्ट और विशिष्ट का विस्तृत अध्ययन किया गया है। ये दोनों प्रकार के अंतरण एक स्थिति से दूसरी स्थिति में सीखने के सामान्यीकरण के संगत हैं, चाहे वह एक प्रयोगशाला स्थिति से दूसरी प्रयोगशाला स्थिति में हो, और चाहे प्रयोगशाला से "वास्तविक जीवन" हो या एक वास्तविक जीवन स्थिति से दूसरी वास्तविक जीवन स्थिति हो। गैर-विशिष्ट अन्तरण जिसे विभिन्न रूप में वर्णित किया जाता है—जैसे "वार्म अप" अथवा "लर्निंग टू लर्न" स्थिति के अनुसार विषय-पात्र को किसी विशेष तरीके से निष्पादन करने के लिए तैयार करता है। इस प्रकार के अंतरण का संबंध अनुक्रिया-विषयों को समझने में अभ्यास कौशल, उद्दीपन को अच्छी तरह से देखने अथवा विश्रांति की स्थिति या निर्देशों की प्रतीक्षा करने से है। यह बहुत संभव है कि बाद के कार्यों की अपेक्षानुसार इस प्रकार के 'वार्मअप' बाद के निष्पादन को क्षीण कर दे या सरल कर दें। विशिष्ट अंतरण भी या तो निष्पादन को सरल करता है या क्षीण करता है और यह बाद के कार्य-निष्पादन पर पहले के कार्यों के प्रभावों को भी उल्लेखित करता है, विशेषकर इसका संबंध इस बात से भी है कि पहले सीखा गया कार्य बाद के सीखे गए कार्य के समान है अथवा नहीं।

बच्चों के मौखिक और गतिविभेदात्मक सीखने में विशिष्ट अंतरण के कई अध्ययन किए गए हैं। बच्चों के साथ युग्मित सहचर कार्य का अधिकांश भाग नकारात्मक अन्तरण पर केन्द्रित रहा है। यह अंतरण किसी ऐसे उद्दीपन, जिसके प्रति अनुक्रियाएं पहले से सीखी जा चुकी थीं, के प्रति नई अनुक्रियाओं के लिए पुनःप्रशिक्षित करके उत्पन्न किया जाता है। फिर भी इनमें से बहुत से युग्मित सहचर अध्ययन, ऐसे शाब्दिक माध्यम पर किए गए हैं जो विशिष्ट उद्दीपन और अनुक्रियाओं पर आधारित सकारात्मक अथवा नकारात्मक अंतरण उत्पन्न कर सकते हैं। पूर्व सक्रिय सौकर्य (सुकरता) या अवरोध पर किए गए कुछ अध्ययनों में उपार्जित विशिष्टता अथवा उपार्जित समानता पर भी विचार किया गया है। उपार्जित समानता अध्ययन से यह प्रदर्शित हुआ कि बच्चे उन उद्दीपनों के प्रति विभेदात्मक अनुक्रियाएं सीखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं जिनसे मिलते-जुलते नाम उन्होंने पहले ही सीख रखे होते हैं, जब कि उपार्जित विशिष्टता अध्ययनों से यह प्रदर्शित हुआ है कि यदि बच्चों ने विभेदात्मक उद्दीपन के लिए पहले से ही विभिन्न नाम सीख रखे हैं तो उसी उद्दीपन के प्रति बाद की विभेदात्मक अनुक्रियाएं सीखना सरल हो जाता है।

शाब्दिक मध्यस्थता और स्थान विनिमय

बच्चों में विशेष प्रकार के प्रशिक्षण अंतरण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है जिसे स्थान विनिमय व्यवहार कहते हैं। बच्चों को पहले एक साथ प्रस्तुत किए गए दो या उससे अधिक उद्दीपनों में से एक को चुनने का प्रशिक्षण दिया जाता है, जैसे दो वृत्तों में से बड़े वाले को चुनना। स्थान विनिमय तब होता है जब बच्चे के सामने ऐसा अंतरण कार्य प्रस्तुत किया जाता है जिसमें एक बड़े उद्दीपन के साथ उससे छोटे उद्दीपन को प्रस्तुत किया जाए और बच्चा उस विशिष्ट उद्दीपन को चुनने की बजाय, जिसकी अनुक्रिया पहले से ही पुनर्बलित की गई है, सबसे बड़े उद्दीपन को चुनता है। निम्न कोटि के प्राणी प्रायः तब स्थान विनिमय प्रदर्शित करते हैं जब कि अंतरण युगल प्रशिक्षण युगल के बहुत समान होता है। परन्तु इस प्रकार का स्थान विनिमय तब समाप्त हो जाता है जब कि परीक्षण युगल में बहुत असमानता होती है। इस पर किए गए कई अध्ययनों से यह पता चलता है कि यह नियम छोटे बच्चों के विषय में सही होता है, परन्तु पूर्ण रूप से स्थान विनिमय थोड़े बड़े या बोलने वाले बच्चों में होता है। संभवतः किसी एक संकल्पना को ग्रहण करना—जैसे कि "उससे बड़ा" तभी हो सकता है जब कि विनिमय का विस्तार एकदम असमान उद्दीपन पर अधिक हो। स्थान विनिमय विकासात्मक रुचि को आकृष्ट करता है क्योंकि स्थान विनिमय कालानुक्रमिक और मानसिक आयु के बढ़ने पर स्पष्ट रूप से बदल जाता है तथा इसलिए भी बदल जाता है कि भाषा कौशल इस घटना के साथ महत्वपूर्ण संबंध रखता है।

विभेदात्मक सीखने में शाब्दिकता के महत्व के लिए समर्थक प्रमाण "विपर्यास विवर्तन और अविपर्यास-विवर्तन" प्रक्रियाओं की तुलना करने वाले अध्ययनों में मिलते हैं। इसके विशिष्ट प्रयोग में दो विभिन्न विमाओं वाले उद्दीपनों को प्रस्तुत करना है, जिनमें से एक विमा सही अनुक्रिया का संकेत देती है। उदाहरण के लिए उद्दीपन के आकार और चमक दोनों में भिन्नता होती है, बच्चे को उद्दीपन के आकार को नजरअन्दाज करते हुए चमकदार उद्दीपन की बजाए बिना चमकवाले उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करनी होती है। "विपर्यास विवर्तन" में चमक के प्रति की गई अनुक्रिया को सही बनाने के लिए परिवर्तन निहित है जबकि 'अविपर्यास विवर्तन' में आकार को एक संगत विमा माना जाता है। अविपर्यास विवर्तन छोटे बच्चों और पशुओं के लिए अधिक सरल होता है। विपर्यास विवर्तन वयस्कों और अधिक बोलने वाले (या बड़े) बच्चों के लिए अधिक सरल होता है।

हाल में युग्मित सहचर सीखने तथा शाब्दिक मध्यस्थता विषय के बहुत से विद्यार्थियों ने बच्चों की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है। अभी उन

सामाजिक उद्दीपन से वंचन

संस्थानीकरण के और सामान्य रूप में सामाजिक उद्दीपन के वंचन के प्रभाव कुछ सीमा तक विवादास्पद हैं परन्तु विद्यमान प्रमाणों से यह सुझाव मिलता है कि इस प्रकार के अनुभव प्रायः गंभीर संवेदनात्मक और बौद्धिक अभाव उत्पन्न करते हैं। यह प्रभाव इतने विवादास्पद नहीं हैं जितने कि इन प्रभावों को उत्पन्न करने वाली वास्तविक घटनाएं–उदाहरण के लिए–चाहे यह संगतचर (घटना) माता से पृथक करना है या केवल मानवीय या पर्यावरणी सम्पर्कों में कमी करना है। यह अनुमान लगाना तर्कसंगत है कि संस्थागत और वंचन संबंधी प्रभावों में मुख्यतः सीखने की पहली दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के प्रभाव सम्मिलित होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रिजो, सिजने डब्ल्यू तथा बेअर, डोनल्ड एम., 1960–बच्चे के व्यवहार की प्रयोगशाला–प्रयोगात्मक अध्ययन पृष्ठ 140–197 पाल एच. मुसेन (संपादक) हैंड बुक ऑफ रिसर्च मैथड इन चाइल्ड डेवेलपमेंट, न्यूयॉर्क, विली।

2. लिपसिट, लेविस. पी. 1963–जीवन के प्रथम वर्ष में सीखना खंड 1 पृष्ठ 147–195 लेविस, पी. लिपसिट. तथा चार्ल्स सी. स्पाइकर (संपादक) एडवांसिस इन चाइल्ड डेवेलपमेंट एंड बिहेविअर, न्यूयॉर्क अकादमी प्रेस।

3. मैकडल्स, बॉयड आर. 1961–चिल्ड्रन एंड एडोलेसेंट बिहेविअर एंड डिवेलपमैंट, न्यूयॉर्क हॉल्ट।

4. मन, नौरमन एल. (1946) 1954–बच्चों द्वारा सीखना पृष्ठ 374–458, लिओनार्ड, कारमाइकल (संपादक) मैनुअल ऑफ चाइल्ड साइकोलॉजी दूसरा संस्करण, न्यूयॉर्क, विली।

5. रेहनगोल्ड, हैरिट एल. तथा स्टेनलै, वाल्टर सी. 1963–विमेदात्मक मनोविज्ञान, ऐनुअल रिव्यू ऑफ साइकोलॉजी 14: 1–28

6. स्पाइकर, चार्ल्स सी. 1960–बच्चों द्वारा सीखने में अनुसंधान की विधियां–पृष्ठ 375–420, पोल एच. मुसेन (संपादक) हैंडबुक ऑफ रिसर्च मैथड्स इन चाइल्ड डेवेलपमैंट न्यूयॉर्क : विली

7. ह्वाहिट, शेलडन एच. 1963–सीखना पृष्ठ 196–235, शिक्षा के अध्ययन के लिए राष्ट्रीय सोसाइटी–बाल मनोविज्ञान समिति, चाइल्ड साइकोलौजी वार्षिक पुस्तक, खंड 62 भाग-I शिकागो प्रेस यूनिवर्सिटी

बौद्धिक विकास

बौद्धिक विकास से व्यक्ति की चिंतन, तर्कना, सापेक्ष निर्णय तथा संकल्पनात्मकता की क्षमताओं में वृद्धि और अनुभव के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों का बोध होता है। ऐसे परिवर्तन बच्चों में विशेष रूप से होते हैं।

बच्चों के बौद्धिक विकास का अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोण से किया जाता है। जैसा कि वैज्ञानिक ज्ञान की अधिकांश शाखाओं के इतिहास से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का अध्ययन प्रेक्षण और व्याख्या से प्रारंभ होता है। कई वर्षों तक बच्चों की चिंतन, तर्क तथा अन्य बौद्धिक क्षमताओं की व्याख्या उनके सामाजिक और भावात्मक विकास तथा उनके शाब्दिक और गतिक कौशलों के वर्णनों में पूरी तरह से मिश्रित होती थी। इससे भी अधिक पहले लोगों की यह धारणा थी कि बच्चों की मानसिक प्रक्रियाएं केवल वयस्क चिंतन पैटर्न का सरल लघु रूप ही हैं। ऐसे प्रेक्षकों के प्रेक्षण जिनमें डार्विन भी सम्मिलित हैं, बहुत ही ध्यान तथा प्रयत्न से किये गए थे परन्तु उनके ब्यौरों से केवल एक ही बालक के अध्ययन किए जाने तथा प्रेक्षक को अपने पूर्वाग्रह जैसी त्रुटियों का प्रायः पता चलता है।

जैसा कि पूर्वानुमान किया गया था कि एक समय पर एक बच्चे का अव्यवस्थित रूप से प्रेक्षण किये जाने के स्थान पर बच्चों के व्यवहार और क्षमताओं को मानकीकृत तथा वस्तुनिष्ठ विधियों द्वारा मापने के व्यवस्थित प्रयत्न किए गए। बीसवीं सदी के प्रथम चालीस वर्षों में मानसिक परीक्षण आन्दोलन की वृद्धि उस उत्साह को प्रमाणित करती है जिसका जनन वैयक्तिक बच्चे की तुलना और उनके जीवन के प्रारंभिक वर्षों में होने वाले परिवर्तनों को मात्रात्मक रूप से मापने में परिशुद्धता लाने की संभावना में हुआ था। यद्यपि मापन का प्रयोग प्रेक्षण के सहायक के रूप में किया गया, परन्तु इन प्रयत्नों का मुख्य उद्देश्य वर्णनात्मक ही बना रहा और प्राप्त होने वाले सामान्यीकरण केवल उन्हीं प्रवृत्तियों और सुधारों के वर्णन व्याख्या ही थे जो बढ़ती हुई आयु के साथ निरंतर होते रहते हैं।

अभी हाल में ही 1950 के आसपास से आयु में बढ़ने के साथ-साथ विकास का पैटर्न किस प्रकार बदलता रहता है इस पर प्रयोगशाला अध्ययन करने का आंदोलन निरंतर बढ़ता जा रहा है। तात्कालिक कार्य आयु के प्रभावों से इतना अधिक

84-M/P(N)610MofE&C—5

संबंधित नहीं है जितना कि बच्चों के अनुभवों और निष्पत्ति के बीच विशेष कार्यात्मक संबंध के विकास से जिसका प्रदर्शन केवल मानवीय वयस्कों में ही होता है और अवमानवीय जीवों में इसका अभाव होता है। वर्तमान समय में प्रयोगशाला नियंत्रणों तथा प्रयोग संबंधी कौशलों को संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन पर लागू किये जाने पर जोर दिया जा रहा है। ऐसा उद्दीपन अवस्थाओं जिनके अंतर्गत व्यवहार का प्रेक्षण किया जाता है पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से तथा प्रज्ञा का विकास क्यों, कैसे और कब होता है इसकी व्याख्या करने के लिए किया जाता है।

इस प्रकार का उपागम आयु के साथ परिवर्तित होने वाली बच्चे की सूझबूझ (समझदारी) से संबंधित अध्ययन में रूकावट उत्पन्न नहीं करता बल्कि इस प्रकार का उपागम बौद्धिक प्रक्रियाओं और उत्पादों के विकासात्मक वर्णनों के संकेतों पर निर्भर करता है जो यह जानने में सहायता करते हैं कि एक विशिष्ट बौद्धिक निष्पत्ति अथवा समझदारी के विशिष्ट स्तर तक पहुंचने की संभावना कब तक हो सकती है। फिर भी आयु के बढ़ने के कारण होने वाले संज्ञानात्मक विकास के उत्पादों का बाहुल्य कारण-कार्य विश्लेषण करने की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है।

यद्यपि प्रस्तुत लेख मुख्यतः आयु के साथ होने वाले परिवर्तनों से संबंधित नहीं है फिर भी इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि बौद्धिक कार्यात्मकता में आयु के साथ होने वाले परिवर्तन दो प्रकार के अनुसंधान प्रेरित करते हैं। पहले, व्यक्ति की भविष्य में होने वाली बौद्धिक उपलब्धियों का पूर्वानुमान करने के लिए मानक परीक्षणों का निरंतर विकास तथा उनकी परिशुद्धता से संबंधित अनुसंधान तथा बच्चों को चुनने, उन्हें प्रशिक्षित करने तथा उनका उस समय मार्गदर्शन करने जबकि परीक्षणों के परिणाम भविष्य में उनकी निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

दूसरे अनुसंधान जीन पियाजे और उसके सहयोगियों द्वारा संज्ञानात्मक विकास पर किया जाने वाला अनुसंधान है। यह विशाल कार्य बच्चे में संज्ञानात्मक क्षमताओं को आनुवंशिक रूप से प्रकट करने तथा उनके विकास को मुखर करने से संबंधित है। इस अनुसंधान में हैज वरनर के कार्य के समान संघटन का गुण तथा जटिलता है जो परीक्षण विकासकर्ताओं की आनुभविक तथा एकांश विश्लेषण जैसी परम्पराओं से भिन्न है।

दोनों ही प्रकार के अनुसंधान संरचनात्मकता पर बल देते हैं अर्थात् वे मुख्य रूप से बुद्धि की क्षमताओं अथवा उसके अभिन्न भागों को पहचानने तथा इन भागों की व्यवस्था तथा क्रमबद्धता से मुख्यतः संबंधित हैं। परीक्षण का विकास करने वाली परिष्कृत सांख्यिकी के द्वारा मात्रात्मक रूप से क्षमता का वस्तुपरक माप मापन के

सुगठित सिद्धांत से संबंधित है। दूसरी ओर आनुवंशिकता के जन्मदाताओं ने बच्चे में संसार को समझने की योग्यता का जो चरण प्रति चरण विकास होता है उसका वर्णन करने में पियाजे का अनुसरण किया है। यह विकास बच्चे में संसार की संकल्पनाओं और संबंधों के औपचारिक, सूक्ष्म तथा तर्कसंगत बोध में होने वाली प्रगति को सूचित करता है। पियाजे के कृतत्व से प्रभावित हाल में कुछ अन्वेषणकर्ताओं ने संज्ञानात्मक परिवर्तन के लिए आवश्यक अवस्थाओं को पृथक करने का कार्य तथा प्रक्रियाओं और उत्पादों का स्पष्टीकरण करना प्रारंभ कर दिया है।

इसके विपरीत संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या में कार्यात्मकता अर्थात् उसकी गतिकी, प्रक्रियाओं तथा अंतर्सहसंबंधों पर तथा संज्ञानात्मक परिवर्तन के गतिक रचनातंत्र के अन्वेषण पर जोर दिया जाता है। ये अन्वेषण अधिकांशतः अमरीकी व्यवहारवादी तथा व्यवहार विश्लेषणकर्ताओं और रूसी शिक्षाशास्त्रियों द्वारा किये गए। इस प्रकार के अनुसंधान ज्ञान की संरचना की अपेक्षा सीखने और चिंतन की प्रक्रियाओं से अधिक संबंधित ह। प्रस्तुत लेख मुख्यतः कार्यात्मकता के इन अनुयायियों के योगदान से संबंधित है। सर्वप्रथम बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक होने वाले महत्वपूर्ण आयु परिवर्तनों का संक्षिप्त वर्णन आवश्यक है। तत्पश्चात् अभिज्ञान पर, जिसे सीखने तथा अनुकूलन के सरल रूपों की विस्तृत व्याख्या तथा एक चुना हुआ सामान्यीकरण समझा जाता है, पर विचार किया गया है। मध्यस्थता, सीखने के सेट तथा प्रत्याशा आदि संप्रत्ययों पर विभेदात्मक सीखने तथा विभेदात्मक विपर्यास, संप्रत्यय निर्माण तथा प्रत्यक्षपरक स्थिरताओं के संदर्भ में व्याख्या की गई है। उत्सुकता तथा अन्वेषी अभिप्रेरणा पर उन्मुख अनुक्रियाओं तथा प्रेषित व्यवहार के संबंध में विचार किया गया है। अर्जित श्रेष्ठता (विशिष्टता), तुल्यता तथा संकेतों की उपयोगिता पर अनुसंधान मध्यस्थत अनुक्रियाओं के सामान्य वर्ग की उपयोगिता तथा इस संबंध में भाषा की मुख्य भूमिका पर बल देने की महत्ता को प्रामणित करने के लिए प्रस्तुत किये गए हैं। अंत में संज्ञानात्मक शली में व्यक्तिगत भेद पर ध्यान दिया गया है जिसमें क्षेत्र निर्भरता, अनन्यता, विचारशीलता तथा सृजनात्मकता पर विचार-विमर्श सम्मिलित है।

आयु के साथ होने वाले परिवर्तनों पर विचार विमर्श

शैशवावस्था : शैशवावस्था में किसी व्यवहार को बौद्धिक अथवा संज्ञानात्मक कहने के लिए व्यवस्थता तथा सूक्ष्मता की मात्रा का अभाव होता है। यद्यपि इस बात के प्रमाण उपस्थित हैं कि पर्यावरण से व्यवस्थित संबंध स्थापित होने लगते हैं जिनमें निम्न स्तर की समझ-बूझ (ज्ञान) की आवश्यकता होती है। विशिष्ट तथा पहचानने योग्य प्रतिवर्तों से परे नवजात शिशु का व्यवहार विशाल, अस्पष्ट

अभिव्यक्त करने और बच्चे के द्वारा उन्हें शीघ्रता से पूरे किए जाने के कारण इस प्रकार का सीखना द्रुत गति से होता है परन्तु यह सीखना केवल यथार्थता के स्तर पर होता है। इसी प्रकार, बच्चे की आवश्यकताओं को मौखिक रूप से अभिव्यक्त करने की प्राथमिकता तथा शक्ति तथा उनकी पूर्ति की सामान्य शीघ्रता उनकी यथार्थता को तो निश्चित करती है परन्तु बच्चे की अपनी आवश्यकताओं को मौखिक रूप से व्यक्त करने की प्रखरता को कम करती है। विशेष रूप से जो कुछ उससे पूछा जाता है उसका उत्तर वह हां या नहीं में देता है अथवा उससे चुनी हुई सरल अनुक्रिया की ही अपेक्षा की जाती है।

निर्देशात्मक भाषा—निर्देशात्मक भाषा वस्तुओं और घटनाओं के नामों का संग्रह है जिससे सरल प्रतिनिधानात्मक प्रणाली की स्थापना हो सके। तीन वर्ष का बालक सामान्य वस्तुओं तथा कार्यों का नाम बता सकता है और सजी हुई वस्तुओं में से किसी वस्तु का नाम लेकर उसे उठा सकता है। इस क्षमता का विकास वाक् के गति सम्बन्धी पक्षों द्वारा व्यवहार के नियन्त्रण से प्रारम्भ होकर वाक् के शब्दार्थ सम्बन्धी पक्षों द्वारा व्यवहार के नियन्त्रण तक होता है। लुरिया (1961) के अनुसार तीसरे वर्ष में यह निपुणता बच्चे के अवधानिक तथा अभिविन्यासी व्यवहार पर शाब्दिक नियन्त्रण की स्थापना पर निर्भर करती है।

आशाब्दिक बोध—बच्चे में दूसरे और तीसरे वर्ष में अशाब्दिक बोध में प्रगति भाषा सम्बन्धी विकास से कम दिखाई देती है। बालक उन संकेतों तथा मुख की भाव-भंगिमाओं के सामाजिक महत्व की व्याख्या कर सकता है जो सहचारी संबंधों के कारण इनाम तथा चेतावनी के संकेत होते हैं। वह अपने व्यवहार के परिणामों के परीक्षण में बहुत व्यस्त रहता है और शाब्दिक (मौखिक) प्रतिपुष्टि के स्थान पर इन गौण संकेतों को पढ़ना पसंद करता है। इस प्रकार वह अपनी स्वायतता पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबन्धों को समझ सकता है और दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार की व्याख्या कर सकता है जिससे वह बड़ी चेतावनी अथवा सजा को उकसाने पर रोक लगा सके।

प्रयोगशाला में तीन वर्ष से कम का बालक विभेदन तथा संप्रत्यय निर्माण की सरल समस्याओं को तुरन्त हल नहीं कर सकता। उसका ध्यान एक वस्तु पर बहुत कम फोकस होता है तथा शीघ्र ही हट जाता है। उसकी प्रतिनिधानात्मक प्रणाली प्रत्यक्ष, आत्मकेंद्रित, काल परिप्रेक्ष्यहीन तथा सामान्यतः अनम्य होती है। उसका सीखना सरल सम्बन्धों से निर्धारित होता है तथा भाषा क्षमता होने पर भी वह अपनी जानकारी को व्यवस्थित करने अथवा अपने व्यवहार को निदेशित करने में भाषा का बहुत कम प्रयोग करता है।

किए गए उद्दीपन से उत्पन्न स्थितियों और जीव के बदलते हुए वृत्तों के फलस्वरूप कई प्रकार की अनुक्रिया कम हो सकती हैं और इनमें से केवल एक अथवा कुछ ही को सीखने की प्रक्रिया के वर्ग में रखा जा सकता है।

क्रियाप्रसूत अनुकूलन

बाल व्यवहार के जांचकर्त्ताओं ने क्रियाप्रसूत अनुकूलन पर काफी ध्यान दिया है। बच्चे की अनुक्रिया सोपानिकी में प्रारंभ से ही निम्न कोटि की अनुक्रिया का प्रणालीबद्ध पुनर्बलन बाद की प्रक्रियाओं की गति पर महत्वपूर्ण रूप से प्रभाव डालता है। क्रिया प्रसूत अनुकूलन में वांछित अनुक्रिया पर 'सकारात्मक' पुनर्बलन का समावेश होता है। इस प्रकार के सकारात्मक पुनर्बलक का उदाहरण है--पुरस्कार रूप में बच्चों को मिठाई देना अथवा अनुक्रिया के सही होने का संकेत देना। इसके विपरीत 'नकारात्मक' पुनर्बलन में सीखी जाने वाली अनुक्रिया के विद्यमान होने पर अप्रिय उद्दीपन की समाप्ति सम्मिलित होती है। अन्त में दोनों प्रकार के पुनर्बलन द्वारा उस अनुक्रिया की शक्ति बढ़ जाती है जिस पर पुनर्बलन किया गया है। एक तीसरी प्रकार की अनुक्रिया आनुषंगिक घटना होती है जिसमें किसी अवांछित अनुक्रिया के समय सकारात्मक पुनर्बलन को हटा दिया जाता है। उदाहरण के लिए किसी अवांछित व्यवहार (जैसे बच्चों में अंगूठा चूसना) को समाप्त या कम करने के लिए किसी चलचित्र का स्वतः निरुपण अत्यन्त प्रभावशाली है। क्रिया प्रसूत तकनीक सुविख्यात प्रभाव नियम से लाभ उठाता है, और देखा गया है कि विभिन्न प्रकार के व्यवहारों में जैसे अनुकरणात्मक अनुक्रियाओं, मुस्कराने, विनय भाव दर्शाने में तथा भाषा आदि में प्रायोगिक स्थितियों के अन्तर्गत यह तकनीक शक्तिशाली नियंत्रण करता है। यह पाया गया है कि विभिन्न प्रकार की पुनर्बलन सूचियां (उदाहरणार्थ अन्तर्विरामी बनाम सतत) बच्चों में विभिन्न प्रकार की अनुक्रियाएं उत्पन्न करती हैं, जब पुनर्बलन हटा लिया जाता है तो अनुक्रियाओं के विलोप की विभेदी संभाव्यताएं उत्पन्न हो जाती हैं।

विभेदात्मक सीखना

विभेदात्मक सीखने से संबंधित अध्ययन एक और प्रकार की अनुकूलन जांच है जिसका संबंध कुछ विशिष्ट प्रकार के व्यवहार के जनन या उसे बनाए रखने में पुनर्बलन के प्रभावों से है। इन अध्ययनों में ऐसे तकनीकों की बजाय, जो कि पात्र को किसी भी समय प्रतिक्रिया करने की अनुमति देते हैं, विविक्त प्रयास प्रक्रियाएं सम्मिलित होती हैं। विभेदात्मक सीखने में बच्चे को अनेक अवसरों की उपस्थिति में सही उद्दीपन चुनने के लिए पुरस्कृत किया जाता है। इन अध्ययनों में बच्चे के विभेदात्मक सीखने की गति पर प्रभाव डालने वाले अनेक परिमापों को दिखाया गया है जिसमें

करण, जिसमें एक उद्दीपन के प्रति किसी विशेष अनुक्रिया सीख जाने पर जीव अन्य समान उद्दीपनों के प्रति अनुक्रिया करने के लिए तैयार रहता है और फलस्वरूप उस की अनुक्रिया उद्दीपनों में समानता के अनुपात में होती है।

बच्चों में दो सामान्य प्रकार के प्रशिक्षण के अंतरण यथा–गैर-विशिष्ट और विशिष्ट का विस्तृत अध्ययन किया गया है। ये दोनों प्रकार के अंतरण एक स्थिति से दूसरी स्थिति में सीखने के सामान्यीकरण के संगत हैं, चाहे वह एक प्रयोगशाला स्थिति से दूसरी प्रयोगशाला स्थिति में हो, और चाहे प्रयोगशाला से "वास्तविक जीवन" हो या एक वास्तविक जीवन स्थिति से दूसरी वास्तविक जीवन स्थिति हो। गैर-विशिष्ट अन्तरण जिसे विभिन्न रूप में वर्णित किया जाता है–जैसे "वार्म अप" अथवा "लर्निंग टू लर्न" स्थिति के अनुसार विषय-पात्र को किसी विशेष तरीके से निष्पादन करने के लिए तैयार करता है। इस प्रकार के अंतरण का संबंध अनुक्रिया-विषयों को समझने में अभ्यास कौशल, उद्दीपन को अच्छी तरह से देखने अथवा विश्रांति की स्थिति या निर्देशों की प्रतीक्षा करने से है। यह बहुत संभव है कि बाद के कार्यों की अपेक्षानुसार इस प्रकार के 'वार्मअप' बाद के निष्पादन को क्षीण कर दे या सरल कर दें। विशिष्ट अंतरण भी या तो निष्पादन को सरल करता है या क्षीण करता है और यह बाद के कार्य-निष्पादन पर पहले के कार्यों के प्रभावों को भी उल्लेखित करता है, विशेषकर इसका संबंध इस बात से भी है कि पहले सीखा गया कार्य बाद के सीखे गए कार्य के समान है अथवा नहीं।

बच्चों के मौखिक और गतिविभेदात्मक सीखने में विशिष्ट अंतरण के कई अध्ययन किए गए हैं। बच्चों के साथ युग्मित सहचर कार्य का अधिकांश भाग नकारात्मक अन्तरण पर केन्द्रित रहा है। यह अंतरण किसी ऐसे उद्दीपन, जिसके प्रति अनुक्रियाएं पहले से सीखी जा चुकी थीं, के प्रति नई अनुक्रियाओं के लिए पुनःप्रशिक्षित करके उत्पन्न किया जाता है। फिर भी इनमें से बहुत से युग्मित सहचर अध्ययन, ऐसे शाब्दिक माध्यम पर किए गए हैं जो विशिष्ट उद्दीपन और अनुक्रियाओं पर आधारित सकारात्मक अथवा नकारात्मक अंतरण उत्पन्न कर सकते हैं। पूर्व सक्रिय सौकर्य (सुकरता) या अवरोध पर किए गए कुछ अध्ययनों में उपार्जित विशिष्टता अथवा उपार्जित समानता पर भी विचार किया गया है। उपार्जित समानता अध्ययन से यह प्रदर्शित हुआ कि बच्चे उन उद्दीपनों के प्रति विभेदात्मक अनुक्रियाएं सीखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं जिनसे मिलते-जुलते नाम उन्होंने पहले ही सीख रखे होते हैं, जब कि उपार्जित विशिष्टता अध्ययनों से यह प्रदर्शित हुआ है कि यदि बच्चों ने विभेदात्मक उद्दीपन के लिए पहले से ही विभिन्न नाम सीख रखे हैं तो उसी उद्दीपन के प्रति बाद की विभेदात्मक अनुक्रियाएं सीखना सरल हो जाता है।

शाब्दिक मध्यस्थता और स्थान विनिमय

बच्चों में विशेष प्रकार के प्रशिक्षण अंतरण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है जिसे स्थान विनिमय व्यवहार कहते हैं। बच्चों को पहले एक साथ प्रस्तुत किए गए दो या उससे अधिक उद्दीपनों में से एक को चुनने का प्रशिक्षण दिया जाता है, जैसे दो वृत्तों में से बड़े वाले को चुनना। स्थान विनिमय तब होता है जब बच्चे के सामने ऐसा अंतरण कार्य प्रस्तुत किया जाता है जिसमें एक बड़े उद्दीपन के साथ उससे छोटे उद्दीपन को प्रस्तुत किया जाए और बच्चा उस विशिष्ट उद्दीपन को चुनने की बजाय, जिसकी अनुक्रिया पहले से ही पुनर्बलित की गई है, सबसे बड़े उद्दीपन को चुनता है। निम्न कोटि के प्राणी प्रायः तब स्थान विनिमय प्रदर्शित करते हैं जब कि अंतरण युगल प्रशिक्षण युगल के बहुत समान होता है। परन्तु इस प्रकार का स्थान विनिमय तब समाप्त हो जाता है जब कि परीक्षण युगल में बहुत असमानता होती है। इस पर किए गए कई अध्ययनों से यह पता चलता है कि यह नियम छोटे बच्चों के विषय में सही होता है, परन्तु पूर्ण रूप से स्थान विनिमय थोड़े बड़े या बोलने वाले बच्चों में होता है। संभवतः किसी एक संकल्पना को ग्रहण करना—जैसे कि "उससे बड़ा" तभी हो सकता है जब कि विनिमय का विस्तार एकदम असमान उद्दीपन पर अधिक हो। स्थान विनिमय विकासात्मक रुचि को आकृष्ट करता है क्योंकि स्थान विनिमय कालानुक्रमिक और मानसिक आयु के बढ़ने पर स्पष्ट रूप से बदल जाता है तथा इसलिए भी बदल जाता है कि भाषा कौशल इस घटना के साथ महत्वपूर्ण संबंध रखता है।

विभेदात्मक सीखने में शाब्दिकता के महत्व के लिए समर्थक प्रमाण "विपर्यास विवर्तन और अविपर्यास-विवर्तन" प्रक्रियाओं की तुलना करने वाले अध्ययनों में मिलते हैं। इसके विशिष्ट प्रयोग में दो विभिन्न विमाओं वाले उद्दीपनों को प्रस्तुत करना है, जिनमें से एक विमा सही अनुक्रिया का संकेत देती है। उदाहरण के लिए उद्दीपन के आकार और चमक दोनों में भिन्नता होती है, बच्चे को उद्दीपन के आकार को नजरअन्दाज करते हुए चमकदार उद्दीपन की बजाए बिना चमकवाले उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करनी होती है। "विपर्यास विवर्तन" में चमक के प्रति की गई अनुक्रिया को सही बनाने के लिए परिवर्तन निहित है जबकि 'अविपर्यास विवर्तन' में आकार को एक संगत विमा माना जाता है। अविपर्यास विवर्तन छोटे बच्चों और पशुओं के लिए अधिक सरल होता है। विपर्यास विवर्तन वयस्कों और अधिक बोलने वाले (या बड़े) बच्चों के लिए अधिक सरल होता है।

हाल में युग्मित सहचर सीखने तथा शाब्दिक मध्यस्थता विषय के बहुत से विद्यार्थियों ने बच्चों की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया है। अभी उन

सामाजिक उद्दीपन से वंचन

संस्थानीकरण के और सामान्य रूप में सामाजिक उद्दीपन के वंचन के प्रभाव कुछ सीमा तक विवादास्पद हैं परन्तु विद्यमान प्रमाणों से यह सुझाव मिलता है कि इस प्रकार के अनुभव प्रायः गंभीर संवेदनात्मक और बौद्धिक अभाव उत्पन्न करते हैं। यह प्रभाव इतने विवादास्पद नहीं हैं जितने कि इन प्रभावों को उत्पन्न करने वाली वास्तविक घटनाएं–उदाहरण के लिए–चाहे यह संगतचर (घटना) माता से पृथक करना है या केवल मानवीय या पर्यावरणी सम्पर्कों में कमी करना है। यह अनुमान लगाना तर्कसंगत है कि संस्थागत और वंचन संबंधी प्रभावों में मुख्यतः सीखने की पहली दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों के प्रभाव सम्मिलित होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बिजो, सिजने डब्ल्यू तथा बेअर, डोनल्ड एम., 1960–बच्चे के व्यवहार की प्रयोगशाला–प्रयोगात्मक अध्ययन पृष्ठ 140–197 पाल एच. मुसेन (संपादक) हैंड बुक ऑफ रिसर्च मैथड इन चाइल्ड डेवेलपमेंट, न्यूयॉर्क, विली।

2. लिपसिट, लेविस. पी. 1963–जीवन के प्रथम वर्ष में सीखना खंड 1 पृष्ठ 147–195 लेविस, पी. लिपसिट. तथा चार्ल्स सी. स्पाइकर (संपादक) एडवांसिस इन चाइल्ड डेवेलपमेंट एंड बिहेविअर, न्यूयॉर्क अकादमी प्रेस।

3. मैकडल्स, बॉयड आर. 1961–चिल्ड्रन एंड एडोलेसेंट बिहेविअर एंड डिवेलपमैंट, न्यूयॉर्क हॉल्ट।

4. मन, नौरमन एल. (1946) 1954–बच्चों द्वारा सीखना पृष्ठ 374–458, लिओनार्ड, कारमाइकल (संपादक) मैनुअल ऑफ चाइल्ड साइकोलॉजी दूसरा संस्करण, न्यूयॉर्क, विली।

5. रेहनगोल्ड, हैरिट एल. तथा स्टेनलै, वाल्टर सी. 1963–विमेदात्मक मनोविज्ञान, ऐनुअल रिव्यू ऑफ साइकोलॉजी 14: 1–28

6. स्पाइकर, चार्ल्स सी. 1960–बच्चों द्वारा सीखने में अनुसंधान की विधियां–पृष्ठ 375–420, पोल एच. मुसेन (संपादक) हैंडबुक ऑफ रिसर्च मैथड्स इन चाइल्ड डेवेलपमैंट न्यूयॉर्क : विली

7. ह्वाहिट, शेलडन एच. 1963–सीखना पृष्ठ 196–235, शिक्षा के अध्ययन के लिए राष्ट्रीय सोसाइटी–बाल मनोविज्ञान समिति, चाइल्ड साइकोलॉजी वार्षिक पुस्तक, खंड 62 भाग-I शिकागो प्रेस यूनिवर्सिटी

बौद्धिक विकास

बौद्धिक विकास से व्यक्ति की चिंतन, तर्कना, सापेक्ष निर्णय तथा संकल्पनात्मकता की क्षमताओं में वृद्धि और अनुभव के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों का बोध होता है। ऐसे परिवर्तन बच्चों में विशेष रूप से होते हैं।

बच्चों के बौद्धिक विकास का अध्ययन विभिन्न दृष्टिकोण से किया जाता है। जैसा कि वैज्ञानिक ज्ञान की अधिकांश शाखाओं के इतिहास से ज्ञात होता है कि इस प्रकार का अध्ययन प्रेक्षण और व्याख्या से प्रारंभ होता है। कई वर्षों तक बच्चों की चिंतन, तर्क तथा अन्य बौद्धिक क्षमताओं की व्याख्या उनके सामाजिक और भावात्मक विकास तथा उनके शाब्दिक और गतिक कौशलों के वर्णनों में पूरी तरह से मिश्रित होती थी। इससे भी अधिक पहले लोगों की यह धारणा थी कि बच्चों की मानसिक प्रक्रियाएं केवल वयस्क चिंतन पैटर्न का सरल लघु रूप ही हैं। ऐसे प्रेक्षकों के प्रेक्षण जिनमें डार्विन भी सम्मिलित हैं, बहुत ही ध्यान तथा प्रयत्न से किये गए थे परन्तु उनके ब्यौरों से केवल एक ही बालक के अध्ययन किए जाने तथा प्रेक्षक को अपने पूर्वाग्रह जैसी त्रुटियों का प्रायः पता चलता है।

जैसा कि पूर्वानुमान किया गया था कि एक समय पर एक बच्चे का अव्यवस्थित रूप से प्रेक्षण किये जाने के स्थान पर बच्चों के व्यवहार और क्षमताओं को मानकीकृत तथा वस्तुनिष्ठ विधियों द्वारा मापने के व्यवस्थित प्रयत्न किए गए। बीसवीं सदी के प्रथम चालीस वर्षों में मानसिक परीक्षण आन्दोलन की वृद्धि उस उत्साह को प्रमाणित करती है जिसका जनन वैयक्तिक बच्चे की तुलना और उनके जीवन के प्रारंभिक वर्षों में होने वाले परिवर्तनों को मात्रात्मक रूप से मापने में परिशुद्धता लाने की संभावना में हुआ था। यद्यपि मापन का प्रयोग प्रेक्षण के सहायक के रूप में किया गया, परन्तु इन प्रयत्नों का मुख्य उद्देश्य वर्णनात्मक ही बना रहा और प्राप्त होने वाले सामान्यीकरण केवल उन्हीं प्रवृत्तियों और सुधारों के वर्णन व्याख्या ही थे जो बढ़ती हुई आयु के साथ निरंतर होते रहते हैं।

अभी हाल में ही 1950 के आसपास से आयु में बढ़ने के साथ-साथ विकास का पैटर्न किस प्रकार बदलता रहता है इस पर प्रयोगशाला अध्ययन करने का आंदोलन निरंतर बढ़ता जा रहा है। तात्कालिक कार्य आयु के प्रभावों से इतना अधिक

84-M/P(N)610MofE&C—5

संबंधित नहीं है जितना कि बच्चों के अनुभवों और निष्पत्ति के बीच विशेष कार्यात्मक संबंध के विकास से जिसका प्रदर्शन केवल मानवीय वयस्कों में ही होता है और अवमानवीय जीवों में इसका अभाव होता है। वर्तमान समय में प्रयोगशाला नियंत्रणों तथा प्रयोग संबंधी कौशलों को संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन पर लागू किये जाने पर जोर दिया जा रहा है। ऐसा उद्दीपन अवस्थाओं जिनके अंतर्गत व्यवहार का प्रेक्षण किया जाता है पर नियंत्रण रखने के उद्देश्य से तथा प्रज्ञा का विकास क्यों, कैसे और कब होता है इसकी व्याख्या करने के लिए किया जाता है।

इस प्रकार का उपागम आयु के साथ परिवर्तित होने वाली बच्चे की सूझबूझ (समझदारी) से संबंधित अध्ययन में रूकावट उत्पन्न नहीं करता बल्कि इस प्रकार का उपागम बौद्धिक प्रक्रियाओं और उत्पादों के विकासात्मक वर्णनों के संकेतों पर निर्भर करता है जो यह जानने में सहायता करते हैं कि एक विशिष्ट बौद्धिक निष्पत्ति अथवा समझदारी के विशिष्ट स्तर तक पहुंचने की संभावना कब तक हो सकती है। फिर भी आयु के बढ़ने के कारण होने वाले संज्ञानात्मक विकास के उत्पादों का बाहुल्य कारण-कार्य विश्लेषण करने की आवश्यकता को प्रदर्शित करता है।

यद्यपि प्रस्तुत लेख मुख्यतः आयु के साथ होने वाले परिवर्तनों से संबंधित नहीं है फिर भी इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि बौद्धिक कार्यात्मकता में आयु के साथ होने वाले परिवर्तन दो प्रकार के अनुसंधान प्रेरित करते हैं। पहले, व्यक्ति की भविष्य में होने वाली बौद्धिक उपलब्धियों का पूर्वानुमान करने के लिए मानक परीक्षणों का निरंतर विकास तथा उनकी परिशुद्धता से संबंधित अनुसंधान तथा बच्चों को चुनने, उन्हें प्रशिक्षित करने तथा उनका उस समय मार्गदर्शन करने जबकि परीक्षणों के परिणाम भविष्य में उनकी निर्णय लेने में सहायता करते हैं।

दूसरे अनुसंधान जीन पियाजे और उसके सहयोगियों द्वारा संज्ञानात्मक विकास पर किया जाने वाला अनुसंधान है। यह विशाल कार्य बच्चे में संज्ञानात्मक क्षमताओं को आनुवंशिक रूप से प्रकट करने तथा उनके विकास को मुखर करने से संबंधित है। इस अनुसंधान में हैज वरनर के कार्य के समान संघटन का गुण तथा जटिलता है जो परीक्षण विकासकर्ताओं की आनुभविक तथा एकांश विश्लेषण जैसी परम्पराओं से भिन्न है।

दोनों ही प्रकार के अनुसंधान संरचनात्मकता पर बल देते हैं अर्थात् वे मुख्य रूप से बुद्धि की क्षमताओं अथवा उसके अभिन्न भागों को पहचानने तथा इन भागों की व्यवस्था तथा क्रमबद्धता से मुख्यतः संबंधित हैं। परीक्षण का विकास करने वाली परिष्कृत सांख्यिकी के द्वारा मात्रात्मक रूप से क्षमता का वस्तुपरक माप मापन के

सुगठित सिद्धांत से संबंधित है। दूसरी ओर आनुवंशिकता के जन्मदाताओं ने बच्चे में संसार को समझने की योग्यता का जो चरण प्रति चरण विकास होता है उसका वर्णन करने में पियाजे का अनुसरण किया है। यह विकास बच्चे में संसार की संकल्पनाओं और संबंधों के औपचारिक, सूक्ष्म तथा तर्कसंगत बोध में होने वाली प्रगति को सूचित करता है। पियाजे के कृतत्व से प्रभावित हाल में कुछ अन्वेषणकर्ताओं ने संज्ञानात्मक परिवर्तन के लिए आवश्यक अवस्थाओं को पृथक करने का कार्य तथा प्रक्रियाओं और उत्पादों का स्पष्टीकरण करना प्रारंभ कर दिया है।

इसके विपरीत संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या में कार्यात्मकता अर्थात् उसकी गतिकी, प्रक्रियाओं तथा अंतर्सहसंबंधों पर तथा संज्ञानात्मक परिवर्तन के गतिक रचनातंत्र के अन्वेषण पर जोर दिया जाता है। ये अन्वेषण अधिकांशतः अमरीकी व्यवहारवादी तथा व्यवहार विश्लेषणकर्ताओं और रूसी शिक्षाशास्त्रियों द्वारा किये गए। इस प्रकार के अनुसंधान ज्ञान की संरचना की अपेक्षा सीखने और चिंतन की प्रक्रियाओं से अधिक संबंधित ह। प्रस्तुत लेख मुख्यतः कार्यात्मकता के इन अनुयायियों के योगदान से संबंधित है। सर्वप्रथम बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक होने वाले महत्वपूर्ण आयु परिवर्तनों का संक्षिप्त वर्णन आवश्यक है। तत्पश्चात् अभिज्ञान पर, जिसे सीखने तथा अनुकूलन के सरल रूपों की विस्तृत व्याख्या तथा एक चुना हुआ सामान्यीकरण समझा जाता है, पर विचार किया गया है। मध्यस्थता, सीखने के सेट तथा प्रत्याशा आदि संप्रत्ययों पर विभेदात्मक सीखने तथा विभेदात्मक विपर्यास, संप्रत्यय निर्माण तथा प्रत्यक्षपरक स्थिरताओं के संदर्भ में व्याख्या की गई है। उत्सुकता तथा अन्वेषी अभिप्रेरणा पर उन्मुख अनुक्रियाओं तथा प्रेषित व्यवहार के संबंध में विचार किया गया है। अर्जित श्रेष्ठता (विशिष्टता), तुल्यता तथा संकेतों की उपयोगिता पर अनुसंधान मध्यस्थत अनुक्रियाओं के सामान्य वर्ग की उपयोगिता तथा इस संबंध में भाषा की मुख्य भूमिका पर बल देने की महत्ता को प्रामणित करने के लिए प्रस्तुत किये गए हैं। अंत में संज्ञानात्मक शली में व्यक्तिगत भेद पर ध्यान दिया गया है जिसमें क्षेत्र निर्भरता, अनन्यता, विचारशीलता तथा सृजनात्मकता पर विचार-विमर्श सम्मिलित है।

आयु के साथ होने वाले परिवर्तनों पर विचार विमर्श

शैशवावस्था : शैशवावस्था में किसी व्यवहार को बौद्धिक अथवा संज्ञानात्मक कहने के लिए व्यवस्थता तथा सूक्ष्मता की मात्रा का अभाव होता है। यद्यपि इस बात के प्रमाण उपस्थित हैं कि पर्यावरण से व्यवस्थित संबंध स्थापित होने लगते हैं जिनमें निम्न स्तर की समझ-बूझ (ज्ञान) की आवश्यकता होती है। विशिष्ट तथा पहचानने योग्य प्रतिवर्तों से परे नवजात शिशु का व्यवहार विशाल, अस्पष्ट

तथा सब अथवा कुछ नहीं होता है। नवजात शिशु के व्यवहार की हाल में की गई जांच से यह पता चलता है कि बच्चे में उत्तेजना की सात विश्वसनीय विभेदी अवस्थायें छिपी हुई हैं जो गहरी अनुक्रिया रहित नींद से लेकर जोर से चीखने-चिल्लाने (रोने) अथवा चूसने तक विस्तृत हैं। वह बाह्य उद्दीपन के प्रति उतना ही अनुक्रियाहीन होता है जितना कि सुप्त अवस्था में। बाह्य उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया जागृत अवस्था के बीच ही सबसे अधिक होती है।

जन्म के दस दिन बाद की अवधि में शिशु में तीन प्रकार के व्यवहार दिखाई देते हैं जो संज्ञात्मक विकास के प्रारम्भ को सूचित करते हैं। सरल उत्तेजना समतुल्यता का विकास, प्रत्याशा तथा निरंतर बने रहने वाला अन्वेषी व्यवहार।

उत्तेजना समतुल्यता—उत्तेजना समतुल्यता का अर्थ है एक ही वस्तु, व्यक्ति अथवा घटना की दूरी, प्रकाश तथा संदर्भ में परिवर्तनों के कारण प्रकट होने वाले विविध रूपों का संप्रत्यक्षी अभिज्ञान। यद्यपि शिशुओं में संप्रत्यक्षी स्थिरताओं की कोई औपचारिक मनोदैहिक जांच नहीं की गई है। परिचित व्यक्तियों तथा वस्तुओं पर ध्यान देने और उनकी पहचान हो जाने से सम्बन्धित अध्ययनों से यह प्रकट होता है कि प्रारम्भिक शैशवावस्था में समतुल्यता सीखना अधिक मात्रा में होता है। शिशु भी चुने हुए विषयों पर ध्यान देते हैं जिससे यह पता चलता है कि उनमें भी भिन्न-भिन्न चेहरों तथा प्रतिरूपी उत्तेजना के प्रति किसी न किसी प्रकार की विभेदी संवेदनात्मकता होती है।

प्रत्याशायें—यदि शिशु के पर्यावरण में कुछ घटनाएं संक्षिप्त तथा एक निश्चित क्रम में बारबार तथा नियमितता से होती हैं तो वह पूर्व प्रत्याशी अनुक्रियायें प्रदर्शित करने के सक्षम होता है। इस प्रकार की अनुक्रियायें अनेक मनोवैज्ञानिकों के लिए प्रत्याशा के पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए साधारणतः यह देखा गया है कि शांत रहना और चूसना अनुक्रियायें प्रथमतः मुख अथवा गाल की स्पर्श उत्तेजना तथा सामान्य देखभाल के कारण होती हैं। तथापि शीघ्र ही वे माता के बोलने तथा अन्य दृश्यों और ध्वनियों, जो माता के नजदीक आने के साथ होती है, की अनुक्रिया रूप में होती हैं। उदाहरण के लिये आंख का झपकना जो पहले केवल स्पर्श उत्तेजना के कारण होता है बाद में वह अनुक्रिया उस समय होने लगती है जब कभी कोई आकृति आकार में शीघ्रता से इतनी बड़ी दिखाई देने लगती है कि वह मुख के पास द्रुतगति से आती दिखाई पड़ती है। ऐसी सरल प्रारम्भिक अनुक्रियाओं के लिए किसी संज्ञानात्मक व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती और इसको क्लासीकीय अथवा क्रियाप्रसूत अनुकूलन द्वारा संतोषजनक रूप से समझाया जा सकता है। गति से सम्बन्धित पूर्व प्रत्याशा वह आधार प्रस्तुत करती है जिस पर निर्भर रह कर शिशु

अपनी क्रियाओं के परिणामों का पहले से ही अनुमान लगाने तथा आने वाली घटनाओं के संकेतों की व्याख्या करने की अधिक सूक्ष्म क्षमतायें विकसित कर सकता है।

अन्वेषणकारी व्यवहार—बहुत-सी जातियों के शिशुओं के अधिकांश सतत प्रेक्षणों से उनके अन्वेषी व्यवहार का पता चलता है जिससे संज्ञानात्मक तथा अभिप्रेरणात्मक चर के रूप में उत्सुकता का आभास होता है। निरन्तर हाथ-पैर चलाते रहना, मुंह द्वारा चूसते रहना, सूंघते रहना तथा दृष्टि से जांचते रहना आदि क्रियायें पहले वर्ष अथवा प्रथम नौ महीनों में उत्तेजना से परिचित होने की मात्रा के अनुसार होती हैं और दूसरे वर्ष के मध्य तक उत्तेजना की सापेक्ष नवीनता की मात्रा के अनुसार होती हैं। ऐसा बताया गया है कि परिचित उत्तेजना से नई उत्तेजना की ओर जाने का यह स्पष्ट विवर्तन उत्तेजना को सापेक्षतः नया बनाने के लिए अनुभवों की विविधिता की मात्रा में वृद्धि को प्रकट करता है। किसी भी अवस्था में शिशु का व्यवहार सतत तथा दोहराने वाला होता है तथा केवल शिशु अवस्था के अन्त में बच्चे के अन्वेषी व्यवहार का उस वस्तु, जिसकी वह खोज करता है, की प्रकृति से मेल बिठाने के प्रमाण उपलब्ध हैं। अठारह माह से पहले अन्वेषणकारी गतियों का भंडार बहुत छोटा तथा अविभेदी होता है।

घुटन चलने वाला—दूसरे और तीसरे वर्ष में सम्प्रेषणात्मक तथा निदेशात्मक भाषा अर्जित कर लेना ही बौद्धिक विकास है। यद्यपि पांच अथवा छह वर्ष से पहले बच्चे में भाषा का विकास चिंतन, तर्क तथा समस्या समाधान के माध्यम के रूप में नहीं होता। फिर भी डेढ़ दो वर्ष का बालक शाब्दिक उत्तेजना के प्रति अनुक्रिया करने लगता है तथा वह वे शाब्दिक अनुक्रियायें करता है जो उसके तात्कालिक पर्यावरण के लिये उचित होती हैं।

सम्प्रेष्णीय भाषा—सम्प्रेषणीय भाषा की प्राप्ति का अर्थ है कि बच्चा सरल निदेशों तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा अभिव्यक्त की गई अपेक्षाओं के प्रति अनुक्रिया करना सीख लेता है तथा अपनी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं को पर्याप्त यथार्थता तथा स्पष्टता से अभिव्यक्त करने की योग्यता विकसित करता है जिससे कि दूसरे व्यक्ति भी उनके प्रति उचित अनुक्रिया कर सकें। इसी प्रकार का सीखना दैनिक कार्यों जैसे दूध पीने, कपड़े पहनने, सोने तथा मूत्र त्याग आदि के प्रशिक्षण के साथ ही होता है। न केवल मौखिक आवश्यकताएं ही बालक से इन क्रियाकलापों के लिए उपयुक्त अवसर और परिस्थितियों में अन्तर करने की अपेक्षा रखती है, बल्कि उससे यह भी आशा की जाती है कि अपनी आंतरिक आवश्यकताओं जैसे भूख, थकान, पीड़ा तथा मूत्रत्याग आदि भी उचित रूप से अभिव्यक्त कर सके। मौखिक आवश्यकताओं जिसकी अपेक्षा उससे की जाती है, की सरलता तथा स्थिरता से उन्हें

अभिव्यक्त करने और बच्चे के द्वारा उन्हें शीघ्रता से पूरे किए जाने के कारण इस प्रकार का सीखना द्रुत गति से होता है परन्तु यह सीखना केवल यथार्थता के स्तर पर होता है। इसी प्रकार, बच्चे की आवश्यकताओं को मौखिक रूप से अभिव्यक्त करने की प्राथमिकता तथा शक्ति तथा उनकी पूर्ति की सामान्य शीघ्रता उनकी यथार्थता को तो निश्चित करती है परन्तु बच्चे की अपनी आवश्यकताओं को मौखिक रूप से व्यक्त करने की प्रखरता को कम करती है। विशेष रूप से जो कुछ उससे पूछा जाता है उसका उत्तर वह हां या नहीं में देता है अथवा उससे चुनी हुई सरल अनुक्रिया की ही अपेक्षा की जाती है।

निर्देशात्मक भाषा—निर्देशात्मक भाषा वस्तुओं और घटनाओं के नामों का संग्रह है जिससे सरल प्रतिनिधानात्मक प्रणाली की स्थापना हो सके। तीन वर्ष का बालक सामान्य वस्तुओं तथा कार्यों का नाम बता सकता है और सजी हुई वस्तुओं में से किसी वस्तु का नाम लेकर उसे उठा सकता है। इस क्षमता का विकास वाक के गति सम्बन्धी पक्षों द्वारा व्यवहार के नियन्त्रण से प्रारम्भ होकर वाक् के शब्दार्थ सम्बन्धी पक्षों द्वारा व्यवहार के नियन्त्रण तक होता है। लुरिया (1961) के अनुसार तीसरे वर्ष में यह निपुणता बच्चे के अवधानिक तथा अभिविन्यासी व्यवहार पर शाब्दिक नियन्त्रण की स्थापना पर निर्भर करती है।

आशाब्दिक बोध—बच्चे में दूसरे और तीसरे वर्ष में अशाब्दिक बोध में प्रगति भाषा सम्बन्धी विकास से कम दिखाई देती है। बालक उन संकेतों तथा मुख की भाव-भंगिमाओं के सामाजिक महत्व की व्याख्या कर सकता है जो सहचारी संबंधों के कारण इनाम तथा चेतावनी के संकेत होते हैं। वह अपने व्यवहार के परिणामों के परीक्षण में बहुत व्यस्त रहता है और शाब्दिक (मौखिक) प्रतिपुष्टि के स्थान पर इन गौण संकेतों को पढ़ना पसंद करता है। इस प्रकार वह अपनी स्वायतता पर लगाए गए सामाजिक प्रतिबन्धों को समझ सकता है और दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार की व्याख्या कर सकता है जिससे वह बड़ी चेतावनी अथवा सजा को उकसाने पर रोक लगा सके।

प्रयोगशाला में तीन वर्ष से कम का बालक विभेदन तथा संप्रत्यय निर्माण की सरल समस्याओं को तुरन्त हल नहीं कर सकता। उसका ध्यान एक वस्तु पर बहुत कम फोकस होता है तथा शीघ्र ही हट जाता है। उसकी प्रतिनिधानात्मक प्रणाली प्रत्यक्ष, आत्मकेंद्रित, काल परिप्रेक्ष्यहीन तथा सामान्यतः अनम्य होती है। उसका सीखना सरल सम्बन्धों से निर्धारित होता है तथा भाषा क्षमता होने पर भी वह अपनी जानकारी को व्यवस्थित करने अथवा अपने व्यवहार को निदेशित करने में भाषा का बहुत कम प्रयोग करता है।

प्राग-विद्यालय—तीन से पांच वर्ष का बालक सामाजिक मान को अथवा व्यवहार को मन से स्वीकार कर, अच्छे और बुरे आचरण पर धारणाओं और विश्वासों की नकल कर तथा निर्धारित आयु और लिंग सम्बन्धी भूमिकाओं को स्वीकार कर अपने परिवार के साथ अपनी पहचान स्थापित करने में ही मुख्य रूप से बौद्धिक प्रगति करता है। पारिवारिक सामाजिकता जो औपचारिक रूप से प्रथम वर्ष में प्रारम्भ होती है वह अधिकांशतः छह वर्ष की आयु के प्रारम्भ तक लगभग पूरी हो जाती है। प्राग्विद्यालयी वर्षों की अवधि में बच्चा अपने आपको संसार के एक व्यक्ति के रूप में समझने की जानकारी अधिक से अधिक प्राप्त कर लेता है। वह दूसरों के विचारों को ग्रहण करने योग्य हो जाता है और सामना होने पर उनसे विचारों का आदान प्रदान करता है।

वस्तुनिष्ठता तथा योजना—यद्यपि ऊपर बताई गई सामाजिकता की प्रक्रिया मात्र संज्ञानात्मक विकास का ही दृष्टांत नहीं है बल्कि वह बच्चे के चिंतन में सापेक्षता तथा वस्तुनिष्ठता के प्रमाण भी प्रस्तुत करती है। उसकी प्रतिनिधानात्मक प्रणाली सुविकसित होती है जिससे वह उन परिस्थितियों में प्राक्कल्पित कारण और कार्य (प्रभाव) समझ सके जिसका अनुभव उसे प्रत्यक्ष रूप से कभी नहीं हुआ है। उसके खेल और अतिकल्पना में अत्यधिक वास्तविकता, आंतरिक तर्क और निरन्तरता दिखाई देती है। सरल परिस्थितियों में वह पिछले मामलों से लेकर वर्तमान स्थितियों तक तर्क कर सकता है और इस बात की सम्भावना उत्तरोत्तर बनाए रखता है कि उसकी सर्वप्रथम क्रिया सरल परन्तु बुद्धिमतापूर्ण योजना द्वारा वांछित दिशा की ओर जाने के लिए उसे प्रेरित कर सके।

विभेदक सीखना—बालक के शब्द-अर्थ का विस्तार होता है। वह निम्न आधार पर क्रियाओं तथा घटनाओं में अन्तर कर सकता है—उचित-अनुचित, पुरुष-स्त्री, निश्चित-अनिश्चित, समय के अनुसार दूर-पास, सक्रिय-निष्क्रिय, तेज-मंदा। सहकालिक विभेदक सीखना तथा सरल संप्रत्यय सीखना दोनों ही उसकी क्षमताओं में होते हैं परन्तु आनुक्रमिक विभेदों तथा बहुचर संप्रत्ययों को सीखना उसके लिये कठिन अथवा असम्भव होता है। वह आकार, प्रकार, रंग, बनावट, आधार पर उत्तेजनाओं की तुलना सरलता से कर सकता है तथा सरल स्थितियों में वह इन विभेदों को नई उत्तेजना पर सफलतापूर्वक लागू कर सकता है।

भाषा तथा शाब्दिक व्यवहार—तीन से छह वर्ष तक की आयु में भाषा सम्बन्धी उपलब्धियां विस्तृत होती हैं, परन्तु ये उपलब्धियां अमूर्तकरण (सूक्ष्मता) तथा सामान्यीकरण में सहायक न होकर केवल उच्चारण, व्याकरण तथा शब्दावली में ही होती हैं। भाषा संरचना में प्रयोग किए जाने वाले शब्दों में स्वतन्त्रता मिल जाती

उत्तरकालीन बाल्यावस्था—10 से 11 वर्ष की आयु के बाद बौद्धिक विकास गुणात्मक से अधिक मात्रात्मक होता है । वर्तमान क्षमताएं परिष्कृत हो जाती हैं तथा नई सामग्री में उनका प्रयोग अधिक होने लगता है । विशेष रूप से विविध सामाजिक संदर्भों में समस्याओं को समझने की योग्यता तथा दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार के विविध स्त्रोतों को अच्छी तरह समझने की योग्यता में किशोरावस्था की अवधि में तीव्र गति से विस्तार होता है । संसार को उस तरह देखने की क्षमता जिस तरह अन्य व्यक्ति देखते हैं तथा अधिक परिष्कृत अंतर्वैयक्तिक सापेक्षता के आधार पर कार्य करना उत्तर किशोरावस्था तथा नव-प्रौढ़ावस्था में ही पूर्ण विकसित होता है । यद्यपि इस बात का बहुत कम प्रमाण उपलब्ध है कि बहुत-सी संस्कृतियों में किशोरावस्था के दौरान होने वाला मुख्य व्यक्तिगत पुनः अभिविन्यास सृजनात्मक विकास के लिए कोई आवश्यक संरचनात्मक अर्थ रखता है ।

संज्ञानात्मक परिवर्तन की प्रक्रियाएं तथा रचना

प्रत्यक्षीकरण—बच्चे के प्रत्यक्षीकरण पर अनुसंधान अधिकांशतः निरपेक्ष तथा विभेदी सीमाओं के मनोशारीरिक निर्धारकों, भ्रमों तथा उत्तर प्रभावों से ग्रस्त होने की संभावना, प्रात्यक्षिक स्थिरताओं, तथा दृष्टिहीन और बधिर बच्चों की अधिमान्यताओं और योग्यताओं के माप से संबंधित है ।

स्थिरतायें और संप्रत्यय—बालकों में प्रात्यक्षिक स्थिरताओं के विकास तथा आयु के कारण प्रात्यक्षिक अनुभवों के क्षेत्र निर्धारण पर काफी साहित्य उपलब्ध है । यद्यपि भ्रम संवेद्यता तथा प्रात्यक्षिक स्थिरताओं से अनुभव और ज्ञान बहुत अधिक संबंद्ध है परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि इन संबंधों की खोज पूरी तरह विशेष रूप से अंग्रेजी में उपलब्ध साहित्य में नहीं की गई है । उदाहरण के लिए प्रात्यक्षिक स्थिरताएं संप्रत्यय निर्माण के आद्य रूप मानी गई है । वस्तु को दूरी, प्रकाश तथा देखने की अन्य विविध अवस्थाओं पर ध्यान दिए बिना पहचान लिया जाता है और बाद में उसके दिखाई देने पर एक संप्रत्यय के विविध दृष्टांत के रूप में उसका विश्लेषण किया जा सकता है ।

बोली जाने वाली भाषा को समझने की क्षमता संकल्पनात्मक विचार के लिए एक प्रात्यक्षिक पुल है । जिस प्रकार स्पष्ट उद्देश्य अथवा औपचारिक प्रशिक्षण के बिना भी बालक एक वस्तु के विविध रूपों में प्रकट होने पर भी निरंतर पहचानता है उसी प्रकार वह बोली जाने वाली भाषा को विभिन्न अवसरों पर विविध वक्ताओं के कारण होने वाली विकृतियों तथा असंबद्ध विविधताओं के बावजूद भी समझ लेता है ।

उदाहरण के लिए भाषा के स्पैक्ट्रमलेखीय विश्लेषण से यह पता चलता है कि बोले जाने वाले शब्दों को यर्थात् रूप से समझने के लिए स्वनिमों की विशेष विशेषताओं को स्थिर रखा जाना चाहिए जब कि उसके स्वराघात, स्वर-गुण तथा समय आदि के विशेष पक्ष शब्दों की बोधगम्यता में कमीलाए बिना व्यापक रूप से भिन्न हो सकते हैं। हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बालक जो कुछ सुनता है उसकी जटिल वाक् ध्वनियों से कुछ संबद्ध संकेतों को चुनना सीख जाता है। न सुलझने वाली मुख्य समस्या है वाक् प्रत्यक्षज्ञान न कि वह प्रणाली तंत्र जिसके द्वारा सुनने वाला समीक्षा गुणों को चुनने में व्यस्त रहते हुए भी असंबद्ध विविधताओं की व्यापक विस्तृती को सहन करने लगता है। यह समस्या भी मुख्यत: संप्रत्यय निर्माण की है।]

छोटे बालक के क्रमबद्ध दैनिक कार्य में होने वाले अनुभव प्रात्यक्षिक तुल्यताओं को प्रारंभ करने का काम करते हैं जो संप्रत्ययों के समान होते हैं। चाहे इस प्रक्रिया को श्रृंखलाक्रम में पहले से स्थित संकेतों के प्रति अंतिम अनुक्रिया का क्लासिकी अनुकूलन समझा जाए अथवा इसको श्रृखलाबद्ध पूर्वापेक्षित अनुक्रियाओं के द्वारा प्रत्याशाओं की स्थापना माना जाए, इस प्रकार की दैनिक प्रक्रिया में आने वाले संकेत समान अनुक्रिया उत्पन्न करते हैं और इस अर्थ में समतुल्य हैं कि एक बार क्रम सीख जाने पर कोई भी एक संकेत वही अनुक्रिया उत्पन्न कर सकता है।

माता के विषय में शिशु का क्रमबद्ध सामान्यीकरण का सामान्य प्रेक्षण इस विचार की पुष्टि करता है। प्रथम तो निपिल के स्पर्श मात्र से शिशु का रोना बंद हो जाता है तथा वह संपर्क के लिए आगे बढ़ता है। तथापि पोषण क्रम में पहली घटनाओं का बार-बार दोहराया जाना जैसे शिशु को उठाना तथा एक विशेष ढंग से पकड़ना, माता के बढ़ते हुए कदमों की आहट अथवा दरवाजे का खुलना उसी अनुक्रिया अथवा उसके पूर्वापेक्षी भाग को उत्पन्न करता है। उत्तेजना की ऐसी अनुक्रमिक समतुल्यताओं की विशेष प्राप्ति का क्लासिकीय अनुकूलन अथवा क्रिया प्रसूत श्रृंखला के अनुसार विश्लेषण किया जाता है परन्तु इस सीमा तक कि बच्चे के लिए भिन्न-भिन्न संकेतों का समान महत्व ही होता है। इस विचार का समर्थन किया जा सकता है कि संप्रत्यय का निर्माण प्रारंभिक रूप से हो रहा है तथा तुल्यता और प्रत्याशा संप्रत्ययात्मक सीखने के प्रारंभिक उदाहरण हैं।

शिशु की प्रात्यक्षिक क्षमताओं पर, जिसमें उसके पर्यावरण की कुछ खास विशेषताओं में विभेदन करने तथा उसके प्रति अनुक्रिया करने की संभावना निहित है, अध्ययन कार्य अभी प्रारंभ हुआ है। अवमानवीय जंतुओं के जीवन में अंकन और संकटपूर्ण अवधि तथा निर्मोचक उत्तेजना पर किए गए कार्य ने मानव में इस प्रबल विभेदन के चित्रण की गति को तीव्र करने में सहायता की है। जीवन के प्रथम

इस दृष्टिकोण का सामान्य समर्थन प्रयोग द्वारा उत्पन्न की गई विकर्षण अथवा विलंब की परिस्थितियों में सीखने पर किए गए अध्ययन से प्राप्त होता है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि काम में विकर्षण के कारण ध्यान का उचटना बड़े बच्चों की अपेक्षा छोटे बच्चों द्वारा सीखने में अधिक बाधक होता है । यह बाधा सत्र के बाद के प्रयत्नों की अपेक्षा प्रारंभ में अधिक होती है तथा काम के सरल होने पर कम कठिन और अस्पष्ट होने पर अधिक होती है ।

सीखने की अवधि के दौरान बच्चों की प्रेक्षणीय अनुक्रियाओं के प्रत्यक्ष रूप से परिचालन अथवा व्यवस्थित रूप से उनके मापन से संबंधित बहुत कम अध्ययन प्रकाशित हुए हैं । इस दावे का समर्थन पशुओं तथा प्रौढ़ व्यक्तिओं द्वारा सीखने पर उपलब्ध साहित्य में मिलता है कि ध्यान का संबद्ध विस्तार, जैसा कि चुने हुए प्रेक्षणीय व्यवहार से इंगित होता है, स्वयं ही सीखने योग्य अनुक्रिया सेट है जिसमें अधिकांशतः सामान्यता और शक्ति है । तथापि अभी यह अज्ञात है कि समस्या-समाधान योग्यता में आयु के साथ प्रगति होना प्रत्यक्ष रूप से उस क्षमता के कारण होता है जो समस्या के उठने पर समान समस्याओं के संचयी अनुभवों के आधार पर संभव संकेतों पर ध्यान देने को प्रेरित करती है ।

ध्यान की संकल्पना मुख्य रूप से नियंत्रित, अनुकूलनीय, ऐच्छिक तथा विभेदक प्रेक्षणीय अनुक्रियाओं के एक सेट के रूप में की जा सकती है । यह विचार अवमानवीय जीवों में सीखने से संबंधित अनुसंधान साहित्य में निरन्तर जोर पकड़ता जा रहा है । प्रत्यक्ष व्यवहार के स्तर पर क्रियाकलाप जैसे चूहे में विविध प्रकार के प्रयत्न और भूल, बिल्ली और मुर्गो की गति से उत्पन्न दिशांतर आभास के गहन संकेत पर निर्भरता आवश्यक सूचना, ग्रहण प्रक्रिया की ऐच्छिक प्रकृति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । इसी प्रकार शरीरक्रियात्मक घटना जैसे परिसरीय संवेदी क्रियाकलाप का मस्तिष्क द्वारा दमन उन संकेतों के चयन पर प्रांतस्था नियंत्रण के प्रमाण प्रस्तुत करती है, जिनकी प्राप्ति सीखने की योग्यता पर बहुत अधिक प्रभाव डालती है । बच्चों में प्रेक्षणीय व्यवहार की आवश्यकता से सबद्ध अतिरिक्त प्रमाण प्रयोगों से प्राप्त होता है जिनमें उत्तेजक की प्रस्तुती जानबूझ कर इस प्रकार की जाती है कि वे संबद्ध अनुक्रिया होने में या तो बाधा उत्पन्न करती है अथवा उनमें सहजता एवं सरलता लाती है । सीखने की दक्षता पर भी समान प्रभाव प्राप्त हुए हैं । उदाहरण के लिए बच्चों के विभेदन सीखने में इस बात का प्रभाव पड़ता है कि अनुक्रिया का लोक्स उत्तेजक में है, इसके तत्काल निकट है अथवा स्थानीय रूप से उससे दूर है । इसी प्रकार पुनर्बलन उस समय अधिक प्रभावी होता है जब उसका लोक्स उत्तेजना और अनुक्रिया के निकट हो और पुनर्बलन के देने पर बाधा उत्पन्न करने वाला व्यवहार बहुत कम प्रदर्शित होता हो ।

यह संबद्ध सहवर्ती अनुक्रियायें समस्या-समाधान अथवा सीखने की प्रारंभिक अवस्थाओं में तथा जब सीखा जाने वाला कार्य बच्चे के लिए कठिन हो तब अधिक सुस्पष्ट होती हैं। पुनरावृत्ति तथा अनुभवों द्वारा बढ़ती हुई पहचान और अधिकार के कारण प्रत्यक्ष रूप से प्रकट अभिविन्यासी तथा प्रेक्षणीय अनुक्रियाओं सहज और सरल हो जाती हैं। जब विशेष समस्या का भिन्न-भिन्न संदर्भों में अनेक बार समाधान हो जाता है तब तत्वों की कम विस्तृत और सोद्देश्य जांच की आवश्यकता होती है तथा नई उत्तेजना, बाह्य प्रेरणार्थक घटनाओं जैसे भय या चेतावनी से उत्पन्न होने वाली उत्तेजनाओं और अप्रत्याशित घटनाओं से ही अन्वेषी अनुक्रिया पूरे रूप में प्रकट हो जाती है। अन्वेषणकारी व्यवहार की यह प्रावरोधक और अप्रावरोधक घटनाएं कालानुक्रमिक आयु तथा सापेक्षतः कम अंतरालों में अभ्यास किए जाने वाले दोनों ही के कारण ज्ञेय हैं।

जिस प्रकार उत्तेजना, अनुक्रिया और पुनर्बलन का पास-पास होना प्रतियोगी सहवर्ती अनुक्रियाओं को कम करके सीखने में सहजता लाता है इसी प्रकार समय की निकटता बाधा को रोक कर सीखने में दक्षता बढ़ाने में सहायक होती है। अनुक्रिया में विलम्ब तथा पुनर्बलन में देरी सीखने में अहितकर है। ऐसा अहितकर इसलिए होता है कि निलम्बित अंतराल में बच्चों का ध्यान आकर्षित करने के लिए असंबद्ध वस्तुओं और घटनाओं में होड़ लग जाती है। जब तक इस अंतराल को संबद्ध, प्रेक्षणीय, नामधारी अथवा अभ्यासी व्यवहारों से पूरा नहीं किया जाता, यह होड़ बनी रहती है। यदि बालक को पूर्व प्रशिक्षण, अनुदेशों अथवा कार्य की अपेक्षाओं द्वारा इन विलम्बों के दौरान उचित चिंतन के लिए प्रेरित किया जाए तो इससे उत्पन्न क्षति को प्राप्ति तथा अभिग्रहण के लाभ से पूरा किया जा सकता है।

प्रमस्तिष्कीय नियंत्रित 'ऐच्छिक प्रेक्षणीय अनुक्रियाओं' से भिन्न वे अनैच्छिक, स्वतः चालित अभिविन्यासी प्रतिक्रियाएं है जो उस समय होती है जब कभी ध्यान एक विशेष उत्तेजना पर केंद्रित होता है। इन अभिविन्यासी प्रतिक्रियाओं का विस्तृत अन्वेषण रूसी मनोवैज्ञानिकों और शरीरवैज्ञानिकों द्वारा मुख्यतः क्लासीयेकीय अनुकूलन तकनीक द्वारा किया गया है। अवधानिक प्रक्रियाओं को प्रयोगात्मक नियंत्रण के अंतर्गत लाने के कारण तथा अधिकांश अनुसंधानों में प्रयोग विषयों के लिए बच्चों को ही लिए जाने के कारण संज्ञानात्मक विकास में इस कार्य का विशेष महत्व है। सोकोलोव (1958) तथा अन्यों द्वारा विकसित अभिविन्यासी प्रतिक्रियाओं की विषयसूची में निम्नलिखित प्रतिक्रियायें सम्मिलित हैं—ज्ञानेन्द्रिओं की अवस्था में परिवर्तन, ज्ञानेंद्रिओं को निदेशित करने वाली मांसपेशियों में परिवर्तन, कंकालीय संस्थिति, पेशी-समूह तथा केन्द्रीय तंत्रिकातंत्र में परिवर्तन, विशेष

रूप से ध्यान आकर्षित करने वाली उत्तेजना द्वारा उत्पन्न अभिविन्यासी प्रतिक्रियाओं के पैटर्न में आंख की पुतलियों का फैलना, रेटिना में प्रकाश रासायनिक परिवर्तन, (जो प्रकाश के लिए निरपेक्ष तीव्रता सीमा को कम करने का कार्य करती है), आखों, सिर, धड़ अथवा सारे शरीर का उत्तेजना के स्त्रोत की ओर घूमना निम्न स्तनधारी जीवों में कानों का खड़ा हो जाना तथा नाक का सुकड़ना, होने वाली क्रिया में रुकावट (विशेषरूप से स्वस्थितिग्राहि व्यवहार जैसे अपौष्टिक चूषण), सामान्य शरीर पेशी संकोचन में वृद्धि तथा पेशी-विद्युत आरेखीय अभिवाही आवेग की गति में वृद्धि, प्रमस्तिष्क विद्युत आरेख के मंद तरंग पैटर्न में असमाकलन, उच्च अथवा निम्न शाखाओं में रक्त वाहिनियों का सुकड़ना और इसके साथ सिर की रक्तवाहिनियों का फैलाव, गैल्वनी त्वचा अनुक्रिया (जी. एस. आर.), हृदय गति का बढ़ना, तथा श्वसन में क्षणिक मंदन और उसके पश्चात् श्वसन में त्वरण आदि। लगभग यह सभी अनुक्रियायें क्लासिकीय अनुकूलन तथा कुछ क्रियाप्रसूत नियंत्रण के अधीन होती हैं। उचित समयानुसार तथा उचित क्रमानुसार संबद्ध संकेतों की प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न होने वाले अवधानात्मक संकेत उच्च मानसिक प्रक्रियाओं जैसे अनुकूलनीय विभेदन, संप्रत्यय निर्माण तथा जटिल कार्यों में नियमानुसार व्यवहार करने मे सहजता लाते हैं।

शब्दार्थ अनुकूलन—शब्दार्थ अनुकूलन पर अनुसंधान से यह पता चलता है कि वैयक्तिक बालक के लिए एक परिचित उत्तेजना का महत्व कभी-कभी उस उत्तेजना के प्रति अनुकूलित अनुक्रियाओं के सामान्यीकरण के रूप में जाना जा सकता है। यद्यपि अपनाई जाने वाली तकनीक भिन्न हो सकती है, इस कार्य को बच्चों के मुख्य तथा गौण उत्तेजना सामान्यीकरण पर अमरीका द्वारा किए गए कार्य से प्रत्यक्ष रूप से तुलना की जा सकती है। इस प्रक्रिया के प्रारंभ में शब्द का प्रस्तुतीकरण एक हल्के विद्युत झटके अथवा एकाएक जोर से होने वाले शोर तथा अल्प अवधि के साथ होता है जिससे वाहिका प्रसरण अथवा जी एस आर अनुकूलित हो जाता है। एक बार अनुकूलन की स्थापना हो जाने पर शब्दों की श्रृंखला जिसमें "घर", "चूहा" तथा "भवन" भी सम्मिलित है, प्रस्तुत की जाती है। पहले के प्रति अनुक्रिया शब्दरूपात्मक सामान्यीकरण का प्रमाण है और यह बच्चों की विशेषता होती है। दूसरे के प्रति अनुक्रिया शब्दार्थ (गौण) सामान्यीकरण का प्रमाण प्रस्तुत करती है जो बड़े बच्चों और वयस्कों की विशेषता है।

सीखने के सेट तथा प्रशिक्षण अन्तरण

बच्चों के विकासात्मक अध्ययन का उत्तरोत्तर संबंध पूर्व प्रशिक्षण अनुभवों का अनुवर्ती सीखने तथा परीक्षण निष्पत्तियों के अंतरण पर पड़ने वाले प्रभाव से होता जा रहा है। जब तक कार्य पूर्व प्रशिक्षण से परीक्षण तक परिवर्तित नहीं होता,

प्रयोग मात्र पुनः स्मरण अथवा शेष स्मृतियों को ही मापता है, जिसमें संज्ञानात्मक विकास के विद्यार्थी की कोई रुचि नहीं है। जब पूर्व परीक्षण एक सामान्य सेट, नीति, प्रत्याशा अथवा सिद्धांत की स्थापना करता है जिसका स्थानांतरण प्रभावी रूप से नई सामग्रियों अथवा पूर्णतः नए कामों में किया जा सकता है, तब यह कहा जा सकता है कि सहज बनाने वाले अथवा बाधा उत्पन्न करने वाले प्रभाव संज्ञानात्मक विकास से संबद्ध है। इसी प्रकार सरल और सहज निष्पत्ति सेट अथवा स्फूर्ति का प्रभाव पांच वर्ष के बच्चों में देखा जा सकता है और इस सेट का विभेदन सीखने के सेट (सीखने के लिए सीखना) से जिस के लिए इस आयु के बच्चे योग्य होते हैं, प्रयोगात्मक रूप से अंतर किया जा सकता है (कैंटर 1965)। प्रारंभ में वस्तु-विभेदन सीखने के सेट के विस्तृत अन्वेषण तीन वर्ष तक के छोटे बच्चों पर किए गए प्रयोग से प्राप्त होने वाले सफल परिणामों की लगभग प्रतिकृति ही हैं।

भिन्न-भिन्न आयु के सामान्य बच्चों का मंदित और प्रतिभाशाली बच्चों से तुलना करने वाले अध्ययन यह प्रदर्शित करते हैं कि मानसिक आयु स्थिर रखने पर बुद्धि बढ़ने के साथ सीखने के सेट बढ़ती हुई गति और सूक्ष्मता से बनते हैं (जबकि कालिक आयु कम होती है)। इन अध्ययनों में बुद्धि को बुद्धिलब्धि के समान माना गया है। ठीक इसके विपरीत जब बुद्धि (मानसिक आयु/कालिक आयु) को स्थिर रखा जाता है तब निष्पत्ति में वृद्धि बढ़ती हुई मानसिक आयु तथा कालिक आयु के अनुसार होती है। उचित अवधानात्मक सेट के पूर्व-प्रशिक्षण से सामान्य तथा मंदित बच्चों की निष्पत्ति में सहजता आती है जबकि असंगत अवधानात्मक सेट का पूर्व प्रशिक्षण उस समय बाधा उत्पन्न करता है जब सामान्य तथा मंदित बच्चों की निष्पत्ति की तुलना ऐसे नियंत्रित समूह से की जाती है कि जिन्हें इस प्रकार का पूर्व प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता। इस बात का पर्याप्त प्रमाण उपलब्ध है कि मानसिक रूप से मंदित बच्चों में पाई जाने वाली सीखने से संबंधित कठिनाइयों का मूल अधिकांशतः उचित संकेतों के प्रति अनुक्रिया करने के लिए सेट प्राप्त करने में कमी होना है। अनेक अन्वेषणों द्वारा यह बताया गया है कि विभेदन सीखने के सेट की मुख्य देन संबद्ध और जानकारी देने वालों संकेतों पर ही ध्यान दिये जाने की सामान्य प्रवृत्ति है। जेमेन तथा हाउस (1963) ने यह प्रदर्शित किया कि संयोग निष्पत्ति में पहली वृद्धि एक ही मानसिक आयु वाले सामान्य बालकों की अपेक्षा मंदित बालकों में बहुत अधिक प्रयत्न करने पर होती है जब कि प्रारंभ में दोनों समूह में प्रगति की गति एक समान ही थी।

संप्रत्यय निर्माण

बच्चे जिन सामान्यकृत तथा अमूर्त क्षमताओं तथा सेटों के योग्य होते हैं उनकी जांच अधिकतर या तो समस्या समाधान तथा नियमानुसार व्यवहार करने की कूट-

सामने आ जाता है । दूसरे चरण में यह दिखाया गया कि बच्चों में दूसरे और तीसरे स्तर के अनुकूल की स्थापना में शब्दों को अनुकूलित उत्तेजना के रूप में प्रयोग करके शाब्दिक प्रतिक्रियायें उत्पन्न की जाती हैं जो मूल को बतातीं हैं । यद्यपि क्लासीकीय अनुकूलन की अनेक सामान्य घटनायें जैसे विलोप, पुनः प्राप्ति, बाह्य प्रावरोध, बाह्य अप्रावरोध तथा "अविकिरण" (सामान्यीकरण) इस संदर्भ में बताये जा सकते हैं, अनुकूलित उत्तेजना के रूप में शब्दों की शक्ति, सामान्यता, विशिष्टता तथा नम्यता ने रूसी मनोवैज्ञानिकों को 'दूसरी संकेतन पद्धति' में अनुकूलन के विशेष नियम जो मानवीय जीव के लिए विचित्र ह, प्रस्तावित करने के लिए बाध्य किया ।

तथापि संयुक्त राज्य अमरीका के मनोभाषाविदों में इस बात को मानने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति है कि भाषायी क्षमता मात्र वर्षों से किए गए अभ्यास की सरल सीखने की प्रक्रिया ही नहीं है । उदाहरण के लिए चौमस्की (1963) का विचार है कि सहचारी सीखना सब भाषाओं में उपस्थित संरचना को अर्जित करने का कारण नहीं बन सकता, जबकि बच्चे निसंदेह वयस्कों द्वारा बोली जाने वाली भाषा में विस्तारों तथा शुद्धियों की नकल करते हैं । इस बात का भी प्रमाण उपलब्ध है कि व्याकरणीय भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान से परिचय उतना ही प्रभावशाली होता है जितना कि व्याकरणी भाषा बोलने के लिए अधिक संरचित भाषागत प्रशिक्षण । इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इस पुनः अभिविन्यास में संरचित भाषा के लिए जन्म से निर्धारित तथा जीव की विशिष्ट पूर्वप्रवणता की आवश्यकता न हो । ऐसी पूर्वप्रवणता (जन्मजात योग्यता) भाषा की संरचना और अभिप्रेरणा को नियंत्रित करती है जबकि परिवेश एक विशिष्ट भाषा की मुहावरेदार विषयवस्तु तैयार करता है । इस प्रक्रिया का मनोवैज्ञानिक माडल क्लासीकीय अनुकूलन अथवा अनुकरणशील क्रियाप्रसूत सीखने की अपेक्षा 'अंकन' से अधिक समानता रखता है ।

व्यवहारवाद की दृष्टि से शब्दों का एक विचित्र पक्ष यह तथ्य है कि वे उत्तेजना तथा अनुक्रिया दोनों का ही कार्य करते हैं । अर्थात बालक अपने लिए शाब्दिक उत्तेजना का निर्माण करना उतनी ही शीघ्रता से सीख सकता है जितना कि उन्हें बाह्य घटनायें समझ कर उनके प्रति अनुक्रिया करना सीख जाता है । न केवल इस पर ही पर्याप्त अनुसंधान किया गया है कि बालक किस प्रकार शब्दों को अनुपस्थित वस्तुओं के सूक्ष्म प्रतिनिधित्वों के रूप में प्रयोग करता है बल्कि इस पर भी अनुसंधान किए गए हैं कि लक्ष्य निर्देशित यांत्रिक व्यवहार की जटिल प्रक्रिया को नियंत्रित तथा निदेशित करने के लिए वह अनुकूलित स्वप्रशिक्षण के आधार पर भी शब्दों का प्रयोग करता है ।

चार वर्ष की अवस्था में बालक वस्तुओं के नामों क आधार पर उनका समूहन करने योग्य हो जाता है । अनेक खोजकर्ताओं जैसे स्पाइकर (1963) ने यह दिखाया

कि संकेतों की विलक्षणता अथवा समानता उनके साथ संबद्ध नामों की विलक्षणता (विशिष्टता) अथवा समानता की शक्ति पर निर्भर करती है। समान ध्वनि वाले नामों की प्राप्ति असमान वस्तुओं के समूह का एक वर्ग बनाने में सरलता लाती है तथा उनको पृथक-पृथक वर्गों में विभाजित करने में बाधा उत्पन्न करती है। इसका विलोम रूप वस्तुओं को उनके विशिष्ट नामों से जानना, समान अथवा तुल्य वस्तुओं के नामों को सीखने में विभेदन तथा बाधा को उस सीमा तक सहज बनाता है कि नामों की अपनी ही विशेष ध्वनि होती है और उन्हें इस प्रकार निपुणता से सीखा जाए कि संदर्भ नामों में इनका गलत प्रयोग न हो सके। छह: अथवा सात वर्ष की आयु में बालक भाषा का प्रयोग उद्दीपन को कोड करने मात्र के लिए ही नहीं करता बल्कि कुछ नया सीखने तथा चिंतन के माध्यम के रूप में करने लगता है।

मध्यस्थता सिद्धांत : मध्यस्थता सिद्धांत विशेष रूप से, शाब्दिक मध्यस्थता सिद्धांत संयुक्त राज्य अमरीका में उद्दीपन अनुक्रिया व्यवहारवाद से ही विकसित हुआ है। मध्यस्थता सिद्धांत की मुख्य संकल्पना मध्यस्थ अनुक्रिया तथा विशिष्ट प्रतिपुष्टि है जो अनुक्रिया तथा उसकी प्रतिपुष्टि से ही उत्पन्न होती है। किसी भी अनुक्रिया को एक मध्यस्थ माना जाएगा यदि वह क्लासीकीय अथवा यंत्रवत रूप से प्रारंभिक उद्दीपन के साथ अनुकूलित हो जाती है और यदि वह एक विश्वसनीय स्वस्थितिग्राही उद्दीपन उत्पन्न कर सकती है और बदले में जिसके साथ एक अंतिम गति अनुक्रिया अनुकूलित की जा सकती है। मध्यस्थ अनुक्रिया का प्रारंभिक आद्यरूप हल की खंड पूर्वापेक्षित लक्ष्य अनुक्रिया (आर जी) थी। ऐसी अनुक्रियायें ऐसा प्रतिपुष्टि उद्दीपन उत्पन्न करती थी जो इस लक्ष्य के कारण चूहे में दौड़ने के व्यवहार को सशक्त करती थी कि लक्ष्य अनुक्रिया (आर जी) को लक्ष्य बक्से तक के पहले से पुनर्बलित मार्ग में बाह्य उद्दीपन से अनुकूलित कर दिया गया था। आसगुड (1953) ने इस विचार को यह बताने के लिए अपनाया और उसे सामान्यीकृत किया कि यदि शाब्दिक (मौखिक) अथवा स्वचालित अनुक्रियायें किसी उद्दीपन से अनुकूलित होती है तब इन अनुक्रियाओं से स्वस्थितिग्राही प्रतिपुष्टि साहचर्यात्मक संदर्भ में उद्दीपन के अर्थ को परिभाषित कर सकती है। यदि वस्तु का नाम ही प्रारंभिक उद्दीपन है तब मध्यवर्ती अनुक्रियाये तथा प्रतिपुष्टि की वही मध्यस्थ शृंखला वस्तु अनुपस्थिति में कार्य करती है और प्रयोग विषय उसी प्रकार का व्यवहार करता है जैसा कि वस्तु को प्रारंभिक उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किए जाने पर करता है। जब मध्यवर्ती अनुक्रिया शाब्दिक मध्यस्थ (प्रकट अथवा प्रच्छन्न) होती है, अनुक्रिया से उत्पन्न होने वाला उद्दीपन अनुक्रिया के समान ही कार्य करता है तथा स्वप्रशिक्षण की संभावना पूरी हो जाती है।

सामान्य मध्यवर्ती अनुक्रिया माडल में न केवल मध्यस्थता के शाब्दिक सीखने तथा शाब्दिक व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभाव ही सम्मिलित होते हैं बल्कि संकेतों के तुल्य रूप अथवा अर्जित विलिक्षणता, संबद्धात्मक सीखना तथा अनुमानिक सीखना आदि विषय भी सम्मिलित होते हैं। व्यापक रूप से प्रतिपुष्टि माडल होते हुए भी इसे शब्दार्थ अनुकूलन, चुने हुये प्रेक्षणीय व्यवहार, संकेतों की संबद्धता के लिए सीखने के सेट तथा प्रत्याशित (प्रत्यक्षपरक) अभिज्ञान के 'गति अनुकरण' सिद्धांत पर भी लागू किया जाता है। इसके अतिरिक्त यह बच्चों को अपने ही व्यवहार पर अमूर्त और नम्य नियंत्रण करने के योग्य बनाता है जो व्यवहारवादी सिद्धांतों के समान होते हुए भी उच्च उद्देश्यपूर्ण सूझबूझ तथा बुद्धि के अनुकूल होता है और इसका अनुमान सामान्यतः बच्चों के ऐच्छिक व्यवहार को देखकर ही किया जाता है। इस माडल को एक सरल यंत्र का नाम दिया गया है अन्यथा व्यवहारवादी इसे अस्वीकार कर देते। मध्यवर्ती अनुक्रिया तथा विशेषरूप से शाब्दिक प्रक्रियाओं पर प्रयोग किए जाने वाले प्रतिपुष्टि माडल संज्ञानात्मक विकास से संबंधित पिछले अनुसंधानों तथा भविष्य में प्राप्त जानकारी की दृष्टि से अधिक आशाजनक है। ये माडल भाषा को अर्जित करने की समस्या के संबंध में सैद्धांनिक रूप से तटस्थ हैं, परन्तु चिंतन को सहज बनाने के लिए भाषा के अर्जन की पूर्वापेक्षाओं के लिए निम्नलिखित दो कामों को अलग करते हैं : संबद्ध शाब्दिक व्यवहार का उत्पन्न होना तथा व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए परिणामी प्रतिपुष्टि का प्रयोग। अंत में इनकी तुलना मानवीय संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के उद्दीपन के लिए अनुकलित्र पर आधारित माडलों के आंतरिक तर्क से की जा सकती है।

इस प्रकार भाषा बच्चे को अपने ही उद्देश्यों के मार्ग पर चलते रहने का कार्य करती है, व्यर्थ के चक्करों में फसने से बचाती है, उसकी अनुक्रियाओं को उचित क्रम में व्यवस्थित करती है और उसे यह बताती है कि क्या उसका व्यवहार उसे वांछित निर्णय के निकट ला रहा है। किसी समस्या को हल करने के लिए शाब्दिक रूप सेयोजना बनाने तथा समाधान की ओर प्रगति की मॉनिटरिंग करते रहने के लिए स्वअनुदेशों के विकास की अवधि में बच्चा सूचना के मूल्यांकन के नियमों तथा नीतियों को पर्याप्त सामान्यता से उत्तरोत्तर कोड करता रहता है जिससे वह विषय के नितांत भिन्न होते हुए भी एक समस्या का दूसरी समस्या पर सकारत्मक अंतरण कर सके। न केवल वह पहले से हल की गई समस्याओं से समानता रखने वाली नई समस्याओं के समाधानों को सरल बनाने वाले सीखने के सेटों का भंडार ही विकसित करता है बल्कि वह इन सेटों नीतियों अथवा समस्या समाधानों के दैनिक कार्यों में विभेद भी कर सकता है। इन नीतियों, सेटों तथा समाधानों को अनुकलिव के भंडारों के समान उचित समय पर पुनः स्मरण किया जा सकता है तथा जब भी कार्यक्रम अथवा उसके परिणामों में आवश्यकता होती है उन्हें प्रयोग किया जाता है।

परिस्थितियों के प्रत्यक्षण से होता है। इस कारण इस काल में उसकी तर्कशक्ति प्रभावी होती है।

(3) **वास्तविक संक्रियात्मक काल** (7 से 11 वर्ष) : इस काल में बच्चा स्तिष्क की उन प्रक्रियाओं में व्यस्त रहता है जिन्हें पियाजे 'संक्रियाएं' कहते हैं और जो अंतरंगी और विषयगी होती हैं। बच्चे का चिन्तन वास्तविक स्थितियों से संबंधित हो जाता है, वह समस्याओं का विधिवत् रूप से समाधान करना चाहता है परन्तु इसके लिए उसे गणितीय प्रमाण नहीं मिलते। वह प्राक्कल्पनात्मक आधार-सामग्री को स्वीकार नहीं करता। उसके चिन्तन पर वास्तविकता का प्रभुत्व हो जाता है और सम्भावनाएं गौण हैं।

(4) **औपचारिक संक्रियात्मक काल** (11 से 15 वर्ष) : इस अवस्था में अमूर्त चिन्तन के लिए किशोर वयस्कों जसी क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। उसका चिन्तन अब वास्तविक स्थितियों से संबंधित नहीं होता है। वह सभी प्रकार के तथ्यों, विश्वासों, प्राक्कल्पनाओं और संभाव्यताओं की कल्पना करता है और उन पर सोच-विचार करता है। तर्क करने की योग्यता वह प्राक्कपल्नाओं के माध्यम से विकसित कर लेता है। वह बुद्धि में इतना आगे बढ़ जाता है कि अपने प्रेक्षणों के लिए आनुभविक और गणितीय प्रमाण ढूंढ लेता है।

विभिन्न घरेलू परिस्थितियों और स्कूल के भिन्न-भिन्न पर्यावरणों के कारण हो सकता है उपरोक्त आयु परिसरों में बच्चे इन अवस्थाओं को प्रदर्शित न करें। परन्तु पियाजे का दृढ़ कथन है कि सभी बच्चों के लिए बुद्धि के विकास में इन अवस्थाओं का यही क्रम रहता है जबकि इसकी पुष्टि के लिए अभी भी एक बड़ी प्राक्कल्पना की आवश्यकता है। इसके दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) **संरक्षण निर्णय**--बच्चे और कभी-कभी वयस्क यह पुराना प्रश्न पूछते हैं कि 1 किलोग्राम लोहा भारी है अथवा 1 किलोग्राम रुई। 1 किलोग्राम लोहा भारी होता है क्योंकि वह रूई से अधिक भारी होता है अथवा एक किलोग्राम रूई लोहे से भारी होती है क्योंकि वह लोहे से अधिक जगह घेरती है। इस कथन का कारण यह है कि उनके चिन्तन का नियन्त्रण स्थितियों के प्रत्यक्षण से होता है। वह एक समस्या के एक ही पक्ष पर एक समय में विचार कर सकते हैं। उनका चिन्तन

तर्कशास्त्र, नैतिक निर्णय, गति, संख्या, वस्तु, प्रत्यक्षण, मात्रा, स्थान, गति और समय आदि। उनमें सम्पूर्ण शोध कार्य में तीन निम्नलिखित मूल अभ्यपगमों को पहचाना जा सकता है--प्रथम, यह कि प्रत्येक मनुष्य में एक विशिष्ट आन्तरिक संगठन होता है। दूसरे, इससे मनुष्य को कार्य करने का एक अपरिवर्ती और विशिष्ट साधन प्राप्त होता है। तीसरे, मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच सक्रिय अन्योन्य क्रिया होती है जिससे बौद्धिक संरचनाएं उत्पन्न होती हैं। बुद्धि को मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच संक्रियाओं के संदर्भ में देखा जाता है। धीरे-धीरे कुछ समय के बाद व्यनुकूलन (आत्मसात्करण और समंजन) के माध्यम से प्रतिवर्ती क्रियाएं आभ्यांतरिक हो जाती है। जैसा कि प्रारम्भ में एल. एस. वायगोटस्की और बाद में जे०एस० ब्रूनर ने प्रतिपादित किया था, उसी प्रकार पियाजे ने भी बौद्धिक विकास में अवस्था की संकल्पना को प्रतिपादित किया। ये अवस्थायें निम्नलिखित हैं- संवेदी गतिकाल, पूर्व संक्रियात्मक काल, वास्तविक संक्रियात्मक काल तथा औपचारिक संक्रियात्मक काल।

(1) **संवेदी गति काल** (जन्म से 2 वर्ष): यह बौद्धिक विकास की पहली अवस्था है। इस काल के पूर्वार्द्ध में बच्चे की क्रिया उसके अपने ही शरीर पर केंद्रित होती है। उत्तरार्द्ध में बच्चा व्यावहारिक बुद्धि का विकास करता है जो उसको बाह्य जगत की वस्तुओं से व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करती है। अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए बच्चा अपने माता पिता पर निर्भर रहता है और वह केवल प्रकट क्रियाएं ही करता है, किसी क्रिया के निष्पादन में वह अपने आपको शारीरिक रूप से पूरी तरह लगाता है। अपनी क्रियाओं के विषय में बिल्कुल नहीं सोचता है। आवाज, स्पर्श और अन्य शारीरिक उद्दीपन की ओर आकृष्ट होता है और जब वह घुटनों चलता है तो वह किसी न किसी वस्तु की खोज में होता है। केवल तस्वीरों से वह आकृष्ट नहीं होता, वरन् यदि उसे पेंसिल भी दे दी जाए तो उसे पकड़ने के लिए वह अपना हाथ बढ़ाता है।

(2) **पूर्व संक्रियात्मक काल** (2 से 7 वर्ष): पियाजे के अनुसार यह बुद्धि प्रतिनिधित्मक काल है क्योंकि बच्चा भाषा और मानसिक बिंबावली द्वारा वास्तविकता का प्रतिनिधित्व कर सकता है। बच्चा वस्तुओं को अपने ही ज्ञान के संदर्भ में देखता है और एक ही विचार को एक ही समय में सोच सकता है। भाषा का सीमित रूप में प्रयोग कर सकता है। अपने से ही बातें करता है और धीरे-धीरे कम स्वकेंद्रित होता जाता है। उसकी सामाजिक रुचियां विस्तृत होती जाती हैं। उसके चिन्तन का नियन्त्रण

हैं जिन पर आधारित होकर उसने विचारों का परीक्षण, अनुभवों का विश्लेषण किया और अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने की अभिवृत्ति को बनाए रखा। विचित्र घटनाओं के सम्बन्ध में भी हॉग ने प्रयोग किया और समान निष्कर्ष प्राप्त किए। हिन्दी तथा तेलगु भाषी बच्चों में स्वप्न, विचार, ईश्वर, सौंदर्य, जन्म, मरण आदि संप्रत्ययों के विकास के सम्बन्ध में भी श्यामला ने जांच की। उन्होंने पाया कि जीवन और परिवार सम्बन्धों के चुने हुए संप्रत्ययों को छोड़कर अन्य संप्रत्ययों और आयु के बीच कोई सहसंबंध नहीं है। फिर भी मानसिक आयु, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, शिक्षा सुविधाएं तथा अन्य पर्यावरणीय प्रभावों में भेद संप्रत्ययों के विकास पर अवश्य प्रभाव डालते हैं। एक और अध्ययन में डी० जोशी ने पाया कि समाज, सौंदर्य तथा समय सम्बन्धी संप्रत्ययों में लड़कियां लड़कों से श्रेष्ठ होती हैं तथा अन्तरिक्ष, भार तथा स्थान सम्बन्धी संप्रत्ययों में लड़कियां उनसे पीछे होती हैं।

उपयोक्त अध्ययनों का क्या महत्व है ? संप्रत्यय निर्माण पर प्रभाव डालने वाले तीन मूलभूत चरों को ये व्यक्त करते हैं : यथा–सीखने की विशिष्टता, कार्य की विशिष्टता और पर्यावरणी लक्षण। प्रत्येक चर की भूमिका को अभी कम ही समझा गया है क्योंकि प्रत्येक चर का व्यक्ति के अतीत के लम्बे इतिहास के संदर्भ में उसकी व्यापक विभिन्नता का अभी अध्ययन करना शेष है। इसके अतिरिक्त संप्रत्ययों के विकास में लिंग भेद का स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। कारणत्व तर्क में पियाजे के अवस्था सम्बन्धी संप्रत्यय का अनेक अध्ययनों में विरोध किया गया है। परन्तु क्या पियाजे द्वारा प्राक्कल्पित संप्रत्यय निर्माण का वही क्रम सभी छात्रों द्वारा बनाए रखा जाता है ? इस दिशा में ठोस आधार सामग्री अभी प्राप्त होनी शेष है। जब तक कि इस समस्यामूलक क्षेत्र में स्पष्टीकरण नहीं होता तब तक वयस्कों का हस्तक्षेप लम्बे समय के लिए अबोधगम्य ही बना रहेगा।

जेनिवा विचारधारा

इस विचारधारा के मुख्य समर्थक जीन पियाजे प्लेटो द्वारा प्रस्तुत प्राचीन समस्या–"मनुष्य कब और कैसे अपने ज्ञान के विषय में निश्चित हो सकता है जबकि बार-बार जिसे वह ज्ञान समझता रहा है उसकी त्रुटि सिद्ध होती रही है," को मनोवैज्ञानिक रूप से सुलझाने में सफल हुए हैं। इसमें उन्होंने सुप्रतिष्ठित वैज्ञानिक प्रक्रिया को अपने 'मैथोड क्लिनीक' से प्रतिस्थापित ही नहीं किया बल्कि बचपन से किशोरावस्था तक विकसित होने वाली बौद्धिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए अपने ही प्रतीकात्मक तर्क बनाए। इस प्रकार उन्होंने दिखाया कि किस प्रकार एक बालक जिसे सर्वव्यापक बालक कहा जा सकता है अपने ही ज्ञान का भण्डार बनाता रहता है। पिछले 40 वर्षों से पियाजे और उनके सहयोगियों ने निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में सहयोग किया है : कार्यकारणभाव, जननिक ज्ञानमीमांसा, ज्यामिती, भाषा

संकल्पना पर, $5\frac{1}{2}$ से 6, 6 से 7 और $9\frac{1}{2}$ से 11 वर्षों के 664 बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर घर, पाठशाला और कुछ चयन किए हुए वैयक्तिक चरों के प्रभावों का बुद्धि, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, भाषा विकास और नैतिक मूल्यों से काफी उच्च मात्रा में सहसंबंध होता है। उन्होंने बाद में यह निष्कर्ष निकाला कि संरक्षण परीक्षणों में सफलता प्राप्त करने के लिए ही नहीं बल्कि "संज्ञानात्मक विकास के पूर्व सूचक" के रूप में बुद्धि की तुलना में भाषा न केवल एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है बल्कि एक मुख्य स्थिति भी प्राप्त करती है। ज्ञानमीमांसीय अनुसंधान में ज्ञान के कई क्षेत्रों में परिकल्पना करने और अपने विशिष्ट तरीके से उनमें अंतःसंबंध स्थापित करने का काम पियाजे ने सम्पन्न किया। उनके प्रारम्भ के अनुसंधान में भौतिक कारणता के संप्रत्यय के विषय में जो कार्य किया गया उसका स्पष्टीकरण उन्होंने—क्योंकि, इसलिए, क्यों, अयुक्तता, सूर्य, चन्द्रमा, तारा, नदी, बादल तथा अन्ड समस्याओं, प्रयोगों और यहां तक कि मशीनों आदि जैसी संकल्पनाओं की जांच करके किया। उन्होंने बाद में यह कहा कि कारणत्व व्याख्या के प्रति अभिमुखता बच्चों के सम्पूर्ण संज्ञानात्मक जीवन में विशिष्ट होती है। उदाहरण के लिए बादल की गति के सम्बन्ध में सही ज्ञान बच्चों को 9 वर्ष की अवस्था में प्राप्त होता है। इससे पहले की आयु में वे बादल के चलने का सम्बन्ध अपने से, मनुष्य और और भगवान से तथा उनके स्वयं के चलने से, नैतिक रूप से और अन्त में बादल से ही निकली हवा के धक्के से जोड़ते हैं। उन्होंने बच्चों की विचारधारा में 17 प्रकार की कारणत्व व्याख्या की खोज की। इस संदर्भ में बच्चों और वयस्कों के कुछ मामलों में कारणत्व विचार के सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुसंधानकर्ताओं ने जांच की—यथा—बैन्कस, डैनिस, ड्यश, हॉग, आईजैक, किश, लौग, नवारा और वैद्य। पियाजे के अवस्था सम्बन्धी संप्रत्यय का ये सभी अध्ययन समर्थन नहीं करते और उनके 17 प्रकार की व्याख्याओं का मूल्य बहुत कम माना गया है। प्राकृतिक घटनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने प्रश्नों, समस्याओं और साधारण प्रयोगों के विषय में यह प्रदर्शित किया कि एक ही बालक कई प्रकार के व्यवहार प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए ऑक्स ने यह पाया कि किसी भी मानसिक योग्यता अथवा वर्ग वाले सब आयु-समूह सभी प्रकार के उत्तर देते हैं। कम बुद्धि-लब्धि वाले बच्चों के विचारों के विकास के सम्बन्ध में बेन्कस ने अध्ययन किया और पाया कि किसी बात का निष्कर्ष निकालने की योग्यता पर बुद्धि की बजाए बच्चे की आयु और उसे विज्ञान पढ़ाने का अधिक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने यह भी पाया कि उच्च बुद्धि लब्धि वाले व्यक्ति उच्च कोटियों की अधिक संख्या में व्याख्या कर पाए थे। एक और रुचिकर अध्ययन में श्री नवारा ने छोटी आयु के अपने बेटे के संप्रत्ययों के विकास की जांच की। उसके प्रमाण प्रत्याशाओं के क्रमिक विकास तथा उनमें क्रमिक विभेदन को इंगित करते

समस्याओं के लिए उन्हें 16 वर्ष की मानसिक अवस्था अवश्य प्राप्त करनी होती है। बर्टस का सिद्धांत पियाजे के सिद्धांत के काफी निकट है जिसमें वह यह कहते हैं कि बालक जब स्वतन्त्र और उचित अनुभव प्राप्त कर लेता है तो अर्थपूर्ण संकल्पनाएं स्वत: उत्पन्न होती है। इस शताब्दी के प्रारम्भ से पहले ही जी० स्टेनले हॉल ने भी इसी विषय पर बच्चों के मस्तिष्क का अध्ययन करके चर्चा की थी। उनका सुझाव था कि अध्यापकों को बालकों के साथ साधारण वस्तुओं के विषय में बात करनी चाहिए। पलेशनर भी इसी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। अनुसंधानकर्ता एन० ई० वीवर और ई० एन० मैडन भी समस्या समाधान के लिए दो शर्तों को आवश्यक समझते हैं---यथा-संबद्ध ज्ञान का होना और अनुसंधान संक्रियाओं पर दक्षता। वे एक रुचिकर अनु-संधान का उल्लेख करते हैं जिसमें 80 प्रतिशत प्रयोगपात्रों का विचार था कि जिन पिण्डों को वे स्केल द्वारा माप नहीं सकते थे उनमें भार नहीं होता। गोरियाचकिन का भी यही विचार है क्योंकि वे कहते हैं कि बच्चों को अपने जीवन अनुभवों से ही संप्रत्यय का निर्माण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्टैंडलर का कथन अधिक विशिष्टता लिए है जब कि वह बचपन में ही संप्रत्यय ग्रहण करने में संरचित अनुभवों और माडलों की भूमिका पर बल देते हैं, क्योंकि उनके अनुसार ये संप्रत्यय तंत्रिका संम्बंन्धी कोष को बनाने में सहायक होते हैं। प्राथमिक स्कूल के बच्चों में वैज्ञानिक और गणितीय संप्रत्ययों के विकास संम्बंन्धी एक और रुचिकर अध्ययन में पाया गया कि ग्रामीण बालकों की अपेक्षा शहर के बालक अधिक शीघ्रता से संप्रत्यय ग्रहण करते हैं। ग्रामीण और शहरी दोनों समूहों के लिए संख्या और भार के संप्रत्यय बनाना सरल था और दोनों समूहों के लिए शक्ति का संप्रत्यय निर्माण करना कठिन था। सुश्री यू० के० बेवली ने अपने शोध अध्ययन में विभिन्न पर्यावरण वाले भारतीय बच्चों में गति के संप्रत्यय के विकास के स्तर की जांच करने का प्रयास किया और यह भी जानने का प्रयास किया कि विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा इस संप्रत्यय को शीघ्रता से ग्रहण किया जा सकता है अथवा नहीं। इस कार्य के लिए दो प्रकार के निर्देश स्पष्ट पृथक क्षेत्रों से लिए गए। पहले निदर्श में ग्रामीण, शहरी लाभ वंचित तथा शहरी समूहों के 725 बच्चे 6+, 9+ तथा 12+आयु वर्ग के थे और दूसरे में 268 बच्चे 6+-9, +आयु वर्ग के थे। उन्होंने यह पाया कि जेनिवा के बच्चों में इस संप्रत्यय का विकास क्रम पियाजे द्वारा की गई खोज के समान ही है। तीनों समूहों में संप्रत्ययों के विकास और ग्रहण करने की गति में ही अन्तर पाया गया। रुचिकर बात यह है कि इस संप्रत्यय के निर्माण के सम्बन्ध में ग्रामीण बालकों और शहरी लाभ प्राप्त बालकों के समूहों के बीच 2 से 3 वर्ष की देरी अवश्य पाई गई। असंरक्षणकारी और संरक्षणकारी आयामों के संदर्भ में इस संप्रत्यय के शीघ्रता से निर्माण होने में प्रशिक्षण का प्रभाव नगण्य होता है। इसी लेखिका के एक अप्रकाशित अध्ययन में संख्या, लम्बाई, मात्रा, क्षेत्र, परिमाण को

अनुक्रिया रूपावली के अंतगत किया गया था। तीसरे, नव्य व्यवहारवादियों ने किसी भी मनोवैज्ञानिक घटना में निम्नलिखित तीन चरों को ही पाया यथा–पर्यावरण, व्यवहार और दोनों के बीच संबंध। इस प्रयास से संप्रत्यय की परिभाषा में कुछ अर्थ परिलक्षित हुआ, अर्थात्, असमान उद्दीपनों के सेट के प्रति सामान्य अथवा सम्मिलित अनुक्रिया। इस प्रकार हल ने अनुकूलन के नियमों का प्रयोग करके संप्रत्यय निर्माण का आधार विभेदी अधिगम को माना। विभेदन तब सन्निहित होता है जबकि प्रयोगशाला में एक कुत्ता सफेद दायरे के प्रति अनुक्रिया करता है परन्तु उसे धुसर रंग के दायरे के प्रति अनुक्रिया में खाना न देकर अनुक्रिया करने से रोका जाता है। पावलोव ने कुत्ते के इस असामान्य व्यवहार को अनुकलत उद्दीपन सामान्यीकरण तथा विलोप से संबंधित कर स्पष्ट किया है। एक बालक विभिन्न रंगों की पेंसिलों के एक ढेर से एक नीले रंग की पेंसिल उठाता है अर्थात वह अन्य रंगों की तुलना में नीलेपन का विभेदन कर लेता है। अन्यरंगों के प्रति उसकी अनुक्रियाएं विलुप्त हो जाती है। समस्या तब कठिन हो जाती है जब कि पेंसिलों को दो अन्य कसौटियों पर वर्गीकृत करना होता है : जैसे अधिक नीली और कम नीली। यहां पर विभेदीकरण अधिक हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो हमारा व्यवहार अत्यधिक अनम्य हो जाता

सामान्यीकरण और विभेदीकरण के कारण ही व्यनुकूली व्यवहार संभव है। यदि कोई पनीर के विषय में सोचता है तो प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार का पनीर क्योंकि कई प्रकार के पनीर मिलते हैं। यहां पर विभेदन आता है अर्थात कई समान उद्दीपनों के प्रति विभिन्न अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना। व्यवहार का स्पैट्रम कम हो जाता है क्योंकि पहले की अनुक्रियाओं के भंडार का पुनर्बलन नहीं होता। मनुष्य और पशु दोनों ही अपने विभेदन के आधार पर अनुक्रिया करना सीखते हैं। हल के अनुसार सीखना एक सतत प्रक्रिया है जो प्रथम प्रयास से प्रारंभ होती है। अतीत के पुनर्बलन और गैर पुनर्बलनों के आधार पर साधारण सीखने की संक्रियाओं के विकास से विभेदन संभव होता है। क्रैयस्की ने चूहों संबंधी अपने अध्ययन में हल के इस "समुच्चयी प्रभाव" की प्राक्कल्पना पर संदेह प्रकट किया है, जबकि उन्होंने दो प्रकार के प्रयासों का विभेदन किया है यथा-समन्वेषी और वे जो बिना निरंतरता के समाधान तक पहुंच जाते हैं। अन्त में संप्रत्यय निर्माण और इसमें निहित विभेदन की आधारभूत प्रक्रिया पर प्रभाव डालने वाले बाह्य चरों पर बल देकर अनुसंधान किया जा रहा है।

मध्यस्थता प्रक्रियाएं

यहां पर मध्यस्थता प्रक्रियाओं का संदर्भ देना इसलिए आवश्यक है कि यह

के संप्रत्यय का निर्माण करने के लिए आवश्यक वर्गीकरण, क्रमबद्ध करना तथा अन्य संक्रियाएं भी इसी काल में आती हैं। इन संप्रत्ययों को सुरक्षित रखने में असफल होने पर जे. एस. ब्रूनर ने यह टिप्पणी दी कि बालकों और वयस्कों दोनों के लिए ही "समान" (same) अथवा "अधिक" (more) शब्द समान अर्थ नहीं रखते। यहां तक कि यदि किशोरों के सामने भी निम्नलिखित स्थितियां प्रस्तुत की जाएं तो वे गड़बड़ा जात हैं :

(i) अध्यापक : भाप इंजन की किसने खोज की ?
छात्र : व्हाट

अध्यापक : वाट कहो, व्हाट नहीं ।

(ii) एक बूंद में यदि तुम एक और बूंद मिला देते हो तो कितनी बूंदें हो जाती हैं ?

(iii) एक रुमाल का एक कोना यदि काट दिया जाए तो कितने कोने शेष रहे ?

सामान्यत: संपूर्ण जीवन में संप्रत्यय विस्तृत और गहन होते जाते हैं। एटम, जीन, सत्य, सौन्दर्य, अच्छाई तथा पाप जसे अमूर्त संप्रत्ययों को ग्रहण करना कठिन होता है। जीवन में घटित होने वाली सकारात्मक घटनाएं किसी संप्रत्यय को पुष्ट करती है और नकारात्मक घटनाएं अस्वीकृति के लिए उन्हीं संप्रत्ययों में विसंगति ला देती हैं। अपने अधिकाधिक काम में आने वाले संप्रत्ययों को बच्चे किसी मार्गदर्शन के अंतर्गत अथवा उसके बिना ही सबसे पहले बना लेते हैं। यहां तक कि वयस्क भी अपने संप्रत्ययों को तब बच्चों पर थोप देते हैं जब उन्हें छोटे वयस्क माना जाता है। अन्त में पियाजे को हम श्रेष्ठ नहीं समझते हैं जब वे यह कहते हैं कि चिन्तन अथवा विचार का आधार क्रिया है। शैरिंगटन ने तो यहां तक कहा है कि हमारे आज के विचार प्रारंभिक गतिक्रिया से उत्पन्न हुए हैं। आदि मानव ने भी प्रारंभ में अपने दैनिक जीवन में मानसिक संक्रिया की अपक्षा शारीरिक क्रिया की थी।

विभेदी अधिगम

विभेदी अधिगम नकारात्मक घटक के रूप में अधिगम का एक और परिवर्त्य है जो संप्रत्ययों को और जटिल बनाता है। यह सीखने की प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में विद्यमान होता है। नैमित्तिक अधिगम की तरह, पुनर्बलन का नियम इस पर लागू होता है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो सी. एल. हल के शोध कार्य से एक प्रायोगिक विधि प्राप्त हुई थी जिससे संप्रत्यय निर्माण में विभिन्न चरों के प्रभावों का अध्ययन किया जाना संभव हुआ था। दूसरे, संप्रत्यय निर्माण का अध्ययन उद्दीपन-

वैयक्तिक अन्तर

संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं तथा उसके रचना तंत्र के अध्ययन से परे तथा मानक औसतों द्वारा मापी गई सामान्य बुद्धि संभाव्यता से परे व्यक्तियों की संज्ञा-ना मक काय त्मकता में गुणात्मक तथा शैलीपरक अंतरों पर अनकों अनुसंधान हुए हैं। यह पहले ही माना जा चुका है कि व्यक्ति व तथा स्वभाव के कुछ पक्ष संज्ञानात्मक क्षमताओं को प्रभावित कर सकते हैं और उनसे प्रभावित हो सकते हैं। परन्तु संज्ञानात्मक शली की संरचना पर पद्धतिबद्ध तथा वस्तुनिष्ठ अनुसंधान तथा चिंतन और सहायक प्रक्रियाओं पर उनका प्रभाव तात्कालिक है। ऐसा ही संज्ञानात्मक क्रियाकलाप में निहित अभिप्रेरणात्मक कारकों के विषय में कहा गया है। सामान्य व्यक्तित्व चरों में, जो संज्ञानात्मक निष्पत्ति से सहसंबंधित हैं, निष्पत्ति अभिप्रेरण, सत्तावाद, अभिव्यक्त दुश्चिंता स्तर, कायप्ररूप तथा "अहम् नियंत्रण" आदि सम्मलित हैं। ऐसे अनुसंधानों में विशेष रूप से यह प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार एक सुगठित चारित्रिक पूर्ववृत्ति चिंतन, तर्कना तथा समस्या समाधान पर विशेष पक्षपाती प्रभाव डालती है। अधिकांश मामलों में इन प्रभावों का अध्ययन उनके विकासक्रम के अनुसार नहीं किया गया है और इस बात की पर्याप्त संभावना है कि ऐसे गुणों के व्यष्टि विकास के संबंध में बहुत कम ज्ञान उपलब्ध है। अन्य शैलीकृत चरों का उद्भव व्यक्तित्व के सिद्धांत के बजाए सीधे प्रत्याक्षिक सीखने तथा संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं से हुआ है। क्षेत्र-उच्चारण, विचार आवगशीलता तथा सृजनशीलता आदि चर अपेक्षित अनुसंधान के लिए आकर्षण का केन्द्र बनते जा रहे हैं।

जैसा कि व्यक्तित्व से संबंधित अनुसंधान के मामले में देखा गया है संलक्षणों को नाम देना तथा सहसंबंधात्मक औसतों द्वारा इस बात का ज्ञान कि समान व्यक्तियों में कुछ गुणों के निश्चित समूह जन्मजात होते हैं ऐसे प्रतिरूपों के विकास तथा कारण की व्याख्या नहीं करते और न ही वे इसका पर्याप्त ज्ञान करवाते हैं कि माता-पिता और उनके बच्चों में समान गुण प्रतिरूप पाए जाते हैं। इस बात के प्रमाण भी उपलब्ध नहीं हैं कि संज्ञानात्मक शैली को बनाने का श्रेय आनुवंशिक कारकों, अनुकरणात्मक सीखने अथवा चयनात्मक पुनर्बलन को दिया जाना चाहिए। यद्यपि इस प्रकार के प्रभाव निसंदेह होते हैं, व्यक्तियों में संज्ञानात्मक शैली की उत्पत्ति पर अधिक प्रयोजनपरक अध्ययन की आवश्यकता है। इसका एक सफल उदाहरण बच्चों के प्रांरभिक आत्म-निर्भरता के प्रशिक्षण में निष्पत्ति की आवश्यकता की उत्पत्ति पर किए गए काम में मिलता है। इसका दूसरा उदाहरण है---सत्ताधारी व्यक्तित्व में अस्पष्टता के प्रति असहिष्णुता के विकास की मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या। सरलीकरण पर ध्यान दिए बिना संज्ञानात्मक शैली चरों को फिर से दो सामान्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग का संबंध सूक्ष्मता, यथार्थता, स्थिरता तथा संज्ञानात्मक

प्रक्रियाओं की स्वतंत्रता से है, दूसरे का संबंध इन चरों की प्रभाविता, सहजता तथा स्पष्टता से है। उदाहरण के लिए सूक्ष्मता के अंतर्गत दृढ़ता, मननशीलता, क्षेत्र उच्चारण तथा आत्मनिर्भरता,अहम नियंत्रण तथा अस्पष्टता के प्रति असहिष्णुता आदि माने जा सकते हैं। दूसरे वर्ग के अंतर्गत नम्यता, मौलिकता, सर्जनशीलता, आवेगपूर्ण क्षेत्र निर्भरता, अहम् नियंत्रण को एक साथ रखा जा सकता है। सम्मिलित चरों पर निर्भर रहते हुए यह दो वर्गीकरण या तो एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं अथवा नकारात्मक रूप से संबंधित होते हैं। परिभाषित किए जाने वाले स्वतंत्र संलक्षणों की संख्या अत्यधिक सीमित है तथा प्रस्तावित चरों, समूहों तथा कारकों के बीच संतोषजनक रूप से संबंध स्थापित करना अभी शेष है।

यदि यह संबंध स्थापित भी हो जाए तो भी उनके परिणामतः संलक्षणों का ध्यानपूर्वक विकासात्मक अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है। सर्जनशीलता तथा चिंतनशीलता ऐसे दो चर हैं बच्चों में जिनकी उत्पत्ति और उपस्थिति से संबंधित पर्याप्त खोज की गई है। सर्जनशीलता पर अनुसंधान अनेक अनुसंधान केंद्रों में विविध अभिविन्यास उद्देश्यों तथा विधियों द्वारा स्वतंत्र रूप से किए जा रहे हैं। वर्तमान स्थिति का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है : चरों के नम समूह को, जिसे सजनशीलता कहा गया है अनेक वस्तुनिष्ठ साधनों द्वारा बुद्धि से अलग किया जा सकता है। विविध प्रकार के कार्यों में नई,तीव्र, असामान्य रूप से व्यवस्थित मौलिक अथवा अप्रचलित अनुक्रिया उत्पन्न करने की प्रवृत्ति, जो व्यक्ति में प्रायः निरंतर बनी रहती है, सामान्य बौद्धिक उपलब्धि का उतना पूर्वानुमान नहीं कराती जितना कि बुद्धि परीक्षणोंके प्राप्तांकों से होता है। एक शैलीगत चर के रूप में इस पद्धति का विकास सामान्यतः नम्य, उत्तेजनापूर्ण, प्रयोजनार्थक, परम्परा विरोधी तथा अनुज्ञात्मक घर क परिवश में होता है परन्तु किन्ही विशेष अनुभवों के सट को इसका मुख्य कारण नहीं कहा जा सकता। इसका सहसंबंध सामाजिक तथा भावनात्मक समायोजन से उतना अधिक नहीं है जितना कि बुद्धि से है।

चिंतन-आवेगशीलता :– कगन तथा उसके सहयोगियों ने चिंतन-आवेगशीलता के शलीगत चर की जांच की है और वह ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रत्यक्षात्मक, संप्रत्यात्मक तथा गति और यथार्थता वाले गत्यात्मक कार्यों में व्यक्तिगत विभिन्नता का पर्याप्त वर्णन किया है। उनकी यह खोज बौद्धिक विकास का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों क लिए रुचिकर है क्योंकि यह खोज बच्चों और वयस्कों दोनों में ही विस्तारपूवक की गई है तथा इसका संबंध निष्पत्ति कार्यों के विस्तृत समूह से है। चिंतनशीलता अथवा विश्लेषणात्मक शैली के निकष माप के लिए विविध प्रकार के कार्यों का विकास किया गया है परन्तु इन कार्यों में ये तीन विशेषताये सामान्य हैं : (1) सभी कार्यों में

वैयक्तिक अन्तर

संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं तथा उसके रचना तंत्र के अध्ययन से परे तथा मानक औसतों द्वारा मापी गई सामान्य बुद्धि संभाव्यता से परे व्यक्तियों की संज्ञानात्मक कार्यात्मकता में गुणात्मक तथा शैलीपरक अंतरों पर अनकों अनुसंधान हुए हैं। यह पहले ही माना जा चुका है कि व्यक्तित्व तथा स्वभाव के कुछ पक्ष संज्ञानात्मक क्षमताओं को प्रभावित कर सकते हैं और उनसे प्रभावित हो सकते हैं। परन्तु संज्ञानात्मक शैली की संरचना पर पद्धतिबद्ध तथा वस्तुनिष्ठ अनुसंधान तथा चिंतन और सहायक प्रक्रियाओं पर उनका प्रभाव तात्कालिक है। ऐसा ही संज्ञानात्मक क्रियाकलाप में निहित अभिप्रेरणात्मक कारकों के विषय में कहा गया है। सामान्य व्यक्तित्व चरों में, जो संज्ञानात्मक निष्पत्ति से सहसंबंधित हैं, निष्पत्ति अभिप्रेरण, सत्तावाद, अभिव्यक्त दुश्चिंता स्तर, कायप्ररूप तथा "अहम् नियंत्रण" आदि सम्मलित हैं। ऐसे अनुसंधानों में विशेष रूप से यह प्रदर्शित किया है कि किस प्रकार एक सुगठित चारित्रिक पूर्ववृत्ति चिंतन, तर्कना तथा समस्या समाधान पर विशेष पक्षपाती प्रभाव डालती है। अधिकांश मामलों में इन प्रभावों का अध्ययन उनके विकासक्रम के अनुसार नहीं किया गया है और इस बात की पर्याप्त संभावना है कि ऐसे गुणों के व्यष्टि विकास के संबंध में बहुत कम ज्ञान उपलब्ध है। अन्य शैलीकृत चरों का उद्भव व्यक्तित्व के सिद्धांत के बजाए सीधे प्रत्याक्षिक सीखने तथा संज्ञानात्मक प्रतिक्रियाओं से हुआ है। क्षेत्र-उच्चारण, विचार आवगशीलता तथा सृजनशीलता आदि चर अपेक्षित अनुसंधान के लिए आकर्षण का केन्द्र बनते जा रहे हैं।

जैसा कि व्यक्तित्व से संबंधित अनुसंधान के मामले में देखा गया है संलक्षणों को नाम देना तथा सहसंबंधात्मक औसतों द्वारा इस बात का ज्ञान कि समान व्यक्तियों में कुछ गुणों के निश्चित समूह जन्मजात होते हैं ऐसे प्रतिरूपों के विकास तथा कारण की व्याख्या नहीं करते और न ही वे इसका पर्याप्त ज्ञान करवाते हैं कि माता-पिता और उनके बच्चों में समान गुण प्रतिरूप पाए जाते हैं। इस बात के प्रमाण भी उपलब्ध नहीं हैं कि संज्ञानात्मक शैली को बनाने का श्रेय आनुवंशिक कारकों, अनुकरणात्मक सीखने अथवा चयनात्मक पुनर्बलन को दिया जाना चाहिए। यद्यपि इस प्रकार के प्रभाव निसंदेह होते हैं, व्यक्तियों में संज्ञानात्मक शैली की उत्पत्ति पर अधिक प्रयोजनपरक अध्ययन की आवश्यकता है। इसका एक सफल उदाहरण बच्चों के प्रारंभिक आत्म-निर्भरता के प्रशिक्षण में निष्पत्ति की आवश्यकता की उत्पत्ति पर किए गए काम में मिलता है। इसका दूसरा उदाहरण है—सत्ताधारी व्यक्तित्व में अस्पष्टता के प्रति असहिष्णुता के विकास की मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या। सरलीकरण पर ध्यान दिए बिना संज्ञानात्मक शैली चरों को फिर से दो सामान्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग का संबंध सूक्ष्मता, यथार्थता, स्थिरता तथा संज्ञानात्मक

अस्पष्टता अथवा अनुक्रिया संदिग्धता की कुछ मात्रा अवश्य बनी रहती है जिसके कारण कोई भी अनुक्रिया प्रारंभ में स्पष्ट रूप से सही प्रतीत नहीं होती । इस प्रकार यह संभव है कि व्यक्ति एक संज्ञानात्मक कार्य का निष्पादन किस प्रकार करते हैं, इसका मूल्यांकन करते समय वे वस्तुत: व्यक्तियों की पसंद तथा योग्यता के मेल का ही माप करते हैं; (2) निकष कार्यों में उद्दीपक भिन्नताओं के प्राय: सूक्ष्म तथा विस्तृत प्रत्याक्षिक विश्लेषण की आवश्यकता होती है । उच्च चिंतनशीलता प्राप्तांक प्राप्त करने के लिए उनमें आपसी तथा उद्दीपक के साथ व्यवस्थित तुलनाओं की आवश्यकता है परन्तु वे किसी भी अर्थ में संवेदी तीक्ष्णता के परीक्षण नहीं हैं ; (3) वे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अनुक्रिया की गति के साथ ही साथ उसकी प्रकृति पर भी ध्यान देते हैं, द्रुतगामी निष्पत्तियों को सामान्यत: आवेगपूर्ण कहा गया है ।

इस शैली आयाम के विमर्शपूर्ण तथा विश्लेषणात्मक छोर पर निष्पत्तियां सामान्यत: परिशुद्ध, सापेक्षित: मंद, पद्धतिबद्ध, तार्किक रूप से वस्तुनिष्ठ तथा शाब्दिक होती हैं । फैल्स संस्थान के एक अनुदैर्ध्य नमूने में चिंतनशील वयस्कों में शारीरिक क्रिया, गति शीलता तथा बेचैनी कम पाई गई । वे अधिक समय तक ध्यान केन्द्रित कर सकते थे तथा उनमें उन वयस्कों की तुलना में कम चित अस्थिरता थी, जिन्होंने वितरण के अंतिम छोर पर तथा आवेग पूर्णता में अधिक प्राप्तांक प्राप्त किए थे । इसके विपरीत प्रत्यक्षपरक संज्ञानात्मक कार्यों में तीव्र, सापेक्षत: अशुद्ध असंगत यद्यपि अधिक कल्पनात्मक निष्पत्ति आवेगपूर्ण तथा अविश्लेषणात्मक संलक्षणों के कारण ही होती है । अभी हाल के एक अध्ययन में प्राथमिक श्रेणियों में आवेश शीलता तथा पठन कठिनाइयों के संबंधित होने के कुछ संकेत प्राप्त हुए हैं । इ से भी अधिक जीवन के दूसरे वर्ष में ही इस विशेषता की पर्याप्त स्थिरता के प्रमाण प्राप्त हुए है जो इस बात को आश्वस्त करते हैं कि इसमें आनुवंशिक निर्धारको के योगदान की संभावना विचारणीय है । आयु के साथ आवगशीलता के कम होने तथा चिंतना में वृद्धि होने की प्रवृत्ति दिखाई देती है अन्य बढ़ते हुए शैली चरों के समान चिंतनशीलता में विकासात्मक तथा विभेदी घटक हैं और यदि हम इसकी उत्पत्ति और व्यक्ति के बौद्धिक विकास में इसकी भूमिका को पूरी तरह समझना चाहते हैं दो दोनों ही प्रकार के विश्लेषणों (विकासात्मक तथा विभेदात्मक) की आवश्यकता है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रूनर, जेरोम एस. एंड ऑलिवर रोज़ आर (संपादक) 1966 स्टिडीज इन कॉगनेटिव ग्रोथ, न्यू यार्क: विली ।

2. गिलफोर्ड, जे. पी. 1956 प्रज्ञा की संरचना साइक्लोजिकल बुलेटिन 53: 267–293 ।

3. केगन, जेरोम एस. 1965 प्राथमिक ग्रेड के बच्चों में चिंतन-आवेगता तथा पठन योग्यता, बाल विकास 36: 609–628 ।

4. केंडलर, ट्सी एस. 1963; बच्चों में मध्यस्था अनुक्रियाओं का विकास बान विकास अनुसंधान सोसाइटी, मोनोग्राफ़स 28, नं. 2: 33–48।

5. लौंग, लुईस एंड वेल्क, लिविंगस्टन 1941; छोटे बच्चों में तर्क क्षमता जर्नल आफ साइकोलोजी 12: 21–44 ।

6. मिलर, जोर्ज म. गेलैंटर, ई, एंड प्रिब्रंय, के. एच. 1960; प्लांस एवं स्ट्रेक्चर ऑफ बिहेविअर, न्यू यार्क : होल्ट ।

7. मौंटेसरी, मेरिया (1909) 1964; द मौंटेसरी मैथड : साइन्टिफिक पैडागोजी एज अपलाइड चाइल्ड ऐजुकेशन इन "द चिल्ड्रन हाउस" कैम्ब्रिज, मास, बेंटल ।

8. ऑसगुड, चार्ल्स इ. (1953) 1959; मैथड एंड थ्यौरी, इन एक्सपैरीमैंटल साइकोलोजी न्यूयार्क : आक्सफोर्ड यूनि. प्रेस ।

9. स्पाइकर, चार्ल्स सी, 1963 बच्चों के विभेदन सीखने में शाब्दिक कारक– बाल विकास अनुसंधान सोसाइटी, मोनोग्राफस 28 नं. 2:53–69 ।

10. वेल्क, माइकल एस. एंड कोगन, नाथन 1965 मोड्स आफ थिंकिंग इन यंग चिल्ड्रन, न्यूयार्क होल्ट ।

11. विटकिन, हर्मन ए. एट एल 1954; पर्सनेलेटी थ्रू पर्सेपशन. न्यूयार्क: हार्पर ।

12. वोहलविल, जोखिम, एफ. 1960; प्रत्यक्षण का विकासात्मक अध्ययन साइक्लोजीकल बुलेटिन 17 : 249–288 ।

13. जैमेंन, डेविड, एंड हाउस, बेटी जे. 1963: मंदित विभेदन व सीखने में ध्यान की भूमिका, पृष्ठ 159–223 नोर्मन आर. इलीस (संपादक) हैंडबुक आफ मेंटल डेफीशेंसी, न्यूयार्क : मैक्ग्रा हिल ।

संप्रत्यय निर्माण

चिन्तन –एक कठिन प्रसंग

चिंतन की प्रक्रिया जिस प्रकार हमारे मस्तिष्क में होती है वह कोई शारीरिक प्रक्रिया नहीं है क्योंकि वह प्रेक्षण पर आधारित न होकर अनुमान पर आधारित होती है। साहित्य में इसे विभिन्न निम्नलिखित रूपों में वर्णित किया जाता है--यथा--विविक्त करना, विश्लेषण करना, वर्गीकरण करना, तुलना करना, निगमन करना, परिभाषित करना, विभेदन करना, आकलन करना, समान्यीकरण करना, अनुमान लगाना, कल्पना करना, निर्णय देना, जानना, राय बनाना, तर्क करना पुनः स्मरण करना, पहचानना, प्रतिबिंबित करना, याद करना, परिणामों की खोज करना और समझना आदि। ऐसा करते समय व्यक्ति को पहले संप्रत्यय निर्माण के क्षेत्र से गुजरना पड़ता है जो अपने ही अधिकार वाला जांच का एक विशाल क्षेत्र है। इसका संबंध जटिल मनोवज्ञानिक प्रक्रियाओं जैसे चिंतन, सीखने, समस्या समाधान, भाषा अभिग्रहण तथा सांकेतिक प्रतिनिधित्व आदि से होता है परन्तु वह इनके समतुल्य नहीं है। इस औरआगे बढ़ते हैं तो पाते हैं कि संप्रत्यय और अधिक जटिल क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं– यथा-समस्या समाधान, सर्जनात्मकता, आलोचनात्मक चिंतन, मौलिकता यहां तक कि व्यक्तित्व में भी। चूंकि आम व्यक्तियों, व्यवसायियों तथा सामान्य मनोवैज्ञानिकों के प्रश्न अविरत रूप से एक से नहीं होते, संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों की कठिनाइयां बढ़ती ही जा रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित ऊपर दी गई समस्याएं पर्याप्त नहीं थीं क्योंकि संवेदना, प्रत्यक्षण, सीखना और अभिप्रेरण आदि के क्षेत्रों के विपरीत संप्रत्यय निर्माण के क्षेत्र में प्रणाली शास्त्र और संप्रत्यय संबंधी दोनों ही प्रकार की एकता का अभाव है। इस कारण अपने कार्य क्षेत्र के संबंध में ही तथ्य निश्चित करने के लिए संप्रत्यय निर्माण का क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से ग्रहण करता है। इसमें सफलता प्राप्त करने के लिए चिन्तन की जटिल प्रक्रिया की जांच करने के उद्देश्य से गैस्टाल्ट मनोविज्ञान की शब्दावली में अधिक उत्पादनशीलता से समास्याओं का निरूपण करना होगा जिसके फलस्वरूप बीच-बीच में प्रयोग की सहायता लेते हुए समझ का विकास, सामान्यीकरण और विभेदन तथा संकल्पना का विकास किया जा सकता है। जब इन सभी मामलों पर एक साथ विचार किया जाता है तो शारीरिक ओर सामाजिक पर्यावरण के अत्यधिक महत्वपूर्ण पक्षों का बच्चों के मानसिक विकास से संबद्ध करने की मूलभूत समस्या बच रहती है। मूलभूत समस्या का समाधान किसी भी पाठशाला विषय को मनोवैज्ञानिक संरचना प्रदान करने की लंबी प्रक्रिया में होता है।

आँसबल, बार्टलेट, बीयर्ड, ब्रूनर, फलेबैल, गैंगनी, गिलफोर्ड, हंस फूर्थ, हर्नशा, हेल्डर, ऋपलस, लोवेज, लुकार, पील, पियाजे, श्वाब, स्किनर, शूखमैंक, वरनौन, वालेस तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों के हाल के प्रयासों के कारण इस क्षेत्र में इस दशक में पर्याप्त खोजें हुई हैं जिनके फलस्वरूप इस क्षेत्र की समस्याएं अब छिपी नहीं हैं। पीछे की ओर दृष्टि डालें तो पच्चीस वर्ष पूर्व यह स्थिति नहीं थी। चिंतन संबंधित नवीन साहित्य से यह स्पष्ट हो गया है कि बच्चे स्वतः स्फूर्ति से ही सीख लेते है तथा पाठशाला के प्रभाव के बिना ही वे विचारधाराओं को ग्रहण कर लेते हैं। वे एक दूसरे से औपचारिक परिस्थितियों में भी अच्छी तरह सीख लेते हैं। क्योंकि बच्चे स्वतंत्र और क्रियाशील होते हैं इसलिए बिना सोचे-समझे उन्हें कोई अपना मत या दृष्टिकोण स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। बच्चों को अपने निकट के पर्यावरण के व्यक्तियों तथा अन्य बातों का भी निजी ज्ञान होता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि उनका ज्ञान उतना ही यथार्थ होता है जितना कि सूर्य का पूर्व में उदय होना और पश्चिम में अस्त होना। इसका यह अर्थ है कि बच्चों का चिंतन कोई यादृच्छिक व्यवहार नहीं है वरन वह उपलब्ध सैद्धांतिक रचनाओं की तुलना में युक्तियुक्त, बौद्धिक और अनुमानित होता है।

संप्रत्यय की परिभाषाएं

संप्रत्यय की परिभाषाओं का विषय एक अव्यवस्थित विषय है क्योंकि संप्रत्यय स्वयं ही अपनी परिभाषा का खंडन करता है। सभी अवसरों और उद्देश्यों के अनुकूल औपचारिक रूप से परिभाषित करने के बजाए इस शब्द को स्वतः ही सरलता से समझा जा सकता है। यह ऐसा इस कारण है क्योंकि भिन्न व्यक्ति इसको भिन्न रूप से देखते हैं—यथा-सामान्य व्यक्ति, अध्यापकगण, विधि विशेषज्ञ, शिक्षक, मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, गणितज्ञ, तर्कशास्त्री तथा दर्शन-शास्त्री आदि। उदाहरण के लिए जिन विषयों में संप्रत्यय की परिभाषाओं में भिन्नता आती है वे हैं—अमूर्त चित्रण, उचित प्रकार से एकत्रित अनुभव, अभिकथन, सामान्यता, निर्मितियां (शारीरिक और मानसिक दोनों), सृजन (स्वतंत्र और प्रतिबंधित दोनों, निर्णय, विचार (उत्पन्न किए, पहचाने हुए अथवा विकसित), तादात्मय (एकमात्र घटना), निष्कर्ष, अर्थ, मानसिक प्रतिमा, (वस्तु और क्रिया), प्रक्रिया (सक्रिय, निष्क्रिय और अनुकूलनशील), शिक्षण के परिणाम, वैज्ञानिक प्रक्रियाओं के उत्पाद, शब्द, विचार (माध्यम अथवा साधन), प्रतीक और शब्द आदि। हमारी कठिनाइयां यहीं समाप्त नहीं होती क्योंकि रावर्ट गैंगनी के कथनानुसार कुछ संप्रत्यय केवल परिभाषा से ही प्राप्त किए जा सकते हैं जैसे प्रतिरोध, घनत्व आदि। इसके अतिरिक्त यह संप्रत्यय वास्तविक हों अथवा औपचारिक वे मनोवैज्ञानिक रूप से विकसित होते हैं क्योंकि उनका विकास प्रारंभ से होता देखा गया है। यदि ऐसा है तो परीक्षित ज्ञान से उनमें विविधता आ सकती है। साहचर्य के दृष्टिकोण

से भी एच. एच. कैन्डलर के अनुसार संप्रत्यय उत्तजना के कुछ गुणों अथवा संकेतों तथा कुछ अनुक्रियाओं के बीच संबंध होता है। दूसरी ओर जब संप्रत्यय को आंतरिक संरचना अथवा संज्ञानात्मक संरचना, जो कि बांह्य व्यवहार पर प्रभाव डालते हैं, के रूप में देखते हैं तो इसका संदर्भ एकदम भिन्न हो जाता है। उस समय यह उस प्राक्कल्पना की तरह हो जाता है जो अव्यक्त प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यवहार को प्रदर्शित करती है और इसके फलस्वरूप बाहय व्यवहार नियंत्रित होता है। अन्त में जब कोई व्यक्ति वर्गीकरण, सामान्यीकरण और विभेदीकरण करने के योग्य हो जाए और इस योग्यता को किसी पूर्व निर्धारित कसौटी पर लागू करने लगे तो वह संप्रत्ययों का निर्माण करने लगता है।

संप्रत्ययों के कार्य

संप्रत्ययों में तार्किक और मनोवैज्ञानिक दोनों ही विशेषताएं होती हैं और उनके निम्नलिखित कार्य होते हैं:—

(1) ये वे निर्मितियां होती हैं जो पर्यावरण के साथ निरंतर भौतिक रूप से सामना करने से उत्पन्न होती हैं। यदि वे मानसिक हैं तो वे प्रेक्षणीय नहीं हैं। फिर भी उनको पहचाना जा सकता है और संज्ञा दी जा सकती है।

(2) संप्रत्यय विभिन्न अनुभवों, घटनाओं और प्रक्रियाओं को वर्गीकृत और परस्पर संबंधित कर लेते हैं। इस प्रक्रिया में वे वस्तुनिष्ठ बन जाते हैं और ज्ञान की वृद्धि करते हैं।

(3) वे पर्यावरण के कुछ पक्षों, घटनाओं, व्यवहारों अथवा प्रतिक्रियाओं के साधनों तथा तथ्यों के समूहों अथवा संबंधों को अर्थ प्रदान करते हैं।

(4) वे परस्पर अंतःसंबंध स्थापित करते हैं और एक सोपानिकी का गठन कर लेते हैं।

(5) ये कथन व्यवहारी, सत्यापनीय और प्रयोगशील होते हैं और इन कथनों को ऐसे शब्दों में अभिव्यक्त किया जाता है जो सत्य प्रतीत होते हैं। जब संप्रत्यय एक दूसरे का अथवा उतनी ही सुप्रतिष्ठित विधि का विरोध करते हैं तो इस प्रकार की अनियमितता को ठीक कर दिया जाता है।

(6) वे अल्पव्ययी होते हैं क्योंकि वे "बार-बार के सीखने" को बचाते हैं और यदि भूल भी जाएं तो उन्हें पुनः सक्रिय किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कुछ शर्तों के अंतगत वे हमें स्थानांतरण और सामान्यीकरण के रूप से बहुत कुछ प्रदान करते हैं।

(7) वे अन्य तरीकों से भी हमारी सहायता करते हैं। सामान्य रूप में वे हमारा संज्ञानात्मक भार कम करते हैं। दूसरी ओर जब हम जटिल समस्याओं का समाधान करते हैं तो वे इस भार को और भी बढ़ा देते हैं।

(8) वे अमर नहीं हैं। विकास के उनके अपने स्तर हैं। यदि मूलभुत संप्रत्यय पर ध्यान दिया जाए तो समय गुजरने पर वे अतिरिक्त खोजों अंतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त नये तथ्यों के कारण परिवर्तित हो जाते हैं।

संप्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया

संप्रत्ययों के कार्यों और उनकी प्रवृत्ति को चिंतन की पृष्ठभूमि में समझने की आवश्यकता है क्योंकि वे हमारे पर्यावरण के विषय में धीरे-धीरे जानकारी बढ़ाते हैं। "स्मोक" के अनुसार उनकी विशिष्टता विभेदी, सामान्यीकृत और प्रतीकात्मक अनुक्रियाओं की संगति से ही परिलक्षित होती है। इस प्रकार के व्यापक व्यवहार की ऐसी जटिलता यह प्रदर्शित करती है कि बच्चे किस प्रकार अपने संप्रत्ययों का निर्माण करते हैं और उनका प्रयोग करते हैं। प्राफेसर जे. बी. ब्रूनर और उनके सहकर्मियों की खोज के अतिरिक्त "वयस्कों में संप्रत्यय प्राप्ति" पर किए गए अध्ययनों के रूप में वर्गीकृत संप्रत्ययों के विकास के संबंध में भी यही सच है। फिर भी, हम कुछ धारणाओं से इस विषय पर सतही रूप से कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि संप्रत्यय किस प्रकार बनते हैं और हम केवल भौतिक जगत में ही नहीं रहते हैं बल्कि मनोवैज्ञानिक जगत में भी रहते हैं। कई उद्दीपन जैसे वस्तुएं, घटनाएं, संकेत और व्यक्ति हमारे सामने आते हैं और हमें उनको वर्गीकृत करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। उदाहरण के लिए, सभी प्रकार के पशुओं के विषय में बताने के लिए अलग-अलग पशु का नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि केवल "पशु" का संप्रत्यय इसके लिए पर्याप्त है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हमें जीवित और अजीवित वस्तुओं का वर्गीकरण उनके लक्षणों अथवा विशेषताओं के आधार पर करना पड़ता है। किसी एक विशेषता का विद्यमान होना यह प्रदर्शित करता है कि उसकी वही विशेषता अन्य वस्तुओं से उसे भिन्नता प्रदान करती है और वह विशेषता अन्य वस्तुओं में नहीं है।

इस प्रकार सैद्धांतिक रूप से एक या दो कसोटी के आधार पर वस्तुओं के एक समूह को साथ ही साथ वर्गीकृत करना कठिन नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संप्रत्यय हमारे चिंतन में प्रविष्ट कर जाते हैं। उदाहरण के लिए—मेघ गर्जन के बाद वर्षा आती है अथवा दिन के बाद रात्रि आती है इस प्रकार के संबंध वर्षों के लगातार साहचर्य से बनते हैं। यदि अधिक विशिष्ट उदाहरण दिया जाये तो प्रत्येक बालक एक वृद्ध महिला को दादी कहता है। आर. बी. ब्राउन के अनुसार बालक ऐसा इसलिए करता है क्योंकि वह इस संप्रत्यय के संबंध में एक बड़ा वर्ग बनाता है जो कि विभेदनों के कारण धीरे-धीर छोटा होता जाता है। इस प्रकार बालक व्यापक संदर्भ के अंतर्गत शब्दाभिव्यक्ति करता है, सामान्यीकृत करता है और अधिक विभेदन करने लगता है। यह कोई एक ही क्षण का मामला नहीं है। बालक अपने प्रत्यक्षण क्षेत्र को अपनी व्यवस्थान् ार धीरे-धीरे बनाता है। यह नहीं भूलना चाहिए कि वह भाषागत क्षमता के अभाव के कारण अक्षम भी होता है। कभी-कभी वह संपूर्ण रूप से शारीरिक क्रिया में लग जाता है। वह सपाट और अरुचिकर तस्वीरों की ओर कतई आकृष्ट नहीं होता, परन्तु संगीत की धुनों का आनन्द लेता है वह एक खुशमिजाज व्यक्ति होता है। यदि उसे एक पेंसिल दिखाई जाए वह अपना हाथ बढ़ाता है और उसे चूसना प्रारंभ कर देता है। इस प्रकार चूस कर, रगड़ कर, दबा कर, पकड़ कर, खींच कर, मार कर और सरक कर वह अपने व्यावहारिक ज्ञान को बढ़ाता है। एक कुशल प्रेक्षक उसको कोहलर के चिंपैंजी की तरह व्यवहार करते देख लेता है जबकि वह मेजपोश पर रखी कुछ खाने की वस्तु या कोई आकर्षक वस्तु को देखकर मेजपोश को खींचता है अथवा वह अपनी मनवांछित वस्तु को प्राप्त करने के लिए ईंट पर ईंट रखकर उस तक पहुंचने का प्रयास करता है। प्रारंभ में कोई जाती हुई बस, ट्रक या कार को देखना उसके लिए भयजन्य अनुभव होता है। फिर वह उस अनुभव का उसकी तेज आवाज़, सीटी, आकार, रंग, रुकने आदि से अभ्यस्त हो जाता है। संक्षेप में वह अपनी गतिविधियों को समेकित करने लगता है और भाषा जैसे शक्तिशाली उपकरण को प्राप्त कर वह संप्रत्ययों का निर्माण शीघ्रता से करने लगता है। इस प्रकार वह अपने सीमित पर्यावरण के साथ सक्रिय लेन-देन से संतोषजनक अनुभव प्राप्त कर, गुस्सा होकर तथा सफलता और असफलता प्राप्त करने पर अपने ज्ञान का भंडार बनाता रहता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पढ़ने वाले बालकों में कुछ क्षमताएं स्वाभाविक रूप से आने लगती हैं। उदाहरण के लिए, प्राइस विलियम्स ने नाइजीरिया के अनपढ़ जनजाति के बच्चों में और स्कूल जाने वाले बच्चों के बीच जाने माने पदार्थों के वर्गीकरण करने की क्षमता में कोई अन्तर नहीं पाया। एक स्थायी संप्रत्ययात्मक संरचना को बना रखने की क्षमता बालक में केवल 7 से 11 वर्ष की अवस्था में ही आती है। संख्या

के संप्रत्यय का निर्माण करने के लिए आवश्यक वर्गीकरण, क्रमबद्ध करना तथा अन्य संक्रियाएं भी इसी काल में आती हैं। इन संप्रत्ययों को सुरक्षित रखने में असफल होने पर जे. एस. ब्रूनर ने यह टिप्पणी दी कि बालकों और वयस्कों दोनों के लिए ही "समान" (same) अथवा "अधिक" (more) शब्द समान अर्थ नहीं रखते। यहां तक कि यदि किशोरों के सामने भी निम्नलिखित स्थितियां प्रस्तुत की जाएं तो वे गड़बड़ा जात हैं :

(i) अध्यापक : भाप इंजन की किसने खोज की ?
छात्र : व्हाट

अध्यापक : वाट कहो, व्हाट नहीं ।

(ii) एक बूंद में यदि तुम एक और बूंद मिला देते हो तो कितनी बूंदें हो जाती हैं ?

(iii) एक रुमाल का एक कोना यदि काट दिया जाए तो कितने कोने शेष रहे ?

सामान्यतः संपूर्ण जीवन में संप्रत्यय विस्तृत और गहन होते जाते हैं। एटम, जीन, सत्य, सौन्दर्य, अच्छाई तथा पाप जसे अमूर्त संप्रत्ययों को ग्रहण करना कठिन होता है। जीवन में घटित होने वाली सकारात्मक घटनाएं किसी संप्रत्यय को पुष्ट करती है और नकारात्मक घटनाएं अस्वीकृति के लिए उन्हीं संप्रत्ययों में विसंगति ला देती हैं। अपने अधिकाधिक काम में आने वाले संप्रत्ययों को बच्चे किसी मार्गदर्शन के अंतर्गत अथवा उसके बिना ही सबसे पहले बना लेते हैं। यहां तक कि वयस्क भी अपने संप्रत्ययों को तब बच्चों पर थोप देते हैं जब उन्हें छोटे वयस्क माना जाता है। अन्त में पियाजे को हम श्रेष्ठ नहीं समझते हैं जब वे यह कहते हैं कि चिन्तन अथवा विचार का आधार क्रिया है। शैरिंगटन ने तो यहां तक कहा है कि हमारे आज के विचार प्रारंभिक गतिक्रिया से उत्पन्न हुए हैं। आदि मानव ने भी प्रारंभ में अपने दैनिक जीवन में मानसिक संक्रिया की अपक्षा शारीरिक क्रिया की थी।

विभेदी अधिगम

विभेदी अधिगम नकारात्मक घटक के रूप में अधिगम का एक और परिवर्त्य है जो संप्रत्ययों को और जटिल बनाता है। यह सीखने की प्रक्रिया की प्रत्येक अवस्था में विद्यमान होता है । नैमित्तिक अधिगम की तरह, पुनर्बलन का नियम इस पर लागू होता है। ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो सी. एल. हल के शोध कार्य से एक प्रायोगिक विधि प्राप्त हुई थी जिससे संप्रत्यय निर्माण में विभिन्न चरों के प्रभावों का अध्ययन किया जाना संभव हुआ था। दूसरे, संप्रत्यय निर्माण का अध्ययन उद्दीपन-

अनुक्रिया रूपावली के अंतगत किया गया था। तीसरे, नव्य व्यवहारवादियों ने किसी भी मनोवैज्ञानिक घटना में निम्नलिखित तीन चरों को ही पाया यथा–पर्यावरण, व्यवहार और दोनों के बीच संबंध। इस प्रयास से संप्रत्यय की परिभाषा में कुछ अर्थ परिलक्षित हुआ, अर्थात्, असमान उद्दीपनों के सेट के प्रति सामान्य अथवा सम्मिलित अनुक्रिया। इस प्रकार हल ने अनुकूलन के नियमों का प्रयोग करके संप्रत्यय निर्माण का आधार विभेदी अधिगम को माना। विभेदन तब सन्निहित होता है जबकि प्रयोगशाला में एक कुत्ता सफेद दायरे के प्रति अनुक्रिया करता है परन्तु उसे धुसर रंग के दायरे के प्रति अनुक्रिया में खाना न देकर अनुक्रिया करने से रोका जाता है। पावलोव ने कुत्ते के इस असामान्य व्यवहार को अनुकलत उद्दीपन सामान्यीकरण तथा विलोप से संबंधित कर स्पष्ट किया है। एक बालक विभिन्न रंगों की पेंसिलों के एक ढेर से एक नीले रंग की पेंसिल उठाता है अर्थात वह अन्य रंगों की तुलना में नीलेपन का विभेदन कर लेता है। अन्यरंगों के प्रति उसकी अनुक्रियाएं विलुप्त हो जाती है। समस्या तब कठिन हो जाती है जब कि पेंसिलों को दो अन्य कसौटियों पर वर्गीकृत करना होता है : जैसे अधिक नीली और कम नीली। यहां पर विभेदीकरण अधिक हो जाता है। यदि ऐसा न होता तो हमारा व्यवहार अत्यधिक अनम्य हो जाता

सामान्यीकरण और विभेदीकरण के कारण ही व्यनुकूली व्यवहार संभव है। यदि कोई पनीर के विषय में सोचता है तो प्रश्न यह उठता है कि किस प्रकार का पनीर क्योंकि कई प्रकार के पनीर मिलते हैं। यहां पर विभेदन आता है अर्थात कई समान उद्दीपनों के प्रति विभिन्न अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना। व्यवहार का स्पैट्रम कम हो जाता है क्योंकि पहले की अनुक्रियाओं के भंडार का पुनर्बलन नहीं होता। मनुष्य और पशु दोनों ही अपने विभेदन के आधार पर अनुक्रिया करना सीखते हैं। हल के अनुसार सीखना एक सतत प्रक्रिया है जो प्रथम प्रयास से प्रारंभ होती है। अतीत के पुनर्बलन और गैर पुनर्बलनों के आधार पर साधारण सीखने की संक्रियाओं के विकास से विभेदन संभव होता है। क्रैयस्की ने चूहों संबंधी अपने अध्ययन में हल के इस "समुच्चयी प्रभाव" की प्राक्कल्पना पर संदेह प्रकट किया है, जबकि उन्होंने दो प्रकार के प्रयासों का विभेदन किया है यथा–समन्वेषी और वे जो बिना निरंतरता के समाधान तक पहुंच जाते हैं। अन्त में संप्रत्यय निर्माण और इससें निहित विभेदन की आधारभूत प्रक्रिया पर प्रभाव डालने वाले बाह्य चरों पर बल देकर अनुसंधान किया जा रहा है।

मध्यस्थता प्रक्रियाएं

यहां पर मध्यस्थता प्रक्रियाओं का संदर्भ देना इसलिए आवश्यक है कि यह

प्रक्रिया चूहों, बालकों और वयस्कों द्वारा प्रदर्शित अमूर्त व्यवहार के कुछ पक्षों को प्राक्कल्पनाओं के माध्यम से स्पष्ट करती है। उद्दीपन-अनुक्रिया प्रतिरूप के संदर्भ के अंतर्गत एक शताब्दी के अनुसंधान से हमें उद्दीपन-अनुक्रिया संबंधों के निर्माण, अनुक्रिया सोपानिकी में विभिन्न अनुक्रियाओं के होने की संभावना तथा मध्यस्थता प्रक्रियाओं के रूप में अप्रेक्षणीय आंतरिक प्रक्रियाओं के वर्णन के विषय में पुनर्बलन और विलोप की भूमिका की जानकारी प्राप्त होती है। अप्रेक्षणीय आंतरिक प्रक्रियायें स्थिर रहती हैं क्योंकि जीव के लिए उनकी उपयोगिता होती है। सदा की तरह इनके संशोधन में प्रतिपुष्टि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस संदर्भ में जब बात संप्रत्ययों, कौशलों, समस्या समाधान, अभिवृत्तियों, विश्वासों और प्रयोजनों को ग्रहण करने की आती है तो जीव एक विवेकहीन की तरह व्यवहार करना बन्द कर देता है। प्रारंभ में तो यह (जीव) पर्यावरण पर निर्भर करता था परन्तु बाद में उचित व्यवस्था पर वह अपने आपको सुगठित करने की स्थिति में हो जाता है। अब वह देर अथवा सबेर से सामने आने वाली स्थितियों का सामना करने के लिए उचित व्यवहार करने के उद्देश्य से अपने ही उद्दीपन और संकेतों का जनन करने लगता है और तब वह बाह्य उद्दीपनों पर बहुत कम निर्भर करता है। यह बड़ी रुचिकर बात है कि वह शीघ्र परिणाम प्राप्त करने के लिए अपने व्यवहार को धीरे-धीरे कम अथवा संयत करना सीख लेता है और यदि परिस्थितिवश आवश्यकता हो तो वह किसी घटना के घटने का पूर्वानुमान करने और उसके घटने से काफी पहले ही उचित शोधक उपाय कर लेने की स्थिति में होता है। इस प्रकार मध्यस्थता प्रक्रियाएं अमूर्त संप्रत्यात्मक व्यवहार के अर्थ के क्षेत्र को विस्तृत कर देती है और उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धांतों को संज्ञानात्मक सिद्धांतों में परिवर्तित होने में सहायता करती है। इस अवस्था में विशेषज्ञ मैक्सवर्दीमर को उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धांत को मानव चिंतन का विस्तृत विवरण न प्रस्तुत करने वाला विवेकहीन सीखना घोषित नहीं करना चाहिए।

शरीरक्रिया विज्ञानी भी हमें यह सूचना देते हैं कि मानव जीव का अपना इतिहास, योग्यता, क्षमता और व्यक्तित्व होता है जिसमें संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं सम्मिलित होती हैं और जिनमें जीन्स और क्रोमोजोम महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अनुकूलन में मानव विषय प्रयोगकर्ता द्वारा दिए गए प्रायोगिक उद्दीपन और उनकी आकस्मिकता की बिना सोचे विचारे प्रतीक्षा नहीं करते हैं। दूसरी ओर वे प्रयोगकर्ता के पास अपने विचार, भावनाओं, अभिवृत्तियों, विश्वासों और प्रत्याशाओं को लेकर आते हैं जो लोकाहर्ट के अनुसार उनके व्यवहार में एक निर्णायक भूमिका निभाते हैं। यह जानना कठिन नहीं है कि मानव का आयु के साथ साथ मध्यस्थता व्यवहार बढ़ता जाना है जो कि उनकी संकल्पनाओं के निर्माण में तथा उनके अनुप्रयोग में सहायक होता है।

वास्तव में इसी कारण पशुवर्ग की संकल्पना के निर्माण के संदर्भ में बच्चों को क्रियाओं, तस्वीरों और मॉडलों के माध्यम से किसी अज्ञात पशु से परिचित करवाया जा सकता है। ऑसगुड के शब्द विन्यास में इसे 'चिन्ह का चिन्ह' कहते हैं। इसके विपरीत वी. क्लीनमन्टज के अनुसार संप्रत्यय एक आन्तरिक संज्ञानात्मक निर्मिति है जो बाह्य व्यवहार को उत्पन्न करती है। उस क्षण मानव द्वारा उपलब्ध अनेक संप्रत्ययों में से यह एक संप्रत्यय होता है। लेविन के अनुसार पुनर्बलन अव्यक्त (अंतर्निहित) प्रक्रिया पर प्रभाव डालता है जिसके फलस्वरूप बाह्य व्यवहार पर नियंत्रण होता है। जबकि बच्चे और वयस्क अपने आप को कई प्रकट क्रियाओं में लीन रखते हैं, बोर्न के अनुसार उनको (अप्रकट क्रियाओं को) बाह्य व्यवहार पर प्रभाव डालने की कोई आवश्यकता नहीं होती। बोर्न के अनुसार "मानव जो सीखता है वह नियम होते हैं और उसका (मानव का) व्यवहार वह नियम है जो किसी उद्यम के फलस्वरूप उत्पन्न होता है।" इ. बी. हन्ट के अनुसार व्यक्ति को तब एक जोर का झटका लगता है जब वह अपने पर्यावरण का एक आंतरिक माडल बनाने का उपक्रम करता है। संप्रत्ययों के सीखने के विश्लेषण में वह किसी प्रकार की मध्यस्थता को मान लेता है, परन्तु इसके साथ-साथ वह मध्यस्थता की प्राक्कल्पना को उसकी क्षीण पूर्वानुमानी क्षमता के कारण अपर्याप्त पाता है। इस प्रकार केवल सरल संप्रत्ययों के सीखने में ही उद्दीपन अनुक्रिया-मध्यस्थता माडल काम में आ सकते हैं। अधिक जटिल संप्रत्ययों के लिए यह पर्याप्त "अमूर्तीकरण और उद्दीपन आन्तरीकरण" प्रदान नहीं करते हैं। यहां पर हन्ट द्वारा एक मूल्यवान सुझाव दिया गया है जिसके अनुसार मनुष्य का जटिल सीखना "पशुओं द्वारा प्रदर्शित शुद्ध (अशाब्दिक) सीखने" से नितान्त भिन्न होता है। इसी कारण नवीन सिद्धांतों और अन्य आनुभविक नियमों के आधार पर मनुष्यों के लिए कल्पनात्मक अधिगम सिद्धांतों का विकास करना संभव हुआ है। यह सुझाव पियाजे की विचारधारा से मेल नहीं खाता।

द्वितीय संकेतन प्रणाली

इस लेख के पूर्वगामी भाग में उन मध्यस्थता प्रक्रियाओं का उल्लेख किया गया है जो मनुष्य के जटिल व्यवहार के अंशों का उल्लेख करती हैं : यथाअनुकूलन प्रतिमान के अंतर्गत प्रत्याशित व्यवहार, ज्ञान तथा प्रयोजन। इसी प्रकार के जटिल व्यवहारों का स्पष्टीकरण पावलोव द्वारा प्रतिपादित क्लासिकीय अनुकूलन से नहीं किया जा सका। इसलिए उन्होंने अपने व्यावसायिक जीवन के उत्तरार्ध में द्वितीय संकेतन प्रणाली का सिद्धांत प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने मनुष्य को भाषा प्रयोग करने वाला प्राणी माना है। इस योजना में उन्होंने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जो उचित व्यवहार करने के लिए उद्दीपन का कार्य करते हैं। इस अवस्था में बाह्य शब्दों से शारीरिक उद्दीपन की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि मनुष्य अपना उद्दीपन उत्पन्न करने की क्षमता

रखता है। एक तरीके से य उद्दीपन अमूर्त रूप से द्वितीय संकेतन प्रणाली का प्रतिनिधित्व करते हैं जो वास्तव में प्रथम संकेतन प्रणाली में पृथक उद्दीपनों की बहुलता के रूप में होते हैं। इस प्रकार के द्वितीय स्थान के नियम जिनका परिणाम अन्त में कोई संकल्पना तथा सभी प्रकार के अधिगम को समझना होता है को मान्यता देना सरल होता है। पी. ए. लूब्लिनस्काय के अनुसार किसी शब्द को संप्रत्यय की स्थिति तभी प्राप्त होती है जब वह द्वितीय संकेतन प्रणाली का अभिन्न अंग बन जाता है।

संप्रत्यय निर्माण को प्रभावित करने वाले कारक

इस क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों ने कई कारकों का उल्लेख किया है जो संप्रत्यय निर्माण पर प्रभाव डालते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं–बुद्धि, आयु, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, वर्ग, शब्दावली, संप्रत्यय का स्वरूप, संस्कृति, भाषा, सीखना, पर्यावरण की संरचना, अनुक्रिया उपलब्ध करने का तरीका, सीखने और उसमें सफलता प्राप्त करने की इच्छा, निष्पत्ति का स्तर तथा अवकाश की उपलब्धि और उसके अनुप्रयोग के अवसर। क्रियाओं के माध्यम से जब बच्चे अपने संप्रत्यय निर्मित कर लेते हैं तो उनका विकास वे फिर अध्यापक अथवा वयस्कों के प्रभाव के अंतर्गत अथवा पठन के द्वारा कर सकते हैं। अभिप्रेरण और दुश्चिन्ता का संप्रत्यय निर्माण के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, यहां तक कि निष्फल होने का संदेह भी दोनों प्रकार से कार्य कर सकता है, वर्गों के अन्दर या उसके बाहर। किसी संप्रत्यय के निर्माण में निष्फल होना या उसे प्राप्त कर लेना एक विस्तृत बुद्धि लब्धि के क्षेत्र में होता है। संप्रत्यय निर्माण के लिए अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण अथवा युक्तियां दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि कोई व्यक्ति उसको शब्दों के माध्यम से और कोई व्यवहार के माध्यम से विकसित करना पसंद करता है। वास्तविक-औपचारिक आधार पर संप्रत्ययात्मक कार्य का वर्गीकरण और उसके प्रस्तुतीकरण का माध्यम संप्रत्यय के विकास को प्रभावित करने में सहायक होता है। विषयेतर सूचना की वृद्धि तथा नकारात्मक सूचना संप्रत्यय निर्माण में कठिनाई उत्पन्न करते हैं। अन्त में संप्रत्ययों का किस प्रकार वैधीकरण किया गया है इसका ज्ञान भी अतार्किक संप्रत्ययों को दूर करने में सहायता होता है।

संप्रत्ययों का अध्ययन करने की विधियां

संप्रत्यय की जांच की कई विधियां और तकनीक निश्चित करना निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है। यथा–जांच का उद्देश्य, प्रतिपादित प्राक्कल्पना, आयु, सनदर्श का माप और स्वरूप, कार्य की जटिलता की विविधता तथा व्यक्ति के अतीत के वृत्त की उपस्थिति (अथवा अभाव) में परीक्षा देने में अधिक समय लगना आदि। सुकरात वाला तकनीक लागू किया जा सकता है जिसमें प्रारंभिक पूछताछ के बाद

प्रयोग विषय मूर्ख सा लगता है और सही उत्तर जानने के लिए प्रयास करता है। अपने प्रतिदिन के अध्यापन में अपने छात्रों में संप्रत्ययों की जांच करने के लिए अध्यापक उन अनौपचारिक विधियों का प्रयोग कर सकते हैं जिन पर वैज्ञानिक नियंत्रण नहीं होता। व्यक्ति-अध्ययन विधि में एक प्रयोग-विषय की जांच कुछ विशिष्ट समय के अंतराल के बाद की जाती है जहां प्रश्नों तथा उनके उत्तरों का रिकार्ड उनके अनौपचारिक प्रेक्षणों के साथ रखा जाता है तथा बाद में विचारों की सततता निश्चित करने के लिए उनका विश्लेषण किया जाता है। स्वतंत्र साहचर्य, उत्पादों (विचारों) का विश्लेषण और विभेदन, ये अन्य तीन परस्परव्यापी विधियां हैं जो इस क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं। आनुवंशिक रूप से बुद्धि के विकास का आलेखन करने के लिए पियाजे ने "मैथोडे क्लिनिक" नामक एक समीक्षात्मक खोज की विधि निकाली और सफलतापूर्वक उसका प्रयोग किया। वैयक्तिक मस्तिष्कों के संप्रत्ययों के मापन के लिए सी०ई० आसगुड और जी०ए०कैली ने दो सूक्ष्म तकनीकों का सुझाव दिया है जिनका नाम है शब्दार्थ विभेदक तथा "रिपर्टरी ग्रिड" तकनीक। प्रयोगात्मक सामग्री का भी व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है –जैसे प्रतीक, शब्द (संज्ञा, विशेषण और क्रिया), छात्रों द्वारा बनाई गई सामग्रियां (चित्र और लिखाई), तस्वीरें, कार्डों और ज्यामितीय आकारों वाले पृथक्करण परीक्षण, विचित्र शब्दों को चुनना, तथा उपकरण सामग्री रखने के लिए ड्रम, दृश्य श्रव्य साधन, जिनमें टेप रिकार्डर भी सम्मिलित हैं आदि। उचित परिस्थितियों के अंतर्गत चिन्तन की नम्यता, छात्र की भावनाओं और अध्यवसाय की और अधिक सूचना प्राप्त की जा सकती है। चाहें किसी एक विधि का प्रयोग किया जाए या अन्य विधियों के मेल का प्रयोग किया जाए निम्नलिखित समस्याएं सामने आती हैं—संप्रत्यय की स्वीकार्यता अथवा आग्रह, एक संप्रत्यय में पारंगत होने को निश्चित करने के लिए स्वीकार्य अनुक्रियाओं की संख्या, संप्रत्यय को समझने में प्रयोग–विषय को दिए गए अतिरिक्त परीक्षणों का लाभ, अभ्यास की मात्रा, समय की मात्रा, त्रुटियों और पुनरावृत्तियों के मेल की विधि तथा व्यवहार की विस्तृत सूची आदि। इन कठिनाइयों के बावजूद कुछ रुचिकर तथ्य भी सामने आए। संप्रत्यय को अच्छी तरह न समझने पर भी बच्चे और वयस्क दोनों ही संप्रत्यय का सही दृष्टांत देते हैं। कभी-कभी अधिक जांच करने पर ज्ञात होता है कि वे संप्रत्यय पर दक्षता प्राप्त करने का मिथ्या प्रभाव प्रदर्शित करते हैं और कभी वे गलत अनुक्रिया ही देते जाते हैं जबकि उन्हें बता दिया जाता है कि वे गलत हैं और प्रयोगकर्ता को नाराज भी कर देते हैं। जॉनहाल ने अपनी पुस्तक में दो रुचिकर प्रेक्षणों का उल्लेख किया है। प्रथम, बच्चे पूछे गए प्रश्न का सही उत्तर देने की बजाए अध्यापक को प्रसन्न करने के लिए उत्तर देते हैं। दूसरे, मंदबुद्धि बालक और प्रतिभाशाली बालक में कोई महत्वपूर्ण भेद नहीं है क्योंकि मंद बालक परीक्षा से पहले भूल जाता है और प्रतिभाशाली बालक परीक्षा के बाद भूल जाता है।

संप्रत्यय निर्माण पर किए गए अध्ययन

इस विषय का क्षेत्र जांच के लिए पर्याप्त बड़ा है। जब अध्ययन में बाह्य चरों को भी सम्मिलित कर लिया जाता है तो दो अज्ञात विषयों से संबंधित समीकरण से अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त होता है। कार्यात्मक और मात्रात्मक पक्ष से संबंधित संप्रत्यय के विकास पर बहुत कम शोध कार्य किया गया है। उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं पर कुछ उपलब्ध अध्ययन अन्तर्दर्शन विधियों, विश्लेषणात्मक प्रयोजन तथा गुणात्मक परिणामों से वंचित रहे। उदाहरण के लिए 'हल' ने 144 चीनी व्यक्ति-विषयों की सहायता से संप्रत्ययों के विकास पर जांच की। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि व्यक्तिगत संप्रत्यय निर्माण एक क्रमिक प्रक्रिया है जिसमें प्रयत्न और त्रुटि विधि एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। किसी परिस्थिति के सामान्य गुणों को संकेतित करने से संप्रत्यय निर्माण में सहायता मिलती है। संप्रत्यय निर्माण में किसी एक विधि के प्रयोग की बजाय औपचारिक तथा ठोस विधियों का मिला जुला प्रयोग अधिक प्रभावशाली होता है। नियमित और भ्रांति उत्पन्न करने वाले लक्षणों वाले संप्रत्ययों के विषय में विशेषज्ञ स्मोक का कथन है कि संप्रत्यय निर्माण में किसी न किसी प्रकार का समूहन होता है। प्राक्कल्पनाएं भी इसी में निर्मित और परीक्षित होती हैं। व्यक्ति-विषय यदि संप्रत्यय निर्मित कर लेते हैं तो उनको शब्दों में व्यक्त करने में उन्हें कठिनाई होती है। विभिन्न रंगों, आकार, माप और ऊंचाई के 22 ब्लाकों का प्रयोग कर हाफमैन तथा कसानिन ने विधिवत संप्रत्यय चिन्तन के दौरान तीन अंतरसंम्बंधित व्यवहारों का उल्लेख किया है यथा-निरपेक्ष अभिवृत्ति, अंतर्दृष्टि तथा समस्या पर समग्र रूप से विचार, जिसमें प्रयोग के नियम की अपेक्षा कार्य का स्वरूप विषय-व्यक्ति के व्यवहार को निश्चित करता है। हाल में, पियाजे के अनुसार जे०एस० ब्रूनर और उसके सहकर्मियों ने संप्रत्यय निर्माण का एक बड़ा क्षेत्र फिर से अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया है। विभिन्न रंगों, आकारों और पाटवाले कार्डों का प्रयोग करके तथा प्रत्येक प्रयोग विषय को संयोजी संकल्पना का संप्रत्यय देकर उन्होंने चार स्पष्ट युक्तियां निकाली जिससे व्यक्ति प्रस्तुत किए गए संप्रत्यय को निर्मित कर सकता है, यथा---सहकालिक जांच, क्रमिक जांच, रूढ़ीबद्ध फोकसन तथा फोकस का अनुमान लगाना।

कारक उपागमों का प्रयोग करते हुए रुथबर्ट ने शिशुओं में संप्रत्यय निर्माण की जांच की। बर्ट की समूह कारक विधि ने एक सामान्य कारक तथा भौतिक घटना, स्थान और परिणाम के साथ तर्क करने की योग्यता से संबंधित छह: पर्याप्त रूप से स्वतंत्र कारकों का संकेत दिया है। उनकी जांच पियाजे के सिद्धांत का समर्थन करती है। परन्तु उनके अनुसार पियाजे के अवस्था संप्रत्यय को व्यक्तिगत अनुभव और सांस्कृतिक प्रभाव सुधारते हैं। जे०एन० जोशी ने यद्यपि पियाजे के अवस्था संप्रत्यय का विरोध नहीं किया परन्तु उन्होंने लड़कों के संबंध में बीजगणितीय संप्रत्ययों को

समझने में लिंग भेद सहायक पाया। उन्होंने यह भी दिखा दिया कि संप्रत्यय परीक्षण में उच्च प्राप्तांकों का संबंध उच्च बुद्धिमत्ता से है। श्री एन. वैद्य ने व्यक्ति-अध्ययन और निम्नलिखित संप्रत्ययों—सतत भेद, अनुपात, बीजगणितीय संकेतों का सामान्यीकरण, समस्यात्मक स्थितियों का निर्माण, प्राक्कल्पनाओं की अंतदृष्टि, रचना और परीक्षण/किशोरों के कुछ समूहों में बुद्धि और सामाजिक-आर्थिक स्थिति पर छात्रों की तुलना तथा समस्या-समाधान उपागम की जांच करके यह निष्कर्ष निकाला कि जटिल समस्या समाधान प्रक्रियाएं साधारण चिन्तन प्रक्रियाओं से उत्पन्न होती हैं। दूसरे किसी संप्रत्यय पर दक्षता अथवा असफलता विस्तृत बुद्धि-लब्धि मापन में भिन्नता के साथ केवल व्यक्तिगत श्रेणी पर ही प्रदर्शित नहीं होती है बल्कि श्रेणी के बाहर भी प्रदर्शित होती है। उनके अनुसंधान पियाजे के सिद्धांतों का समर्थन करते हैं परन्तु किशोरावस्था के दौरान मूर्त अवस्था के कुछ बौद्धिक व्यवहार प्रदर्शित होते हैं। उदाहरण के लिए अनुसंधान की सभी संयोग और संभाव्यताएं समाप्त नहीं होती हैं। समस्या की प्रकृति और चिंतन में विपरीतता वाली समस्याओं का समाधान करने की बजाए इन पर विषयवस्तु का बुरा प्रभाव पड़ता है। वे समस्या में कई अन्य बाह्य स्थितियों का समावेश करके समस्या को बढ़ाने में तनिक भी झिझकते नहीं हैं। इसके अतिरिक्त 14 वर्ष की अवस्था से कम अवस्था वाले किशोरों में बीजगणितीय प्रतीकों के प्रति अनुपात और सामान्यीकरण की योजनाओं का अभाव होता है जबकि वे प्राक्कल्पना बनाने की स्थिति में होते हैं और उनमें से 15 वर्ष से कम के अधिकांश किशोर नियंत्रित प्रयोग के माध्यम से इनकी (प्राक्कल्पनाओं की) परीक्षा करने में असफल होते हैं। पियाजे के सिद्धांत के विपरीत उनके मस्तिष्क अभी तक पूर्ण रूप से प्रायोगिक नहीं हो पाते हैं।

हम एक और अध्ययन समूह पर विचार करें। मेयर ने पहले यह दर्शाया था कि केवल अपेक्षित पृष्ठभूमि अनुभव होने से समस्या समाधान में सफलता प्राप्त नहीं होती है। इसलिए उन्होंने दिशा की संकल्पना का निर्माण किया जिसका के० डन्कर ने डट कर विरोध किया था क्योंकि यह संकल्पना मेयर द्वारा प्रतिपादित समस्या के पुनर्निर्माण अथवा पुनर्कथन के अन्तर्गत ही समाविष्ट है। एक और रुचिकर अध्ययन में जैकली ने इस कथन की जांच करने का प्रयास किया कि ज्ञान स्वतन्त्र चिन्तन का प्रारम्भ होता है। उन्होंने न केवल यह पाया कि चिन्तन की प्रक्रिया में ज्ञान का पुनर्गठन होता है बल्कि परिभाषाओं और तथ्यों की रटन स्मृति पर बल दिए जाने से समाधान में शायद ही सहायता प्राप्त होती है। एक और अध्ययन में मीलिंग ने पाया कि कोई छात्र किसी समस्या का औपचारिक तर्क 13 वर्ष की मानसिक अवस्था से पहले नहीं दे सकता। विज्ञान की सैद्धांतिक और अमूर्त

समस्याओं के लिए उन्हें 16 वर्ष की मानसिक अवस्था अवश्य प्राप्त करनी होती है। बर्टस का सिद्धांत पियाजे के सिद्धांत के काफी निकट है जिसमें वह यह कहते हैं कि बालक जब स्वतन्त्र और उचित अनुभव प्राप्त कर लेता है तो अर्थपूर्ण संकल्पनाएं स्वतः उत्पन्न होती है। इस शताब्दी के प्रारम्भ से पहले ही जी० स्टेनले हॉल ने भी इसी विषय पर बच्चों के मस्तिष्क का अध्ययन करके चर्चा की थी। उनका सुझाव था कि अध्यापकों को बालकों के साथ साधारण वस्तुओं के विषय में बात करनी चाहिए। पलेशनर भी इसी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। अनुसंधानकर्ता एन० ई० वीवर और ई० एन० मैंडन भी समस्या समाधान के लिए दो शर्तों को आवश्यक समझते हैं—यथा-संबद्ध ज्ञान का होना और अनुसंधान संक्रियाओं पर दक्षता। वे एक रुचिकर अनुसंधान का उल्लेख करते हैं जिसमें 80 प्रतिशत प्रयोगपात्रों का विचार था कि जिन पिण्डों को वे स्केल द्वारा माप नहीं सकते थे उनमें भार नहीं होता। गोरियाचकिन का भी यही विचार है क्योंकि वे कहते हैं कि बच्चों को अपने जीवन अनुभवों से ही संप्रत्यय का निर्माण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में स्टैंडलर का कथन अधिक विशिष्टता लिए है जब कि वह बचपन में ही संप्रत्यय ग्रहण करने में संरचित अनुभवों और माडलों की भूमिका पर बल देते हैं, क्योंकि उनके अनुसार ये संप्रत्यय तंत्रिका संम्बंन्धी कोष को बनाने में सहायक होते हैं। प्राथमिक स्कूल के बच्चों में वैज्ञानिक और गणितीय संप्रत्ययों के विकास सम्बंन्धी एक और रुचिकर अध्ययन में पाया गया कि ग्रामीण बालकों की अपेक्षा शहर के बालक अधिक शीघ्रता से संप्रत्यय ग्रहण करते हैं। ग्रामीण और शहरी दोनों समूहों के लिए संख्या और भार के संप्रत्यय बनाना सरल था और दोनों समूहों के लिए शक्ति का संप्रत्यय निर्माण करना कठिन था। सुश्री यू० के० बेवली ने अपने शोध अध्ययन में विभिन्न पर्यावरण वाले भारतीय बच्चों में गति के संप्रत्यय के विकास के स्तर की जांच करने का प्रयास किया और यह भी जानने का प्रयास किया कि विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रम के द्वारा इस संप्रत्यय को शीघ्रता से ग्रहण किया जा सकता है अथवा नहीं। इस कार्य के लिए दो प्रकार के निर्देश स्पष्ट पृथक क्षेत्रों से लिए गए। पहले निदर्श में ग्रामीण, शहरी लाभ वंचित तथा शहरी समूहों के 725 बच्चे 6+, 9+ तथा 12+ आयु वर्ग के थे और दूसरे में 268 बच्चे 6+, 9+ आयु वर्ग के थे। उन्होंने यह पाया कि जेनिवा के बच्चों में इस संप्रत्यय का विकास क्रम पियाजे द्वारा की गई खोज के समान ही है। तीनों समूहों में संप्रत्ययों के विकास और ग्रहण करने की गति में ही अन्तर पाया गया। रुचिकर बात यह है कि इस संप्रत्यय के निर्माण के सम्बन्ध में ग्रामीण बालकों और शहरी लाभ प्राप्त बालकों के समूहों के बीच 2 से 3 वर्ष की देरी अवश्य पाई गई। असंरक्षणकारी और संरक्षणकारी आयामों के संदर्भ में इस संप्रत्यय के शीघ्रता से निर्माण होने में प्रशिक्षण का प्रभाव नगण्य होता है। इसी लेखिका के एक अप्रकाशित अध्ययन में संख्या, लम्बाई, मात्रा, क्षेत्र, परिमाण को

संकल्पना पर, $5\frac{1}{2}$ से 6, 6 से 7 और $9\frac{1}{2}$ से 11 वर्षों के 664 बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर घर, पाठशाला और कुछ चयन किए हुए वैयक्तिक चरों के प्रभावों का बुद्धि, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, भाषा विकास और नैतिक मूल्यों से काफी उच्च मात्रा में सहसंबंध होता है। उन्होंने बाद में यह निष्कर्ष निकाला कि संरक्षण परीक्षणों में सफलता प्राप्त करने के लिए ही नहीं बल्कि "संज्ञानात्मक विकास के पूर्व सूचक" के रूप में बुद्धि की तुलना में भाषा न केवल एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है बल्कि एक मुख्य स्थिति भी प्राप्त करती है। ज्ञानमीमांसीय अनुसंधान में ज्ञान के कई क्षेत्रों में परिकल्पना करने और अपने विशिष्ट तरीके से उनमें अंतःसंबंध स्थापित करने का काम पियाजे ने सम्पन्न किया। उनके प्रारम्भ के अनुसंधान में भौतिक कारणता के संप्रत्यय के विषय में जो कार्य किया गया उसका स्पष्टीकरण उन्होंने—क्योंकि, इसलिए, क्यों, अयुक्तता, सूर्य, चन्द्रमा, तारा, नदी, बादल तथा अन्ड समस्याओं, प्रयोगों और यहां तक कि मशीनों आदि जैसी संकल्पनाओं की जांच करके किया। उन्होंने बाद में यह कहा कि कारणत्व व्याख्या के प्रति अभिमुखता बच्चों के सम्पूर्ण संज्ञानात्मक जीवन में विशिष्ट होती है। उदाहरण के लिए बादल की गति के सम्बन्ध में सही ज्ञान बच्चों को 9 वर्ष की अवस्था में प्राप्त होता है। इससे पहले की आयु में वे बादल के चलने का सम्बन्ध अपने से, मनुष्य और और भगवान से तथा उनके स्वयं के चलने से, नैतिक रूप से और अन्त में बादल से ही निकली हवा के धक्के से जोड़ते हैं। उन्होंने बच्चों की विचारधारा में 17 प्रकार की कारणत्व व्याख्या की खोज की। इस संदर्भ में बच्चों और वयस्कों के कुछ मामलों में कारणत्व विचार के सम्बन्ध में निम्नलिखित अनुसंधानकर्ताओं ने जांच की—यथा—बैन्कस, डैनिस, ड्यश, हॉग, आईजैक, किश, लौग, नवारा और बैद्य। पियाजे के अवस्था सम्बन्धी संप्रत्यय का ये सभी अध्ययन समर्थन नहीं करते और उनके 17 प्रकार की व्याख्याओं का मूल्य बहुत कम माना गया है। प्राकृतिक घटनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने प्रश्नों, समस्याओं और साधारण प्रयोगों के विषय में यह प्रदर्शित किया कि एक ही बालक कई प्रकार के व्यवहार प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए ऑक्स ने यह पाया कि किसी भी मानसिक योग्यता अथवा वर्ग वाले सब आयु-समूह सभी प्रकार के उत्तर देते हैं। कम बुद्धि-लब्धि वाले बच्चों के विचारों के विकास के सम्बन्ध में बेन्कस ने अध्ययन किया और पाया कि किसी बात का निष्कर्ष निकालने की योग्यता पर बुद्धि की बजाए बच्चे की आयु और उसे विज्ञान पढ़ाने का अधिक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने यह भी पाया कि उच्च बुद्धि लब्धि वाले व्यक्ति उच्च कोटियों की अधिक संख्या में व्याख्या कर पाए थे। एक और रुचिकर अध्ययन में श्री नवारा ने छोटी आयु के अपने बेटे के संप्रत्ययों के विकास की जांच की। उसके प्रमाण प्रत्याशाओं के क्रमिक विकास तथा उनमें क्रमिक विभेदन को इंगित करते

हैं जिन पर आधारित होकर उसने विचारों का परीक्षण, अनुभवों का विश्लेषण किया और अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करने की अभिवृत्ति को बनाए रखा। विचित्र घटनाओं के सम्बन्ध में भी हॉग ने प्रयोग किया और समान निष्कर्ष प्राप्त किए। हिन्दी तथा तेलगु भाषी बच्चों में स्वप्न, विचार, ईश्वर, सौंदर्य, जन्म, मरण आदि संप्रत्ययों के विकास के सम्बन्ध में भी श्यामला ने जांच की। उन्होंने पाया कि जीवन और परिवार सम्बन्धों के चुने हुए संप्रत्ययों को छोड़कर अन्य संप्रत्ययों और आयु के बीच कोई सहसंबंध नहीं है। फिर भी मानसिक आयु, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, शिक्षा सुविधाएं तथा अन्य पर्यावरणीय प्रभावों में भेद संप्रत्ययों के विकास पर अवश्य प्रभाव डालते हैं। एक और अध्ययन में डी० जोशी ने पाया कि समाज, सौंदर्य तथा समय सम्बन्धी संप्रत्ययों में लड़कियां लड़कों से श्रेष्ठ होती हैं तथा अन्तरिक्ष, भार तथा स्थान सम्बन्धी संप्रत्ययों में लड़कियां उनसे पीछे होती हैं।

उपयोक्त अध्ययनों का क्या महत्व है ? संप्रत्यय निर्माण पर प्रभाव डालने वाले तीन मूलभूत चरों को ये व्यक्त करते हैं : यथा—सीखने की विशिष्टता, कार्य की विशिष्टता और पर्यावरणी लक्षण। प्रत्येक चर की भूमिका को अभी कम ही समझा गया है क्योंकि प्रत्येक चर का व्यक्ति के अतीत के लम्बे इतिहास के संदर्भ में उसकी व्यापक विभिन्नता का अभी अध्ययन करना शेष है। इसके अतिरिक्त संप्रत्ययों के विकास में लिंग भेद का स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। कारणत्व तर्क में पियाजे के अवस्था सम्बन्धी संप्रत्यय का अनेक अध्ययनों में विरोध किया गया है। परन्तु क्या पियाजे द्वारा प्राक्कल्पित संप्रत्यय निर्माण का वही क्रम सभी छात्रों द्वारा बनाए रखा जाता है ? इस दिशा में ठोस आधार सामग्री अभी प्राप्त होनी शेष है। जब तक कि इस समस्यामूलक क्षेत्र में स्पष्टीकरण नहीं होता तब तक वयस्कों का हस्तक्षेप लम्बे समय के लिए अबोधगम्य ही बना रहेगा।

जेनिवा विचारधारा

इस विचारधारा के मुख्य समर्थक जीन पियाजे प्लेटो द्वारा प्रस्तुत प्राचीन समस्या—"मनुष्य कब और कैसे अपने ज्ञान के विषय में निश्चित हो सकता है जबकि बार-बार जिसे वह ज्ञान समझता रहा है उसकी त्रुटि सिद्ध होती रही है," को मनोवैज्ञानिक रूप से सुलझाने में सफल हुए हैं। इसमें उन्होंने सुप्रतिष्ठित वैज्ञानिक प्रक्रिया को अपने 'मैथोड क्लिनीक' से प्रतिस्थापित ही नहीं किया बल्कि बचपन से किशोरावस्था तक विकसित होने वाली बौद्धिक प्रक्रियाओं को समझने के लिए अपने ही प्रतीकात्मक तर्क बनाए। इस प्रकार उन्होंने दिखाया कि किस प्रकार एक बालक जिसे सर्वव्यापक बालक कहा जा सकता है अपने ही ज्ञान का भण्डार बनाता रहता है। पिछले 40 वर्षों से पियाजे और उनके सहयोगियों ने निम्नलिखित क्षेत्रों में प्रचुर मात्रा में सहयोग किया है : कार्यकारणभाव, जननिक ज्ञानमीमांसा, ज्यामिती, भाषा

तर्कशास्त्र, नैतिक निर्णय, गति, संख्या, वस्तु, प्रत्यक्षण, मात्रा, स्थान, गति और समय आदि। उनमें सम्पूर्ण शोध कार्य में तीन निम्नलिखित मूल अभ्यपगमों को पहचाना जा सकता है—प्रथम, यह कि प्रत्येक मनुष्य में एक विशिष्ट आन्तरिक संगठन होता है। दूसरे, इससे मनुष्य को कार्य करने का एक अपरिवर्ती और विशिष्ट साधन प्राप्त होता है। तीसरे, मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच सक्रिय अन्योन्य क्रिया होती है जिससे बौद्धिक संरचनाएं उत्पन्न होती हैं। बुद्धि को मनुष्य और उसके पर्यावरण के बीच संक्रियाओं के संदर्भ में देखा जाता है। धीरे-धीरे कुछ समय के बाद व्यनुकूलन (आत्मसात्करण और समंजन) के माध्यम से प्रतिवर्ती क्रियाएं आभ्यांतरिक हो जाती है। जैसा कि प्रारम्भ में एल. एस. वायगोटस्की और बाद में जे०एस० ब्रूनर ने प्रतिपादित किया था, उसी प्रकार पियाजे ने भी बौद्धिक विकास में अवस्था की संकल्पना को प्रतिपादित किया। ये अवस्थायें निम्नलिखित हैं—संवेदी गतिकाल, पूर्व संक्रियात्मक काल, वास्तविक संक्रियात्मक काल तथा औपचारिक संक्रियात्मक काल।

(1) **संवेदी गति काल** (जन्म से 2 वर्ष): यह बौद्धिक विकास की पहली अवस्था है। इस काल के पूर्वार्द्ध में बच्चे की क्रिया उसके अपने ही शरीर पर केंद्रित होती है। उत्तरार्द्ध में बच्चा व्यावहारिक बुद्धि का विकास करता है जो उसको बाह्य जगत की वस्तुओं से व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करती है। अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए बच्चा अपने माता पिता पर निर्भर रहता है और वह केवल प्रकट क्रियाएं ही करता है, किसी क्रिया के निष्पादन में वह अपने आपको शारीरिक रूप से पूरी तरह लगाता है। अपनी क्रियाओं के विषय में बिल्कुल नहीं सोचता है। आवाज, स्पर्श और अन्य शारीरिक उद्दीपन की ओर आकृष्ट होता है और जब वह घुटनों चलता है तो वह किसी न किसी वस्तु की खोज में होता है। केवल तस्वीरों से वह आकृष्ट नहीं होता, वरन् यदि उसे पेंसिल भी दे दी जाए तो उसे पकड़ने के लिए वह अपना हाथ बढ़ाता है।

(2) **पूर्व संक्रियात्मक काल** (2 से 7 वर्ष): पियाजे के अनुसार यह बुद्धि प्रतिनिधित्वात्मक काल है क्योंकि बच्चा भाषा और मानसिक बिंबावली द्वारा वास्तविकता का प्रतिनिधित्व कर सकता है। बच्चा वस्तुओं को अपने ही ज्ञान के संदर्भ में देखता है और एक ही विचार को एक ही समय में सोच सकता है। भाषा का सीमित रूप में प्रयोग कर सकता है। अपने से ही बातें करता है और धीरे-धीरे कम स्वकेंद्रित होता जाता है। उसकी सामाजिक रुचियां विस्तृत होती जाती हैं। उसके चिन्तन का नियन्त्रण

परिस्थितियों के प्रत्यक्षण से होता है। इस कारण इस काल में उसकी तर्कशक्ति प्रभावी होती है।

(3) **वास्तविक संक्रियात्मक काल** (7 से 11 वर्ष) : इस काल में बच्चा स्तिष्क की उन प्रक्रियाओं में व्यस्त रहता है जिन्हें पियाजे 'संक्रियाएं' कहते हैं और जो अंतरंगी और विषयगी होती है। बच्चे का चिन्तन वास्तविक स्थितियों से संबंधित हो जाता है, वह समस्याओं का विधिवत् रूप से समाधान करना चाहता है परन्तु इसके लिए उसे गणितीय प्रमाण नहीं मिलते। वह प्राक्कल्पनात्मक आधार-सामग्री को स्वीकार नहीं करता। उसके चिन्तन पर वास्तविकता का प्रभुत्व हो जाता है और सम्भावनाएं गौण हैं।

(4) **औपचारिक संक्रियात्मक काल** (11 से 15 वर्ष) : इस अवस्था में अमूर्त चिन्तन के लिए किशोर वयस्कों जसी क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। उसका चिन्तन अब वास्तविक स्थितियों से संबंधित नहीं होता है। वह सभी प्रकार के तथ्यों, विश्वासों, प्राक्कल्पनाओं और संभाव्यताओं की कल्पना करता है और उन पर सोच-विचार करता है। तर्क करने की योग्यता वह प्राक्कपल्नाओं के माध्यम से विकसित कर लेता है। वह बुद्धि में इतना आगे बढ़ जाता है कि अपने प्रेक्षणों के लिए आनुभविक और गणितीय प्रमाण ढूंढ लेता है।

विभिन्न घरेलू परिस्थितियों और स्कूल के भिन्न-भिन्न पर्यावरणों के कारण हो सकता है उपरोक्त आयु परिसरों में बच्चे इन अवस्थाओं को प्रदर्शित न करें। परन्तु पियाजे का दृढ़ कथन है कि सभी बच्चों के लिए बुद्धि के विकास में इन अवस्थाओं का यही क्रम रहता है जबकि इसकी पुष्टि के लिए अभी भी एक बड़ी प्राक्कल्पना की आवश्यकता है। इसके दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।

(1) **संरक्षण निर्णय**--बच्चे और कभी-कभी वयस्क यह पुराना प्रश्न पूछते हैं कि 1 किलोग्राम लोहा भारी है अथवा 1 किलोग्राम रुई। 1 किलोग्राम लोहा भारी होता है क्योंकि वह रूई से अधिक भारी होता है अथवा एक किलोग्राम रुई लोहे से भारी होती है क्योंकि वह लोहे से अधिक जगह घेरती है। इस कथन का कारण यह है कि उनके चिन्तन का नियन्त्रण स्थितियों के प्रत्यक्षण से होता है। वह एक समस्या के एक ही पक्ष पर एक समय में विचार कर सकते हैं। उनका चिन्तन

विशेष से विशेष की ओर होता है। 2 से 7 वर्ष के बच्चों के बीच निम्नलिखित दो क्रियाएं अलग-अलग बच्चे के साथ कीजिए :

रेखा चित्र 1

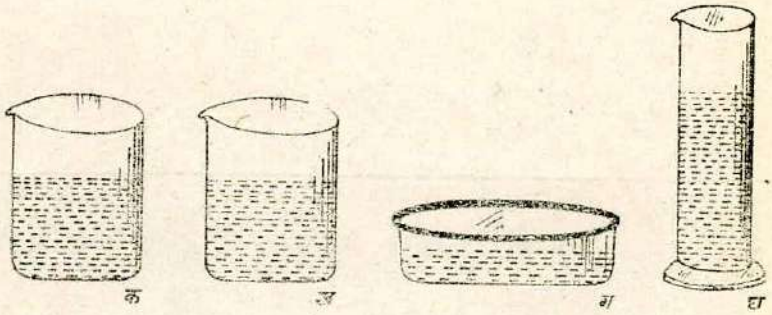

(1) एक बालक से क और ख बीकरों में एक ही मात्रा का पानी डालने के लिए कहिए। बीकरों में पानी एक-सा होने की निश्चितता बालक पर ही छोड़ दीजिए। अब क और ख बीकर के पानी को ग और पतले घ पात्र में डालिए और उसके बाद उससे निम्नलिखित प्रश्न पूछिए : कौन से पात्र में पानी है ? ग अथवा घ पात्र में ? उसके दिए गए उत्तर का कारण पूछिए। पूर्व संक्रियात्मक अवस्था में वह कहता है कि पतले वाले पात्र में पानी अधिक है क्योंकि उसका स्तर ऊंचा है (अथवा ग पात्र में क्योंकि यह चपटा है)। अब उस बालक से कहिए कि वह उसी पानी को दोबारा उन्हीं पात्र क और ख में डाल दे। अब भी क्या वह पानी की समान मात्रा को स्वीकार करता है ? अब क्या वही प्रयोग दोबारा करने पर वह उस तथ्य को अस्वीकार करता है ? एक ही समय में वह दो विरोधी निर्णय क्यों देता है ? इसका कारण पियाजे के अनुसार यह है कि बालक ने उस समय तक संरक्षण की योजना पर निपुणता प्राप्त नहीं की है।

(2) दो पैंसिलें अथवा लकड़ियां लीजिए और उन्हें एक के ऊपर एक किनारे मिलाकर रखिए, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है :

रेखाचित्र नं० 2

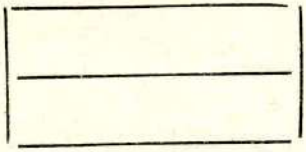

दो लकड़ियां जिनके किनारे एक के ऊपर एक मिला कर रखे गये हैं

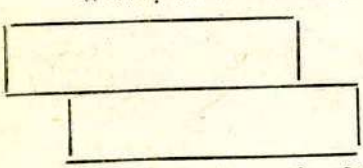

ऊपर वाली बांयी ओर खिसका दी गयी है

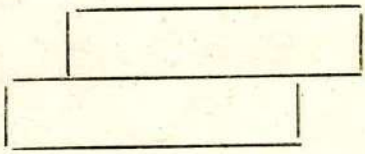

दायीं ओर भी ध्यान दें

प्रयोग से पहले बालक को निश्चित हो जाना चाहिए कि दोनों लकड़ियाँ एक ही लम्बाई की हैं। उसमें से एक को लकड़ी एक ओर खिसका दीजिए अब बालक से पूछिए कि कौन सी लकड़ी लंबी है और क्यों है ? पियाजे ने ऐसे कई प्रयोग किये हैं जो भौतिक मात्राओं के संरक्षण से संबंध रखते हैं यथा--ठोस, तरल, क्षेत्र, भार और आयतन आदि। इन अध्ययनों से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि बच्चे चिंतन में विपर्ययता की संकल्पना को इस अवस्था में ग्रहण नहीं कर पाते। उसे वह अगली अवस्था में ही ग्रहण करते हैं, अर्थात्--मानसिक विकास की वास्तविक अवस्था में। यहां पर भी बच्चे अपने तर्क के समर्थन में कई क्रियाएं कर सकते है। अपने विचारों के लिए उन्हें अनेक वास्तविक समर्थकों की आवश्यकता होती है।

(2) चरों (कारक) को छोड़ना--एक ही समय में छात्रों को निम्नलिखित प्रयोगात्मक व्यवस्था दिखाइए और फिर निम्नलिखित दो प्रश्नों को बारी-बारी से पूछिए :

(i) किन कारकों पर "ख" बीकर पर पानी का इकट्ठा होना निर्भर करता है ?

(ii) निम्नलिखित कारकों के प्रभावों का तुम किस प्रकार अध्ययन कर सकते हो--ग्लास की नली की लम्बाई उसके छिद्र का माप तथा पानी का स्तर ।

रेखा चित्र न. 3

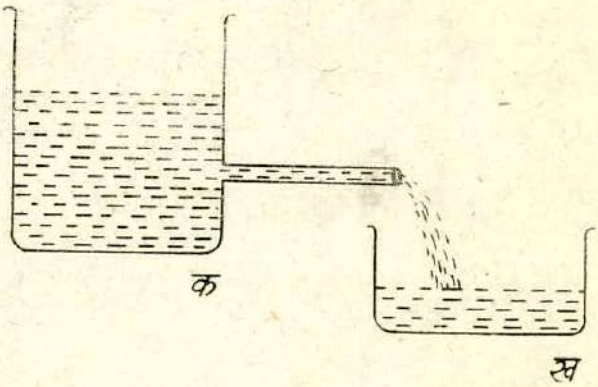

7 वर्ष से छोटे बालक नियंत्रित प्रयोग का व्यवस्थापन नहीं कर पाते हैं। परंतु एकदम बाद की उच्च अवस्था में वे प्रयोग की व्यवस्था का वर्णन कर लेते है और सामान्यत: यह बता देते है कि पानी नली से गुजरता है। उनको निम्नलिखित टिप्पणी देते हुए पाया गया है :

(i) इस उपकरण का प्रयोग करना अनिवार्य नहीं है। आप पानी एकत्र करने जा रहे है तो फिर साइफन का प्रयोग क्यों नहीं करते ?

मैं देख सकता हूं कि पानी ऊंची सतह से नीची सतह की ओर बहता है।

(ii) एक समकोणीय नली का प्रयोग कीजिए।

(iii) क्या तुम पानी के बबूले देख सकते हो ?

(iv) इसका ध्यान रहे कि नली को टेढ़ा न रखा जाए।

(v) तुम उसमें छिद्र देख सकते हो ? अन्यथा पानी कैसे बह सकता है ? अब देखो कि साफ पानी निकल रहा है। पानी का होना इस प्रयोग में अत्यावश्यक है।

(vi) इस बीकर का भार कितना है ?

(vii) कांच की नली की लम्बाई कितनी है ?

(viii) इन छात्रों में अन्य निम्नलिखित व्यवहारों को देखा गया :

(1) वे प्रश्न लिखने में कुछ अंश को या पूरे प्रश्न को पुनः प्रस्तुत करते हैं। वे मुंह से दोबारा बोलते हैं तथा पानी को इकट्ठा करने का प्रयास करते हैं या उससे खेलते हैं।

(2) वे निम्नलिखित प्रकार की सूचना देते हैं यथा यह बीकर है या कांच की नली है। बीकर गोल है। कांच की नली 15 इंच लम्बी है। वे ऐसा सूत्र या विधि बताते है जिसकी उस समस्या में आवश्यकता नहीं होती।

(3) वे प्रयोगात्मक सामग्रियों के साथ खेलते हैं।

वे ऐसी अनुक्रियाएं प्रदर्शित करते हैं जिनकी वहां कोई आवश्यकता नहीं होती। वे कुछ विशिष्ट वस्तुओं को पहचानते हैं, (जैसे हवा के बबूले)। किसी समस्या के समाधान का तरीका बताते हैं, जिस सूचना की आवश्यकता नहीं होती वह वे देते हैं या उसकी मांग करते हैं, तथा पूछे गए प्रश्न के अंशों को पुनः प्रस्तुत करते हैं। इनको स्वेच्छाचारी त्रुटियां कहते हैं। यदि वे सामग्री के साथ पर्याप्त रूप से अन्योन्यक्रिया करें तो इसी से उन्हें शिक्षित किया जा सकता है। पियाजे के अनुसार उनमें अध्ययन के अंतर्गत समस्या से संबंधित आधारभूत संकल्पनाएं विकसित नहीं हो पातीं इसी कारण उनका व्यवहार इस प्रकार का होता है।

(15 वर्ष से नीचे) आठवीं कक्षा के छात्र द्वारा दी गई निम्नलिखित अनुक्रियाओं पर विचार कीजिए । प्रयोगकर्ता द्वारा दी गई टिप्पणियां विषयवस्तु से थोड़ा अलग लिखी गयी हैं अथवा ब्रेकिट में लिखी गयी है ।

प्रयोगात्मक व्यवस्था पर समग्र रूप से ध्यान देने के पश्चात् छात्र कहता है कि पानी बड़े बीकर से निकल कर छोटे बीकर में आ रहा है ।

तुम्हें ज्ञात है कि पानी सदा ऊंची सतह से नीची सतह की ओर बहता है ।

कुछ समय तक झिझकता है और फिर कहता है : "यदि कोई लंबाई नहीं है तो पानी एकत्र नहीं हो सकता ।"

उसके बाद वह हंसता है क्योंकि समस्या समाप्त हो चुकी होती है । मेरा अर्थ है कि लंबाई परिवर्तित हो सकती है ।

नहीं, मेरा अर्थ छिद्र से है । वह छोटा भी हो सकता है, बीच का और बड़ा भी हो सकता है ।

यदि छिद्र बड़ा है, तो बड़े बीकर के जल का स्तर जल्दी नीचे गिरता है । यदि आप चाहते हैं तो इसे दिखाया जा सकता है (नहीं तुम्हें इसकी आवश्यकता नहीं है) ।

समस्या अब यह है कि आपको यह कैसे दिखाया जाए ।

मैं निम्नलिखित प्रकार से करूंगा :—दो नलियां लीजिए (हां तुम सही हो)

यदि मेरे पास कांच की बड़ी नली है और मैं उसे वहां लगा देता हूं तो पानी बाहर निकलेगा (हां) ।

यदि मैं कांच की छोटी नली लगाता हूं तो पानी कम शीघ्रता से आएगा । पानी निकलने में बहुत कम समय लगेगा ।

(अब वह सोचता है और कहता है कि क्या पानी एकत्र होने की मात्रा में कांच की नली की लंबाई का महत्वपूर्ण हाथ है ?)

इसके लिए मुझे कुछ समय दीजिए । फिर पूछता है : यह क्या है (यह एक घड़ी है—मैंने आपको पहले भी बताया है)

मैं मूर्ख हूं क्योंकि पानी को तो कांच की दोनों नलियों से बाहर निकलना होता है।

अब मैं सोचता हूं कि मैं इस प्रकार की समस्या का समाधान कर सकता हूं।

यदि कांच की लम्बी नली पानी इकट्ठा करने वाले बीकर को अधिक पानी पहुंचाती है तो मैं कह सकता हूं लम्बाई एक महत्वपूर्ण कारक है। यदि पानी की मात्रा समान है तो लम्बाई से कोई अंतर नहीं पड़ता।

इसी प्रकार वह छिद्र के कारक को अलग करने के लिए एक प्रयोग प्रस्तुत करता है। अब उसका वाक् चातुर्य प्रायः समाप्त हो जाता है। यदि मैं छिद्र का माप बड़ा करता हूं तो पानी का स्तर फौरन नीचे उतर जाता है। और यदि मैं कांच की दूसरी नली लता हूं (छोटे छेद वाली) पानी को बहने में समय लगता है और पानी का स्तर धीरे नीचे जाता है। अन्य प्रयोगों में भी पानी का स्तर नीचे गिरता है (छेद और लंबाई के कारकों को अलग करने पर) वह सोचता है और अपनी पैंसिल से खेलता है? मैं सोचता हूं कि इस कारक का कोई महत्व नहीं है क्योंकि पानी तो हर स्थिति में नीचे गिरेगा ही। मैं सोचता हूं कि प्रथम दो कारक महत्वपूर्ण हैं।

उपरोक्त रिकार्ड से क्या प्रदर्शित होता है? इससे यह ज्ञात होता है कि जैसे जैसे छात्र समस्या का समाधान करता है वैसे वैसे वह स्वेच्छाचारी त्रुटियां करता है। वह किसी भी रुचिकर वस्तु को देखता है जो उसे भ्रमित करती है (पानी का स्तर गिरना)। अन्य प्रेक्षणों से इस प्रेक्षण को संबंधित करने की प्रक्रिया में वह इस प्रेक्षण में कुछ अर्थ पाता है। वह दो चरों को पहचान सकता है, और अंत में दो नियंत्रण प्रयोगों का सुझाव दे सकता है। तीसरे चर जो समान रूप से प्रेक्षणीय चर है यथा 'पानी के स्तर' में वह अंतर नहीं देख पाता। इस अभ्यास से अध्यापकों के लिए यह निष्कर्ष निकलता है कि विभिन्न बुद्धि और उपलब्धि वाले बच्चों से अलग अलग बात करते समय उन्हें चाहिए कि वह उनके विचारों का आदर करें और उनकी प्रति संवेदनशील रहें। इसी प्रकार से मार्ग से बालक औपचारिक अवस्था तक पहुंचता है जिसमें उसके चिंतन पर क्रियाओं की अपेक्षा संभावनाओं का प्रभुत्व होता है।

वास्तविक और औपचारिक अवस्था के बीच स्पष्ट अंतर होता है। वास्तविक अवस्था में बौद्धिक प्रयास समतल पर ही विस्तृत और प्रखर होते हैं। विचारों की सीमा वास्तविक स्थिति से दृढ़ रूप से संबद्ध हो जाती है और प्रयोगात्मक स्थिति के संदर्भ में विचारों का परीक्षण और सत्यापन हो चुका होता है। किशोरावस्था में चिंतन निकट वर्तमान से भी आगे बढ़ जाता है और किशोर छात्र अधिक से अधिक

उर्ध्वाभर संबंधों को स्थापित करने का प्रयास करते है । उनकी धारणाएं, विचार और संकल्पनाएं केवल वर्तमान और भविष्य की घटनाओं से ही निर्मित होती है । वे सभी प्रकार की प्राक्कल्पनाएं और संभाव्यताओं पर विचार करते है और उनकी संबद्धता अथवा असंबद्धता के लिए उनके प्रभावों का निष्कर्ष निकालते है । यहाँ तक कि इसके संबंध में छोटे से छोटे विवरणों की भी वे उपेक्षा नहीं करते । इस अवस्था के लगभग अंत में किशोर छात्र विचारों की कुछ परिपक्वता का प्रदर्शन करते ह क्योंकि अब वे अपने संक्रियात्मक चिंतन में प्रतीकों का प्रयोग कर सकते हैं ।

संक्षेप में वे चिंतन के प्रतीकों का प्रयोग करके चिंतन करते हैं—अर्थात् संप्रत्ययों की संकल्पनाएं कर लेते हैं—एक प्रकार से यह दूसरे और तीसरे प्रकार का चिंतन होता है । उदाहरण के लिए यही वह अवस्था है जिसमें वह उच्च तार्किक उत्तर गढ़ता है जसा कि पहले वाली प्रयोगात्मक समस्या के निम्नलिखित उत्तरों से ज्ञात होता है :

'मैं कारकों को देख सकता हूं । ये है—कांच की नली की लंबाई, छिद्र का माप और बड़े वाले बीकर में पानी का स्तर ।'

'पहले कारक के लिए मैं तीन कांच की नली अलग अलग लंबाई की लूंगा परंतु उनके छिद्र एक ही माप के होने चाहिए । प्रयोग प्रारंभ करने से पहले मैं पानी का स्तर भी एक ही सा रखूंगा । इन तीनों मामलों में मैं पानी को केवल 10 सैकिड के लिए एकत्र करूंगा । यहां मेरा अभिप्राय यह है कि समय एक सा ही रखना चाहिए । अब मुझे अपना निर्णय देना है । यदि सभी मामलों में एकत्रित पानी की मात्रा समान है अथवा उनकी मात्रा में अंतर है तो मैं अपना निर्णय उसी के अनुसार दूंगा । अन्य कारकों के प्रभाव को भी इसी प्रकार जाना जा सकता है ।

मुझे सोचने दो : (सोचता है) मुझे प्रयोग की व्यवस्था इस प्रकार करनी है कि मुझे केवल उस कारक को छोड़ कर जिसका प्रभाव मैं जानना चाहता हूं, अन्य दो कारकों को स्थिर रखना है । मुझे निम्न वस्तुओं की आवश्यकता है:—

(i) भिन्न भिन्न लंबाई वाली तीन कांच की नलियां जिनके छिद्र एक ही माप के हों ।

(ii) एक ही लम्बाई वाली तीन कांच की नलियां जिनके छिद्रों के माप अलग–अलग हों ।

(iii) पानी के स्तर को अनुकूलित किया जा सकता है ।

फिर वह समस्या की अपेक्षानुसार प्रत्येक प्रयोग की व्यवस्था करता है।

पियाजे के अनुसंधान की कई आधार पर आलोचना की गई है। प्रथम पाठकों के लिए उनकी शब्दावली स्पष्ट और ग्राह्य नहीं है। दूसरे वह अपने अनेक ज्ञानमीमांसीय विचारों में अत्यधिक व्यस्त हैं। तीसरे उनका मैथोड क्लिनीक केवल गवेषणीय और व्यक्तिनिष्ठ ही नहीं है बल्कि प्रयोग में भी कठिन है। चौथी बात जैसा कि परंपरागत रूप में समझा जाता है उसके सम्पूर्ण अनुसंधान में वैज्ञानिक विधिशास्त्र का अभाव है। उनके अनुसंधान में निम्नलिखित बातों की स्पष्टता की आवश्यकता है जैसे–वर्गों की संश्लिष्टता और संख्याओं से संबंध, संज्ञानात्मक जीवन में प्रवेश पाने पर संक्रियात्मक संरचनाओं का मनोविज्ञान, प्रत्येक योजना में कई प्राक्कल्पित बौद्धिक संरचनाओं की संबद्धता, और अंत में यदि ऐसी संभावना है तो अंतरंगी क्रियाओं पर प्रभाव डालने का तरीका आदि। इसको स्वीकार करते हुए पियाजे बड़े संप्रत्ययों के निर्माण के लिए उत्तम स्पष्टीकरण प्रस्तुत करते हैं। क्यों वे रगों, आकारों तथा फलों जैसे छोटे संप्रत्ययों के विषय में खोज नहीं करते हैं। इसके बजाए वे संबंध विषयक संप्रत्ययों का अनुसंधान करते हैं। अन्त में पियाजे क्रिया को चिंतन का आधार मानते हैं जिसे (चिंतन) व्यवहारवादियों ने आंतरिक भाषा का रूप दे दिया था। इसी प्रकार क्योंकि संवेदनाएं व्यक्तिपरक होती हैं इसलिए वे वैज्ञानिक चिंतन का आधार नहीं हो सकतीं। फिर भी संवेदनाओं के बीच की संरचना को अभिव्यक्त किया जा सकता है, तार्किक रूप से जो विचारों में क्रियाओं के माध्यम से प्रवेश करती है। दूसरे शब्दों में तर्क में मध्यस्थता और भाषा का बहुत महत्व नहीं है। इसके अतिरिक्त तार्किक संरचनाय भाषा-विषयवस्तु से मुक्त होती हैं। यहां पर जेरोम केगन का कथन है कि सबसे पहले संरक्षण के आधार के लिए पियाजे द्वारा कल्पित तार्किक संरचनाओं और तर्क की परिभाषा को स्पष्ट करना आवश्यक है। वे यह भूल जाते है कि सौंदर्य और अच्छाई के संबंध में कोई संरक्षण नहीं होता और पियाजे के अनुसार बच्चों के चिंतन का निर्देशन अपरिवर्त्य के उस नियम से होता है जिसका गणित से संबंध है। अंत में सभी केगन से सहमत होंगे कि कारणता कारकों जैसे शब्दार्थ संरचाएं, प्रत्यक्ष को विविध रूप से विश्लेषण करने की आदत और विभिन्न प्रकार की तार्किक संरचनाएं जिनसे धीरे धीरे विकासात्मक विभिन्नतायें पैदा हो जाती हैं, की भूमिका को स्पष्ट करने वाले अध्ययन अभी तक नहीं किए जा सके हैं।

संप्रत्यय विकास में तीव्रगति

विचार प्रक्रिया को एक बार समझ लेने के बाद इस बात का परीक्षण करना सहज हो जाता है कि इसे तीव्र किया जा सकता है कि नहीं। इस संबंध में कोई साक्ष्य अंतिम

रूप से उपलब्ध नहीं है। वाइगोत्सकी के अनुसार, संप्रत्यय उस रूप में नहीं होते "जैसे कि थैले में मटर भरे होते हैं।" उच्च संप्रत्यय निम्न संप्रत्ययों को नियंत्रित करते हैं। वह आगे बताता है कि "शिक्षण" विकास से पहले आता है। अतएव, नियोजित शिक्षण मानसिक विकास को तीव्र कर सकता है। इससे भिन्न सैद्धांतिक दृष्टिकोण रखते हुए भी प्रो. मैक्सवरथीमर और प्रो. जे. एस. बर्नर यही कहते हैं। अमूर्तकरण और सामान्यीकरण की प्रक्रियाओं को अंतर्निहित करते हुए विशिष्ट गणितीय संप्रत्ययों की उपलब्धि पर किया गया जे. पी. डीन्स का कार्य भी इसी दिशा में संकेत करता है। कभी-कभी मानसिक विकास की निम्न अवस्था वाले बच्चे सही रूप से विधिवत उत्तर देते हैं जिनका और आगे विश्लेषण करने पर पता चलता है कि वे विभिन्न घटनाओं के तार्किक महत्व के अभाव में केवल छद्म कार्यों का प्रदर्शन करते हैं। प्रयोगात्मक, सांख्यकीय और अंतर्निरीक्षणात्मक प्रक्रियाओं के सम्मिलित उपयोग से वीहलर ने केवल बर्ट और इजाक के दृष्टिकोण की पुष्टि ही नहीं की बल्कि यह भी दिखाया कि 'प्रामाणिक तर्क के लिए आवश्यक अधिकांश प्रारंभिक योजना सात वर्ष के बच्चे की क्षमता में पहले से ही होती है। आत्म शिक्षणात्मक उपाय का उपयोग करते हुए किस्लर और मोनील ने दर्शाया कि बच्चों को अमूर्त वज्ञानिक भाषा सीखने और साथ ही परमाणु सिद्धांत में अंतर्निहित विशिष्ट घटनाओं के लिए सही व्याख्या उपलब्ध कराने हेतु प्रशिक्षित किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका में 'हैड स्टार्ट' स्कूलों का प्रयोग इसी दिशा में किया गया है जहां पर्यावरणी रूप से विकलांग बच्चे विशेषज्ञ के निर्देशन में चार या पांच वर्ष की आयु से पहले कथनों से अर्थ निकालने में सफल हो जाते हैं। इस उपलब्धि के संभव होने का कारण यह है कि छोटे बच्चे अपने जीवन के प्रारंभ में ही सफलता का अनुभव करना शुरू कर देते हैं। जब तार्किक संक्रियाएं सिखाई जाती हैं तब हाइरम और मार्क की खोजों के अनुसार संकल्पना विकास तीव्र हो जाता है। लोवेल, ओगिलवी और डाउडे इस निष्कर्ष का समर्थन नहीं करते। ई. ए. पी. यहां बताते है हमें यह नही भूलना चाहिए कि छोटे बच्चे 'मूर्त अनुभव, अभिव्यक्ति और निर्णय' पर अत्यधिक निर्भर होते हैं। जे. जी. वेल्स के अनुसार इस क्षेत्र में दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक और तकनीकी कई समस्याएं हैं। अंत में इंग्लैंड में डब्ल्यू. डी. वाल ने शिक्षकों को एक महत्वपूर्ण सुझाव दिया है कि उन्हें "किसी विषय, प्रक्रिया या तकनीक की तार्किक संरचना और जिस मनोवैज्ञानिक विधि से उसे सिखाया जाता है इन दोनों में विभेद करना चाहिए क्योंकि विषयवस्तु के न्यूनाधिक एक समान रहते हुए भी उनमें अंतर्निहित मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं भिन्न भिन्न होती हैं। निष्कर्ष यह है कि कुछ एक दशाओं के अंतर्गत विचार प्रकियाओं की तीव्रता में प्रशिक्षण को सहायक माना जाता है। इन दशाओं को अधिकाधिक ठोस रूप से और विशिष्ट रूप से उल्लिखित करना आवश्यक है। अन्त में प्रश्न उठता है कि नव उत्पन्न विचार प्रक्रियाएं पहले के समान होती है अथवा उससे भिन्न।

सूचना की जांच और निर्णय करना

किसी अन्य विज्ञान की तरह मनोविज्ञान का ध्येय भी निर्मितियों की श्रृंखला के जरिए वर्णनों, व्याख्या और पूर्वकथन के अर्थपूर्ण प्रतिमानों का विकास करना है। उदाहरणार्थ पिछले डेढ़ सौ वर्षों में इलेक्ट्रान की संकल्पना का विकास एक संगत मामला है। सूचना एक बुनियादी वस्तु है जो टेलीफोन, तार, बेतार, स्वचलन, नियंत्रण प्रणालियों, आर्थिक प्रणालियों और यहां तक कि मानव शरीर और मस्तिष्क जैसी कुछेक संचार प्रणालियों में से होकर प्रवाहित होती हैं। अतएव, एच-फैंक के अनुसार, सूचना मनोविज्ञान का मुख्य ध्येय "मनोविज्ञान में संतांत्रिकी उपागमों, पद्धतियों, मापों और मॉडलों के उपयोग के लिए प्रयत्नशील होना है जिससे कि मानव की मनोवैज्ञानिक रूप से बौधगम्य तस्वीर का विकास किया जा सके। मानव व्यवहार को चरणों में समझने के हमारे सीमित उद्देश्य के लिए संप्रत्यय सीखने को सूचना की जाँच (छानबीन) की समस्या के रूप में समझना सम्भव है। इसका कारण यह है कि मानव प्राणी, जिसकी स्मरण शक्ति दीर्घकालिक और साथ ही अल्पकालिक होती है, वह संप्रत्ययों, सामान्य कारणों, प्राक्कल्पनाओं और निगमनों के जनन के लिए सूचना का संग्रह करता है उन्हें प्राप्त करता है और उन की जाँच (छानबीन) करता है। भाषा भी महत्व पूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि इसका उपयोग संचार के लिए किया जाता है।

इस प्रकार, सक्रिय मांडली के जरिए तीव्र गति और कुशलता से जटिल बौद्धिक कार्यों के बहु विविध पक्षों का अध्ययन करने के लिए उपकरण प्राप्त हो जाता है। इस प्रक्रिया में वे समस्याएं भी अधिक हैं जिनको प्रयोगशाला में हल करना कठिन है। संगणक समस्या को हल करने के लिए अत्यधिक परिष्कृत विधियों के उपयोग में सक्षम होते हैं जिनका उपयोग मानव द्वारा किया जाना कठिन है, यथा–'मारकोव चेंस ; बेसियन के निर्णय और विपरीत प्रसंभाव्यता जिनसे तंत्रिका तंत्र के स्वरूप और क्रियाओं पर प्रकाश पड़ सकता है। दूसरी ओर मानव चिंत के कुछेक पक्षों को उद्दीपित करना भी संभव है। अब देखा गया है कि मानव मन और संगणक द्वारा प्राप्त दो प्रकार के हलों (परिणामों) के बीच तुलना करना बहुत रोचक है। अगर कार्यक्रम सफल हो जाते हैं तो अनुरूपण उपागम सर्वश्रेष्ठ रूप में हमारे इस ज्ञान में वृद्धि कर सकते हैं कि लोग विशिष्ट कार्यों को किस प्रकार करते हैं जिससे किसी सूचना की जांच (छानबीन) के सक्रिय क्रियान्वयक के रूप में मानव की तस्वीर में आमूल परिवर्तन हो सकता है। उद्दीपनों और अनुक्रियाओं के निष्क्रिय गढ्ढर बने रहने के बजाय सफल अनुरूपता उपायी नीतियों पर प्रकाश डालेगी जो बाह्य और आंतरिक पर्यावरणों द्वारा निर्मित मांगों की पृष्ठभूमि से जूझते हुए अंतिम रूप से विकसित हो जाती है। उनका यह विकास मानव द्वारा व्यक्तिक कार्य-व्यापारों के वर्द्धमान स्तर को प्राप्त करने के साथ-साथ होता है।

यह भी काफी रोचक है कि बुद्धि परीक्षा के एकांश (मद) अनुरूपित किए जा सकते हैं और मानव द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली नीतियों का शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए और आगे परीक्षण किया जा सकता है। विशिष्ट संप्रत्ययों का उपयोग करते हुए हेवलड ने संप्रत्यय सीखने का संचार विश्लेषण प्रस्तुत किया जिसमें मानव की सूचना प्रक्रमण कुशलता को मापा जा सकता है। यदि इन नीतियों को समस्या समाधान के लिए संक्षिप्त विधियां माना जाता है, तो उद्दीपन-अनुक्रिया सिद्धांत में उद्दीपन-अनुक्रिया बंधन के विरूद्ध टौट (टैस्ट आपरेट, टैस्ट एकजिस्ट, परीक्षण संक्रिया, परीक्षण अस्तित्व) के अनुसार खोज की इकाई को देखना संभव हो जाता है। हंट के अनुसार इस संप्रत्यय का उपयोग करते हुए संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करना संभव है। सांख्यकीय विश्लेषण के संप्रत्यय को व्यक्तिनिष्ठ सूचना में बदल कर प्राप्तकर्ता की आंतरिक अवस्था को मापना संभव है। इस दिशा में किए गए चिंतन ने उच्च गति वाले संगणकों का विकास किया है जो गणितज्ञों सहित अनुसंधानकर्त्ताओं और मनोवैज्ञानिकों इन दोनों के लिए अनेक प्रकार से सहायक हुये हैं जैसे अधार सामग्री का संगठन, अपचयन और प्राक्कल्पान की स्थापना तथा प्रतिरूपण, मॉडलिंग के साथ ही साथ संश्लेषण द्वारा उनका परीक्षण। इस क्षेत्र में सफलता लगातार उन्मुक्त परिवीक्षण प्रक्रिया पर निर्भर होती हैं जो विविध पक्षों में मानव व्यवहार को समझने, उसकी व्याख्या करने और पूर्वानुमान करने में हमें सक्षम बनाती है जबकि हम व्यावहारिक और सैद्धांतिक रूप से संभव बहुविविध बिन्दुओं से मनोवज्ञानिक रूप से मानव की प्राक्कल्पित छवि बनाने की दिशा में आगे बढ़ते हैं। निष्फल हो जाने पर व्यवहार के नए मॉडल की कल्पना की जाती है, उसका विकास और परीक्षण उस समय तक किया जा सकता है जब तक कि सफलता नहीं मिल जाती। धोखा खाने पर बाह्य और आंतरिक सूचना स्रोत आंतरिक पर्यावरण या आंतरिक मॉडल, सूचना रूपांतरण और उनके समन्वय के वृहत संदर्भ में भी बाधित नहीं रहते जो जैनिवा स्कूल द्वारा उद्घाटित मानव मन की एक विशिष्ट गुणवत्ता है।

सारांश

जबकि वर्तमान पुनरावलोकन में बहुविध पक्षों में संप्रत्यय निर्माण के सभी क्षेत्र सम्मिलित हैं उसी समय इसमें इस क्षेत्र की समस्याओं को इस आशा से उद्घाटित किया गया है कि उनके फल इस शताब्दी के अगले दशकों की प्रमुख उपलब्धियां होंगे। कोई पुनरावलोकन वह चाहे जितना विशद क्यों न हो उसमें अवश्य ही कुछेक कमजोरियां होती हैं। यदि छूट दी जाए तो नियंत्रित दशाओं के अंतर्गत ही कुछेक प्रश्नों के अलग अलग उत्तरों को प्राप्त करने की अपेक्षा इस क्षेत्र में उठने वाले अनेक प्रश्नों को संगठित करना अधिक महत्वपूर्ण है। यदि संप्रत्यय की संकल्पना और साथ ही प्रकार्य, तकनीक और खोज आदि में अत्यधिक विविधता है तो विचित्र विचारों

के द्वारा जो छोटे-छोटे टुकड़ों को आपस में जोड़कर लम्बी रस्सी के धागों की भांति बुने गए हैं, काल्पनिक रूप से वैज्ञानिक सुप्रतिष्ठित ज्ञान को चुनौती देना आवश्यक है।

ये प्रश्न किस प्रकार के हैं :

(1) विचारणों में संप्रत्यय का स्थान क्या है ?

(2) संप्रत्यय क्या है और यह किस प्रकार कार्य करते हैं ?

(3) विकास के विभिन्न स्तरों पर वे अकेले अकेले या अन्य प्रकार से अपने को कैसे संगठित करते हैं ? क्या वे किसी वर्ग का निर्माण करते हैं ?

(4) विभिन्न अधिगम सिद्धांत संप्रत्यय के विविध पक्षों, यथा-निर्माण पुष्टि, विकास, उपयोग, प्राप्यता और नामकरण का ज्ञान किस प्रकार प्रदान करते हैं। इन शब्दों में आज जैसा विभेद किया जाता है उसके अपेक्षा अत्यधिक विभेद करना आवश्यक है।

(5) कारणता तर्क की वास्तविक प्रकृति क्या है बच्चे और वयस्क वार्तालाप के दौरान संप्रत्ययों की प्राप्ति कैसे करते हैं और वे अपने विचारों को कैसे आगे बढ़ाते हैं ?

(6) पियाजे बच्चों की शिक्षा से संबद्ध बात कहते प्रतीत होते हैं। उसके विचारों को प्रौढ़ लोगों की शिक्षा में लागू किया जा सकता है, विशेष रूप से उन लोगों की शिक्षा में जिन्होंने अभी औपचारिक संक्रियात्मक स्तर प्राप्त नहीं किया है। यदि पियाजे के विचार और अधिक प्रामाणिक सिद्ध हो जाते तो इससे गैर औपचारिक शिक्षा को अत्यधिक लाभ मिलेगा। पियाजे ने हमें गणितीय संबंधों द्वारा विशिष्ट संप्रत्ययों के बारे में सूचना प्रदान की है। फिर भी हमें सत्य, सौंदर्य, अच्छाई, विश्वसनीयता और पाप जैसे अमूत संप्रत्ययों के बारे में बहुत कम जानकारी है कि ये कैसे विकसित हो जाते हैं ?

(7) क्या औपचारिक संक्रियाओं के लिए एक योग्यता या अवस्था होती है ? क्या यह विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न होती है। क्या वयस्कया शिक्षक का हस्तक्षेप इन मामलों में सुधार लाता है ?

(8) क्या सीखने के विभिन्न सिद्धांतों से प्राप्त विविध सैद्धांतिक दृष्टि-कोणों, यथा-अनुकूलन, पुनर्बलन, संभाव्य अधिगम, अंतर्दृष्टि, विचार का समूहन और पुनर्समूहन, समंजन, आत्मसातकरण और त्वरण आदि का संश्लेषण करना जरूरी है। चिंतन के अन्य गणितीय मॉडलों पर भी विचार किया जा सकता है। यदि ऐसा है तो इसके परिणामस्वरूप जटिल संकल्पानाओं के विश्लेषण के लिए शक्तिशाली उपागम निकल आ सकता है।

प्रस्तुत पुनरावलोकन में संप्रत्ययों की परिभाषाओं और प्रकार्यों, संप्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया, विभेदी सीखना, मध्यस्थता प्रक्रियाओं, द्वितीय संकेतन प्रणाली संप्रत्यय निर्माण को प्रभावित करने वाले कार्यक्रम, संप्रत्यय निर्माण के अध्ययनों, जैनिवा स्कूल, संप्रत्यय विकास और सूचना की जांच (छानबीन) और निर्णय करने आदि पर विचार विमर्श किया गया है। इसमें दिए गए विचारों से संकेत मिलता है कि उद्दीपन और अनुक्रिया के बीच स्थित जीव को व्यवहारवाद की सूली पर बलिदान कर देने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। इसका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व और आंतरिक पर्यावरण होता है। अपने विकास की किसी अवस्था में यह जीव अपने स्वायत्त व्यवहार में योगदान करना प्रारंभ कर देता है।

यह देखना अभी शेष है कि परीक्षण से पूर्व वयस्कों के मन में तीव्र प्राक्कल्पनाएं होती हैं या नहीं। बोर्न के अनुसार उनका वहां कोई काम नहीं है क्योंकि 'व्यवहार नियम का अनुसरण करने वाला उद्यम है।' ई. वी. हंट इससे आगे बढ़ जाता है जब वह कहता है कि उद्दीपन-अनुक्रिया मध्यस्थता मॉडल "अमूर्तकरण और उद्दीपन अंतर्विकास" की पर्याप्त व्यवस्था नहीं कर पाते हैं। अतएव यह केवल सरल संप्रत्यय के लिए ही उपयुक्त होते हैं। इसके अनुसार सीखने के सिद्धांत को नए सिद्धांतों और अन्य आनुभविक नियमों पर आधारित करके मानव के लिए सीखने के काल्पनिक सिद्धांत को विकसित करना हमारे लिए संभव है। यह सुझाव पियाजीशियन विचारधारा से मेल नहीं खाता। इसी तरह हमें इस क्षेत्र में तंत्रिका शरीर वैज्ञानिकों द्वारा दी गई रोचक व्याख्याओं से भी बहुत कुछ सीखना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आर्चर ई. जेम्स, "द साइकोलोजिकल नेचर आफ कान्सेप्ट्स" संप्रत्यय सीखने, के विश्लेषण में, कलोसमीयर तथा हैरिस (शि.) अध्याय–3 पृ. 37–49, 1966।

2. आरेटी, सिलवानो, "क्रियेटिविटी" : "द मैजिकल सीन्थेसिज़", आधारभूत पुस्तकें--न्यूयार्क, 1976।

3. बैक्स, एस. एच. "हाऊ प्युपिल्स इन ए सेकन्डरी माडर्न स्कूल इन्ड्यूस साइन्टिफिक प्रिंसिपल्स फ्रॉम साइन्स एक्सपैरीमैन्ट्स," अप्रकाशित शोध-निबन्ध बर्मिघम विश्वविद्यालय, 1958।

4. बार्टलेट, फ्रैडरिक "थिंकिंग" : एक प्रयोगात्मक अध्ययन, रस्किन हाऊस, ज्योर्ज एलन तथा अनविन लिमिटेड, म्युजियम स्ट्रीट, लन्दन, 1958।

5. बसु सी. के. "डैवलपमैन्ट आफ साइन्स एन्ड मैथमेटिक्स कान्सेप्ट्स इन चिल्ड्रन एट प्राइमरी ग्रेड्स इन इन्डिया" ई. आर. आई. सी. प्रौजैक्ट, एन. सी. ई. आर. टी., नई दिल्ली, जून, 1977।

6. बीयर्ड, आर. एम. "एन इन्वैस्टिगेशन आन कान्सेप्ट फौरमेशन अमेंग इन्फैन्ट स्कूल चिल्ड्रन" पी. एच. डी. थीसिस शिक्षा संस्थान, लन्दन, 1957।

7. बैवली, उपदेश कौर "कौन्सेप्ट आफ स्पीड" : डैवलपमेन्ट-कम-ट्रेनिंग। पी. एच. डी. थीसिस, इन्डियन इन्स्टिट्यूट ऑफ टैकनोलोजी, नई दिल्ली 1978।

8. बैवली, उपदेश कौर, "ए स्टडी आफ इफैक्ट आफ होम, स्कूल एन्ड इन्डिविड्युअल वेरिऐब्ल्स एन्ड द कोगनेटिव डेवलैपमेंट आफ चिल्ड्रन, 5 से $11\frac{1}{2}$ वर्ष के बच्चों के लिए "डैवलपमैन्ट नार्म् प्रौजेक्ट" नामक एक बड़े सहयोगात्मक अध्ययन के एक भाग के रूप में एन. सी. ई. आर. टी. में किया गया प्रकाशित शोध कार्य, नई दिल्ली, 1978।

9. बोर्न, एल. ई. (जूनियर) "कौन्सेप्ट लर्निंग एन्ड थौट", औकेज़नल पेपर नं. 7, विस्कौन्सन विश्वविद्यालय, मैडीसन विस्कौन्सन, शिक्षा का संयुक्त राज्य का कार्यालय, जनवरी, 1967।

10. ब्राउन आर. "हाउ शैल अ थिंग बी काल्ड ?" साइकालौजी रिव्यु, 65; 14–21 ।

11. ब्रूनर जेरोम, एस, गुडनाउ, जे. जे. तथा आस्टिन, जी. ए., स्टडी आफ थिंकिंग, न्यूयार्क, वाइली, 1956 ।

12. ब्रूनर जे. एस. "द प्रौसेस आफ एजुकेशन", हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रैस, केम्ब्रिज, मैसाच्यूसेट्स, 1960 ।

13. बुग्लेस्की, बी. आर. "द साइकोलौजी आफ लर्निंग", होल्ट, राइनहार्ट तथा विन्सटन न्यूयार्क, 1956 ।

14. बट्स, डेविड पी. "द डिग्री टु विच चिल्ड्रन कन्सैप्चुअलाइज फ्रौम साइन्स एक्सपीरियन्स" विज्ञान अध्यापन में अनुसंधान की पत्रिका, खंड 1, 135––143, 1963 ।

15. कार्लसन, ई. आर. "जैनरैलिटी आफ आर्डर आफ कौन्सेप्ट अटेन्मेंट", साइकोलौजी प्रति : 10(2) 375––380, 1962 ।

16. कौनेन्ट, जे. बी. "साइन्स एन्ड कॉमनसैन्स", यैल विश्वविद्यालय प्रैस, ऑक्सफोर्ड, पृ. 25, 1951 ।

17. कौनन्ट, माइकल बी. तथा थौमस आर. ट्रेवेसो––"कन्जैक्टिव एन्ड डिस्जंक्टिव कौन्सैप्ट फोरमेशन अन्डर ईक्वल इन्फारमेशन कन्डीशन्स" प्रायोगिक मनोविज्ञान की पत्रिका, 67 नं. 3 : 250––255, 1964 ।

18. डनिस, डेविड, एम. "दी इन्ट्रोडक्शन आफ कौन्सैप्ट्स इन काइनैटिक मौलिक्यूलर थ्यौरी टु चिल्ड्रन", विज्ञान अध्यापन की अनुसंधान पत्रिका, खंड 4 : 106––11, 1966 ।

19. ड्यूश, जीन मारक्विस, "दी डवैलपमैन्ट आफ चिल्ड्रन्स कोन्सैप्ट्स आफ कौज़ल रिलेशन्स मिनिया पोलिस" : मिनसोटा विश्वविद्यालय प्रैस, 1937 ।

20. डीन्स, जैड. पी. "बिल्डिंग आफ मैथमैटिक्स" लन्दन, 1960 ।

21. जैनल्डसन, मारगरेट, "ए स्टेडी ऑफ चिल्ड्रन्स थिंकिंग" टैविस्टोक प्रकाशन 1963 ।

22. ईसन्क, एच. जे. एट. एल. "एनसाइक्लोपीडिया आफ साइकोलौजी" फौन्टेना कालिन तथा सर्च प्रैस, लैकेस्टर के सहयोग से, 1975 ।

23. ईसैन्क, एच. जे. तथा विल्सन जी. डी. "ए टैक्स्ट बुक आफ ह्यमैन साइकोलौजी", एम. पी. प्रैस लिमिटेड, लैन्केस्टर, इंग्लड 1976।

24. फीगैन बॉम, एडवर्ड ए. एल.। जुलियन फेल्डानन, "कम्प्यूटर्स एन्ड थाट" लेखों का संग्रह, न्यूयार्क, मेकग्रोहिल, 1963।

25. गैगनी, एम. रॉबर्ट, "द लर्निंग आफ प्रिंसिप्ल्स (अध्याय 6) इन एन्ड एनेलिसिज आफ कौन्सेप्ट लर्निंग" क्लोसमीयर तथा हैरिस द्वारा संपादित, एकेडैमिक प्रैस, न्यूयार्क तथा लन्दन, 1966।

26. फ्लेवल, जे. एच. "द डैवलपमेंटल साइकोलौजी आफ जीन पियाजे", डी. वैन नौस्ट्रैन्ड कम्पनी, प्रिंसटन तथा लन्दन इत्यादि, 1963।

27. ज्योर्ज, एफ. एच. "माडल्स आफ थिंकिंग" ज्यौर्ज एलैन तथा अनविन लिमिटेड, लंदन, 1970।

28. ग्रबुर, हाउवर्ड, ई तथा वोनेच, जे. जैक्स "दी एसैन्शियल पियाजे" स्टलेज तथा केगन पाल लिमिटेड, लन्दन, 1977।

29. हॉ. जी. स्टेनले तथा ब्राउन. सी. ई.--"चिल्ड्रन्स आइडियाज आफ फायर, हीट, फ्रौस्ट एन्ड कोल्ड" पैडसम 1 : 139--73, 1891।

30. हॉफमैन, ई. एन्ड कैसानिन, जे. "ए मैथड फौर द स्टडी आफ कौन्सैप्ट फौर-मेशन", मनोविज्ञान पत्रिका 3, 521--540, 1937।

31. हांग, आई. "चिल्ड्रन्स एक्सप्लेनेशन्स आफ स्ट्रेन्ज फिनोमिना" स्मिथ कालेज स्टडीज इन सा कोलौजी, नं. 1, नौथम्पटन मैसाच्यूसैट्स, 1930।

32. हैड स्टार्ट स्कूल्स, 'हारवार्ड एजुकेशन रिव्यू', खंड, 33 नं. 2, पुस्तक समीक्षा, "टीचिंग डिसएडवांटेज चिल्ड्रन" (1967)।

33. हैब, डी. ओ. "डाइटन्स एन्ड द सी. एन. एस. (कन्सैप्चुअल नर्वस सिस्टम) साइकोलौजी समीक्षा, 62, 243--254।

34. होल्ट, जान "हाउ चिल्ड्रन फेल" पिटमैन पबलिशिंग कारपोरेशन, न्यूयाक, अक्टूबर, 1965।

35. हॉवलन्ड, कार्ल, आई. "ए कम्युनिकेशन अनेलिसिस आफ कौन्सैप्टस लर्निंग", मनोविज्ञान, समीक्षा, 59, 461--472।

36. हल, क्लार्क एल "क्वान्टिटेटिव आस्पैक्ट्स आफ द एवोल्युशन आफ कौन्सैप्ट्स" मनोवैज्ञानिक प्रबन्ध, 28, नं. 1।

37. हंट, ई. बी. "कौन्सैप्ट लर्निंग —एन इनफोर्मेशन प्रोसीडिंग प्रोबलम" न्यूयार्क, वाइली, 1962।

38. हंट, ई. बी. "कम्प्यूटर साइम्युलेशन एन्ड प्रोबलम सोल्विंग इन एनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन बाई डाइटन" एल. सी. (शि.) क्रोवेल कोलियर शैक्षिक निगम, 1971।

39. हंट, अर्ल बी. "आर्टिफिशियल इन्टैलिजैन्स" एकैडेमिक प्रैस, न्यूयार्क, 1975।

40. हायरम जी. "एन एक्सपर्ट इन डैवलपिंग क्रिटिकल थिंकिंग इन चिल्ड्रन" प्रायोगिक शिक्षा की पत्रिका, 86, 1957।

41. इन हैल्डर बी. सिक्लेयर एच, स्मौक, सी. डी. तथा बोवेट एम "आन कौग-निटिव डैवलपमैंट", अमरीकी मनोवैज्ञानिक, 21, 160—164, 1966।

42. आज़ैक्स, सूज़ान "इन्टैलैक्चुअल ग्रोथ इन यंग चिल्ड्रन" लन्दन : जूयोर्ज रुटलैज तथा सोन लिमिटेड, 1938।

43. जॉन पी. जे. "कोन्सेप्ट लर्निंग इन एनसाइक्लोपीडिया आफ एजुकशन" बाई डायटल एल. सी. (शि.) क्रोवेल कोलियर शैक्षिक निगम, 1971।

44. जोशी डी. "डैवेलपमन्ट आफ अन्डरस्टैंडिंग ड्यूरिंग चाइल्डहुड" (6—12) पी. एच. डी. थिसिस, लखनऊ विश्वविद्यालय, 1963।

45. जोशी जे. एन. "द डैवलपमेंन्ट आफ एलजैबरिक कोन्सैप्ट्स इन प्युपिल्स एट द जूनियर सैकन्डरी स्टेज", पी. एच. डी. थीसिस, पटना विश्वावद्यालय, 1970।

46. कागन, जे. "ए डैवलपमैंटल अप्रोच टू कॉन्सैप्चुअल ग्रोथ" इन क्लौसमीयर एन्ड हैरिस (शिक्षा), एनेलिसिज़ आफ कौन्सैप्ट लर्निंग, अध्याय 7, पृ. 97—115 एकैडेमिक प्रैस, न्यूयार्क तथा लन्दन, 1966।

47. कैली जी. ए. "द साइकोलोजी आफ पर्सनल कन्स्ट्रक्ट्स" खंड 1 और 2, न्यूयार्क, नार्टन, 1955।

48. कन्डलर, एच. एच. तथा केन्डलर टी. एस. "कौन्सेप्ट फौरमेशन इन सिल्स" डेविड एल (शिक्षा) इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइन्सिज़ फ्रोवल––कोलियर तथा मैकमिलन संयुक्त राज्य अमरीका 1968।

49. किंग, डब्ल्यू. एच "द डैवलपमेन्ट आफ साइन्टिफिक कौन्सैप्ट्स इन चिल्ड्रन" "ह्यूमैन डवलपमैंट इरा एफ. गोर्डन (सम्पादक) शिकागो स्कौट, फोर्समैन एन्ड कम्पनी, 1965।

50. क्लौसमीयर, एच. जे. तथा हैरिस सी. डब्ल्यू (शिक्षा) "एनलिसिज़ आफ कौन्सैप्ट लर्निंग" एकैडेमिक प्रैस, न्यूयार्क तथा लन्दन, 1966।

51. क्लीनमुन्ट्ज़, बी. (शिक्षा) "प्रोबलैम सोल्विंग", न्यूयार्क, वाइली, 1966।

52. क्रैच डी. "डायनेमिक्स सिस्टम्स एज़ ओपन न्यूरोफिजियोलौजी सिस्टम्स" साइकोलौजी समीक्षा 58, 345––361, 1950।

53. क्रेचवस्की आई. "हाइपौथिसिज़" इन रैट्स साइकोलौजी, समीक्षा 39 516–532, 1932।

54. कुबली, फ्रिट्ज़ "पियाजेज़ कौगनिटिव साइकोलौजी एन्ड इट्स कौन्सीक्वैन्सिज फौर द टीचिंग आफ साइन्स" विज्ञान शिक्षा की यूरोपीय पत्रिका, खंड 1, नं. 1, 5––20, 1979।

55. लेविने, एम. "हाइपोथिसिज़ बिहेवियर बाई ह्यूमन्स ड्यूरिंग डिक्रिमिनेशन लर्निंग" प्रायोगिक साइकोलौजी की पत्रिका, 71, 331––338, 1966।

56. लक्ष्मी "वर्बल कौन्सेप्ट लर्निंग"––एक अध्ययन। युग प्रकाशन, इलाहाबाद, 1976।

57. लियुबिलन्स्काया, ए. ए. "द डैवलपमैंट आफ चिल्ड्रन्स स्पीच एन्ड थौट", ब्रायन साइमन (शि.) साइकोलौजी में सोवियत यूनियन स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय प्रैस में, 1957।

58. लौकहार्ट आर. ए. "कन्डीशनिंग एन्ड द कौगनिटिव प्रौसेसिज़––ए सीम्पोजियम" साइको फिजियोलोजी, 74––122।

59. लौंग, एल. तथा वैल्च, एल. "इन्फ्लूएन्स आफ लैबेल्स आफ एक्स्ट्रैक्टनैस आन रीजनिंग एबिलिटी" मनोविज्ञान की पत्रिका, खंड 13, 41––59, 1942।

60. लौवेल के. "द ग्रोथ आफ बेसिक मैथमेटिकल एन्ड साइन्टिफिक कौन्सप्ट्स इन चिल्ड्रन", लन्दन विश्वविद्यालय प्रैस लिमिटेड, वौटविक स्क्वेयर लन्दन, 1962।

61. लन्जर, ई. ए. "रीसेन्ट स्टडीज इन ब्रिटेन बेस्ड आन द वर्क आफ जीन पियाजे," नैशनल फाउन्डेशन एजुकेशन रिसर्च, 1960।

62. लन्जर, ई. ए. "द रैगुलेशन आफ बिहेवियर" स्टेप्ल्स प्रैस, लन्दन, 1968।

63. लन्जर ई. ए. "ऑन चिल्ड्रन थिंकिंग" नैशनल फाऊन्डेशन फार एजुकेशनल रिसर्च इन इंग्लैंड एन्ड वेल्स, स्लाऊ, 1971।

64. मैके, डी. एम. "इन्फौरमेशन थियोरी इन द स्टडी आफ मैन" इन द रीडिंग्स इन साइकोलौजी बाइ कोहन जान (शि.) ज्योर्ज एलैन तथा अनविन लिमिटेड, 1964।

65. मेयर, नौरमन, आर. एफ. "रीजनिंग इन ह्यूमन्स", तुलनात्मक मनोविज्ञान की पत्रिका, 10, 115, 143, 1930।

66. मार्टिन, आयरीन, डी. "कन्डीशनिंग ए टैक्स्ट बुक आफ ह्यूमन साइकोलौजी" का एक अध्याय, इविद।

67. मैकनील, जे. डी. तथा कीजलर, ई. आर. "टीचिंग साइन्टिफिक थ्योरी टु. फर्स्ट ग्रेड प्युपिल्स बाई औटो इस्ट्रक्शन डिवाइस", द हारवार्ड एजुकेशन रिव्यू, खंड–31, पृ. 72––83, 1961।]

68. मीलिग्स आर. जे. "सम अस्पैक्ट्स आफ प्रौबलेम सोल्विंग इन साइन्स" एम. ए. थीसीस, बर्मिघम विश्वविद्यालय, अक्टूबर, 1961।

69. मैल्टन, ए. डब्ल्यू. संपादक "कैटेगरीज आफ ह्यूमन लर्निंग" एकैडैमिक प्रैस, न्यूयार्क, पृ. 226, 1964।

70. मैरेडिथ, जी. पी. "मैथमटिक्स एन्ड माइन्ड" गणितीय गजट, 40, 102––108, 1956।

71. नवारा, जे. जी. "द डैवलेप्मैन्ट आफ साइन्टिफिक कौन्सैप्ट इन अ यंग चाइल्ड" ब्यूरो पब्लिकेशन, टीचर कालेज।

72. नोवक, जे. डी. "ए माडल फौर द इन्टरप्रैटेशन एन्ड एनेलिसिज़ आफ कौन्सैप्ट फौरमेशन", विज्ञान अध्यापन की अनुसंधान पत्रिका, खंड 3, पृ. 72—83, 1965।

73. ओक्स, एम. ई. "चिल्ड्रन्स एक्सप्लेनेशन आफ नेशनल फिनोमेना", शिक्षा को अध्यापकों और कालेज का योगदान, नं. 926, 1947।

74. आसगुड सी. ई., सुसी. जी. जे. तथा टैननबोम, पी. एच. "द मेजरमेन्ट औफ मीनिंग" अरबाना : इलिनोइस विश्वविद्यालय प्रैस, 1957।

75. पील, ई. ए. "प्युपिल्स थिंकिंग" ओल्डबोर्न, लन्दन, 1960।

76. पील, ई. ए. "द नेचर आफ एडोलेसेन्ट जजमैंट" स्टेप्ल्स प्रैस, लन्दन, 1971।

77. पियाजे, जे. "द चाइल्ड्स कौन्सैप्शन आफ फिजिकल कौज़ैलिटी", लन्दन, केगन पाल, 1930।

78. पियाजे, जे. "द चाइल्ड्स कौन्सैप्शन आफ नम्बर" न्यूयार्क, म्यूमैनिटीज़, 1952।

79. पुलसाकी मेरी एन स्पैंसर "अन्डरस्टैंडिंग पियाजे, एन इन्ट्रक्शन टु चिल्ड्रन्स कोगनिटिव डैवलपमैंट" हारपर तथा राउ, न्यूयार्क, इत्यादि, 1971।

80. रैस्ल, एफ. "द सिलैक्शन आफ स्ट्रैटेजीज़ इन क्यू लर्निंग", मनोवैज्ञानिक समीक्षा, खंड 69, पृ. 329—343, 1962।

81. रसैल, डी. एच. "चिल्ड्रन्स थिंकिंग" बौस्टन जिन, 1956।

82. शैफर जरहार्ड, "कौन्सैप्शन फोरमेशन इन बायलौजी", द कोन्सैप्ट "ग्रोथ" विज्ञान शिक्षा की यूरोपीय पत्रिका, खंड 1. नं. 1, 87—101, 1979।

83. स्लेड, पी. डी. "'थिंकिंग एन्ड प्रौब्लैम सोल्विंग" "ए टैक्स्ट बुक आफ ह्यूमन साइकोलौजी" का एक अध्याय।

84. स्मोक, के. एल. "एन औबजैक्टिव स्टडी आफ कौन्सैप्ट फोरमेशन", मनोवैज्ञानिक प्रबन्ध, 42, नं. 4, 1932।

संवेदात्मक तथा गत्यात्मक विकास

सभी तरह के व्यवहारों के लिए संवेदात्मक और गत्यात्मक कार्य आधार होते हैं। सरल रूप से व्यवहार की उद्दीपन-अनुक्रिया इकाई ग्राही (ज्ञानेंद्रिय), अभिवाही, केन्द्रीय और अपवाही मार्ग से गुजरने वाले तंत्रिका-वेग तथा उसके फलस्वरूप होने वाली गति (पेशीय) अनुक्रिया से बनती है। ज्ञानेन्द्रियां चुनिंदा रूप में विभिन्न उद्दीपन (चाक्षुक, श्रव्य, ऊष्म, स्पर्श, ऊतक संवेदी, रसायनिक और गुरुत्वीय) के प्रति अनुक्रिया करती हैं और बहुधा परिणामी अनुक्रियाओं में दिए गए उद्दीपन की प्रकृति के अनुरूप एक प्रकार की पेशीय प्रतिक्रिया शामिल होती है। विकासात्मक रूप से व्यवहार के प्रारंभिक रूप (बौद्धिक विकास की प्रथम अवस्था) सरल संवेदी गति प्रतिवर्त होते हैं। संवेदी गति की प्रावस्था जन्म से लेकर लगभग 18 से 24 मास तक बनी रहती है। वृद्धि, परिपक्वता और विभेदीकरण के साथ-साथ संवेग बहुत तेज हो जाते हैं और पेशियां अधिक सशक्त हो जाती हैं तथा अधिक सचारू रूप से कार्य करती हैं। साथ ही केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र अपने उत्तरोत्तर सार्थक संवेदी प्रत्यक्षण के साथ परिपक्व हो जाता है और गति अनुक्रियाएं सुसंगठित हो जाती हैं जबकि अनेक प्रतिवर्त व्यवहार को स्वैच्छिक रूप से नियंत्रित किए जाने के लिए स्वतंत्र छोड़ देते हैं।

प्रारंभिक संवेदात्मक-गत्यात्मक प्रतिवर्त का विधिवत् विवरण जीन पियाजे द्वारा प्रस्तुत किया गया है। बालकों के विषय में इनका अध्ययन बहुमुखी रुचियों के द्वारा—जिसमें जीव विज्ञान, ज्ञान मीमांसा और तर्कशास्त्र शामिल हैं—और भी अधिक प्रभावशाली हो गया है। अपनी मौलिक संकल्पनाओं के साथ-साथ पियाजे ने अपनी प्रणाली में ऐसी अनेक संकल्पनाओं को शामिल किया है जिनका कि विकासात्मक मनोविज्ञान में बहुत समय तक एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उसने परिपक्वता की महत्वपूर्ण भूमिका को स्वीकार किया है। इस बात को जानते हुए कि परिपक्वता विकास के लिए एक आवश्यक शर्त है उन्होंने बालक और उसके पर्यावरण के बीच सक्रिय आदान-प्रदान की भूमिका पर बल दिया है।

संवेदात्मक-गत्यात्मक प्रतिवर्तों के जीववैज्ञानिक आधार

पियाजे के अनुसार प्रारंभिक संवेदात्मक गत्यात्मक क्रियाओं की उत्पत्ति ऐसे दो जीव वैज्ञानिक गुणों से होती है जो कि अनिवार्य रूप से समस्त प्राणियों में पाए जाते हैं। इनमें से एक निहित संगठन है और दूसरा व्यनुकूलन की क्षमता है।

प्रत्येक प्राणी का शारीरिक गठन इस प्रकार होता है कि अपनी विशिष्ट जीवनचर्या की क्रियाओं को कर सके। बहुकोशिक प्राणियों में ये क्रियाएं उन अवयवों अथवा संरचनाओं का कार्य हो सकती हैं जो कि कार्य में तो भिन्न होते हैं परन्तु प्राणी के जीवन के लिए सभी आवश्यक होते हैं। संरचनात्मक गठन का निर्धारण जननिक कारकों के द्वारा होता है। इसकी कार्य प्रणाली का निर्धारण (क) पर्यावरण के साथ अन्योन्य क्रिया और (ख) विकास की प्रदत्त अवस्था में प्राणी द्वारा प्राप्त परिपक्वता के स्तर के द्वारा होता है।

एक बालक के शारीरिक गठन के लिए निहित गतिविधियों में मस्तिष्क की क्रियाएं भी शामिल हैं। एक सामान्य बालक शारीरिक दृष्टि से इस प्रकार का होता है कि उसका एक ज्ञानवान प्राणी होना निश्चित ही होता है। उस के जन्मजात विचार नहीं होते हैं किन्तु उसकी रचना इस प्रकार होती है कि वह अनुभव की सहज प्रक्रियाओं के माध्यम से पर्यावरण के प्रति इस प्रकार की प्रतिक्रियाएं करता है जो कि उसे परिणामतः एक व्यापक मानसिक गठन की ओर ले जाती हैं। सर्वप्रथम वह एक प्रकार से लघु रूप में, अधिकांशतः उन प्रतिवर्तों द्वारा जिनके साथ उसने जन्म लिया है, क्रिया करता है। इसके पश्चात् विकास क्रम में प्रतिवर्ती प्रतिक्रियाएं उन क्रियाओं के लिए स्थान छोड़ देती हैं जिनका नियंत्रण प्रमस्तिष्क वल्कुट द्वारा होता है। अनुभव के किसी प्रदत्त क्षेत्र में (यथा—दृष्टि के क्षेत्र में) अनुक्रिया नमूनों का विस्तार है और अनुभव के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त (यथा—ऐसा नमूना जो कि दृष्टि के साथ बोध को मिला देता है) अनुभवों का परस्पर विलय और समन्वय हो जाता है।

बालक की मानसिक प्रक्रियाएं विकास के तर्कसंगत क्रम के माध्यम से उत्तरोत्तर संगठित और समन्वित हो जाती हैं और इनकी प्रत्येक अवस्था अगली अवस्था के लिए आधार प्रस्तुत करने वाली होती हैं। सर्वप्रथम वह केवल बाह्य रूप में सरल और सीधे उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करता है। कुछ समय के बाद उसकी मानसिक प्रक्रियाएं स्वयं पोशी और स्वयं उत्पादी हो जाती है। वह एक प्रकार से एक आंतरिक संसार की रचना करने में समृद्ध हो जाता है। अंतत : वह अपने आप को मूर्त से अलग कर लेता है और अमूर्त रूप से सोचने में समर्थ हो जाता है। वह धीरे-धीरे प्रतीकों की ओर प्रवृत्त होने लगता है। अधिकांशतः प्रतिवर्तों के द्वारा गतिशील होने की बजाय वह एक ऐसा प्राणी हो जाता है जो कि अपने ही विचारों पर चिंतन कर सकता है। जैसा कि पियाजे ने लिखा है व्यनुकूलन की क्षमता में दो पूरक प्रक्रियाएं शामिल हैं : आत्मसातकरण और आत्मानुकूलन।

भौतिक क्षेत्र में एक प्राणी ऐसे आहार ग्रहण करता है जो कि आत्मसात हो जाने पर अस्तित्व, वृद्धि और गतिविधि को बनाए रखता है। आहार अस्थि और पेशी तथा तंत्रिकाओं में इस प्रकार रूपांतरित हो जाता है कि वह प्राणी विशेष के शारीरिक गठन के अनुरूप होता है।

बौद्धिक क्षेत्र में आहार का आत्मसातकरण पर्यावरण से भी होता है। जिस प्रकार बालक की शारीरिक रचना का पोषण पाचन नली के द्वारा ग्रहण किए हुए भोजन से होता है उसी प्रकार उसकी मानसिक संरचना का पोषण भी पर्यावरण से प्राप्त उद्दीपनों को ग्रहण करने और उसके प्रति आचरण करने के लिए रचित उसकी सहज तंत्रिकाओं के द्वारा होता है।

किन्तु व्यनुकूलन में पर्यावरण के द्वारा प्रस्तुत तत्वों को ग्रहण करने और उन्हें अपने विद्यमान संरचना में समायोजित करने मात्र से कुछ अधिक भी शामिल है। इसमें आत्मानुकूलन—किसी ऐसी नवीन अथवा भिन्न वस्तु के प्रतिक्रिया करने का संशोधित तरीका जो कि प्रतिक्रिया के विद्यमान नमूने से मेल नहीं खाता—की एक प्रक्रिया भी शामिल है। उदाहरणार्थ ऐसा संशोधन उस समय अपेक्षित होता है जब कि कोई व्यक्ति चीनी की तरह दिखाई देने वाली प्रत्येक वस्तु को चीनी की तरह ही स्वादित होन की आशा में पहली बार नमक खाता है। आत्मानुकूलन की उस समय भी अपेक्षा होती है जब कि कोई बालक जो अपने पालने की छड़ों के बीच से आसपास की छोटी-छोटी वस्तुओं को अपनी ओर खींचने का अभ्यस्त होता है, अपने पालने में किसी आड़ी छड़ी को अपनी ओर खींचने का प्रयत्न करता है किन्तु सफल नहीं हो पाता और फिर संभवतः पहली बार संयोग से उसको सीधा खींचने में सफल हो जाता है। जब वह अन्य समस्त लम्बी वस्तुओं पर जो कि उसकी पकड़ के अन्दर होती है, काम करने के इस संशोधित तरीके को लागू करता है तो यह जाहिर होता है कि उसने इस तरीके को आत्मसात कर लिया है। जैसे-जैसे बालक संज्ञान की प्रारंभिक अवस्थाओं से उत्तरवर्ती अधिक जटिल अवस्था में प्रवेश करता है, पियाजे के अनुसार आत्मसातकरण और अनुकूलन की पूरक प्रक्रियाएं बौद्धिक क्रिया-कलापों में मूल तत्वों के रूप में चलती रहती हैं।

तंत्रिका तथा वल्कुटीय विकास

मानव प्रमस्तिष्क वल्कुट के जन्मोत्तर विकास के बारे में कॉनल द्वारा किए गये अध्ययन का ईकार्न तथा ईकार्न और जोन्स द्वारा सुन्दर सारांश प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि ऊतकीय संरचना में परिवर्तन तंत्रिका कार्य में विकासात्मक परिवर्तनों के साथ (जैसा कि विद्युत मस्तिष्क लेख में व्यक्त होता है,) मेल खाते हैं। जन्म के

समय और एक मास की आयु तक भी वल्कुट बहुत अपरिपक्व होता है, कोशिका प्रक्रियाएं कोमल होती हैं, निस्सल पिंड नहीं होते हैं और तंत्रिका तंतुक बहुत कम होते हैं। सर्वाधिक वल्कुटीय विकास धड़ के ऊपरी भाग, टांग, हाथ और सिर के क्षेत्र के मुख्य गति क्षेत्र में होते हैं साथ ही क्रमशः काय-संवेदना, चाक्षुष, घ्राणमस्तिष्क (घ्राण) तथा श्रव्य क्षेत्रों में भी होते है जबकि अन्य भाग अभी भी काफी अपरिपक्व होते हैं। तीन मास की अवस्था होते-होते अनेक बहिर्जात और सहवासी तंत्रिका तंतुओं में उल्लेखनीय प्रगति होती है। सबसे अधिक विकास हाथ, नेत्रों तथा रेखित वल्कुट के गति क्षेत्र में होता है। इस अवधि के दौरान तंत्रिका तंतुओं के माईलिनीकरण में भी तीव्र प्रगति हुई है। यह माईलिनीकरण तंतुओं के साथ-साथ तंत्रिका संवेगों का प्रसार करता है और तंत्रिका कोशिकाओं में संवेगों के यादृच्छिक प्रसार को कम करता है। पुनः छह: मास की आयु में विशेषकर हाथ, धड़, धड़ का ऊपरी भाग, टांग और सिर को नियंत्रित करने वाले गति क्षेत्रों में उल्लेखनीय विकास होता है जबकि चाक्षुष और काय संवेदनात्मक संवेगी विकास त्वरित हो जाते हैं। छह: और पंद्रह मास के बीच मस्तिष्क के गति क्षेत्रों में कम उल्लेखनीय प्रगति होती है तथा परिपक्वता का क्रम हाथ, धड़ का ऊपरी भाग, सिर और टांग होता है। इस अवस्था के आते-आते मुख्य चाक्षुष क्षेत्र गति में गौण हो जाता है जबकि चाक्षुष साहचर्य क्षेत्र काय-संवेदनात्मक साहचर्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं। इन ऊतक विज्ञानी परिवर्तनों के साथ-साथ इकान तथा जोन्स ने यह बताया कि जन्म के समय वल्कुट की विद्युत क्रिया अत्यन्त धीमी और अनियमित होती है और यह सर्वाधिक नियमित ल्कुटीय संरचना के सबसे अधिक परिपक्व क्षेत्र में होती है। तथापि नवजात शिशु और एक मास की आयु वाले बच्चे के विषय में कतिपय समान अंतर के साथ विद्युत मस्तिष्क लेख के पैटर्नों को लागू करना संभव है, जबकि एक और तीन मास के बीच की अवस्था में मस्तिष्क के श्रव्य संवेद और चाक्षुक क्षेत्रों में विद्युत मस्तिष्क लेख में यादृच्छिक क्रिया की अपेक्षा एक निश्चित आकार की मन्द गतिविधि के रूप में रूपांतरण हो जाता है।

गर्भाशय का विकास

व्यवहार का विकास बच्चे के पैदा होने से काफी पहले ही प्रारंभ हो जाता है। दूसरे मास के अंत में बच्चे का मानव आकार पहचान में आ सकता है। इस समय से पहले ही एक प्रकार की कायिक गतिविधि शुरू हो चुकती है। गर्भावधि के तीसरे सप्ताह में हृदय में स्पंदन शुरू हो जाता है। 25वें सप्ताह में बच्चा एक पृथक प्राणी के रूप में जीवित रहने के लिए आवश्यक तत्वों से वस्तुतः पूर्ण रूप से सज्जित होता है यद्यपि इन अधिकांश तत्वों क और भी परिपक्व होने की अपेक्षा विद्यमान रहती है।

व्यवहार के प्रारंभ होने के विषय में पर्याप्त जानकारी ऐसे गर्भाशयों के अध्ययन द्वारा प्राप्त की गई है जो कि दुर्घटनाओं अथवा अन्य परिस्थितियों के कारण विकास की विभिन्न अवस्थाओं में माता के शरीर से हटा दिए गए हैं।

मानवीय गर्भाशय से प्राप्त की जा सकने वाली अति प्रारंभिक प्रतिवर्त गतिविधियां मस्तिष्क क्षेत्र में प्रारम्भ होती हैं जैसा कि शिरोपुच्छीय क्रम से अनुमानित होत है। जब भ्रूण लगभग साढ़े आठ सप्ताह का हो जाता है तो यदि उस क्षेत्र में कुछ तकलीफ पहुंचाई जाए तो वह तकलीफ के स्थान से अपना सिर हटा लेगा। इस प्रकार के उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया में धड़ भी शामिल होता है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इसकी अपनी कोई संवेदनशीलता नहीं होती। कुछ समय बाद भ्रण का धड़ भी उद्दीपन के प्रति संवेदनशील हो जाता है और तकलीफ के प्रति अधिक व्यवस्थित रीति से अनुक्रिया करता है। जैसे-जैसे धड़ और अवयवों का तंत्रिका ढांचा विकसित होता है वैसे-वैसे तंत्रिकात्मक रूप से उद्दीपित व्यवहार पुनः धड़ के क्षेत्र से हटकर शरीर की सीमा में जाता हुआ प्रतीत होता है। मूलतः भ्रूण के अंग उद्दीपन के प्रति सिर और धड़ की साधारण अनुक्रिया के परिणामस्वरूप ही गतिशील होते हैं। अन्ततः अंग उन उद्दीपनों के प्रति अपेक्षाकृत विवेक-पूर्ण रूप से अनुक्रिया करने में सक्षम हो जाते हैं जोकि प्रत्यक्ष रूप से उन पर लागू किए जाते हैं। जनन पूर्व जीवन के चौदहवें सप्ताह के आते-आते भ्रूण तकलीफ के स्रोत से अपने पैर को शरीर के अवशिष्ट भाग को जाहिर तौर पर शामिल किए बिना हटा लेता है। कार्मिकेल ने इस प्रारंभिक भ्रूण-विकास का बहुत अच्छा विवरण प्रस्तुत किया है। समस्त शरीर का धीरे-धीरे इसमें शामिल होना और गर्भावधि के छब्बीस सप्ताह होते होते जीवन के लिए आवश्यक प्रतिवर्तों के विद्यमान होने का उन्होंने संकेत दिया है। इन प्रतिवर्तों में श्वास, रक्त परिचालन और पाचन प्रणालियों के कार्य सम्मिलित हैं और साथ ही वे ज्ञानेन्द्रियां भी शामिल हैं जो कि प्रकाश, ध्वनि, स्पर्श और शरीर की स्थिति आदि के प्रति अनुक्रिया करती हैं।

संवेदात्मक-गत्यात्मक अवस्था का प्रारम्भ

बौद्धिक विकास की प्रथम अवस्था को पियाजे ने संवेदात्मक-गत्यात्मक अवस्था कहा है। जन्म के समय से लगभग 18–24 मास तक यह अवस्था रहती है। एम० एस० बड़ौदा विश्वविद्यालय के गृह-विज्ञान संकाय द्वारा बाल विकास विषयक अध्ययन में 1963–1969 में बच्चों के अनुदैर्ध्य परीक्षणों से शैशवावस्था के दौरान मानसिक और गति विकास के विषय में कुछ महत्वपूर्ण बातें सामने आई हैं। मनः गत्यात्मक, मनः सामाजिक, भाषा तथा संज्ञानात्मक व्यवहार जैसे मदों से युक्त मानसिक विकास की बेले-मापनी से संबंधित आंकड़ों से यह जाहिर हुआ है कि पहले

मास से ही स्पष्टतः त्वरित अथवा मंदित विकासात्मक प्रवृत्ति बहुत दुर्लभ थी। तथापि भारत में (प्रमिला पाठक) तथा अन्यत्र (कॉगन जैरोम) अनुसंधानकर्ताओं ने यह बात काफी अच्छी तरह से सिद्ध कर दी है कि अधिकांश बच्चों के मानसिक विकास संबंधी नमूने अस्थिर होते हैं और नमूनों में विभिन्नताएं 13 मास की अवस्था के बाद स्पष्ट रूप से प्रकट होनी शुरू हो जाती है। जीवन के दूसरे वर्ष में माता-पिता की शिक्षा, उनकी आय आदि जैसे तत्व तीव्र तथा मंदित विकास नमूनों में उल्लेखनीय संबंध को प्रकट करते हैं। 12 से लेकर 24 मास के बीच किसी भी समय भाषा बच्चे की संज्ञानात्मक क्षमता का अंग बन जाती है तथा घटनाओं के अर्थ उसके अवधानात्मक व्यवहार को निर्धारित करते है।

पियाजे के अनुसार शिशु में अनुकूलन की प्रक्रिया बहुत मामूली स्तर पर शुरू होती है। बच्चे की प्रथम प्रतिक्रियाओं में सबसे अधिक मुख्य प्रक्रिया दूध पीने की होती है। कुछ बच्चे सर्वप्रथम ठीक प्रकार से दूध नहीं पीते हैं किन्तु एक स्वस्थ बच्चा जल्दी ही आतुरतापूर्वक दूध पीने लगता है जब भी निपल को उसके मुंह से लगाया जाता है। इसके उपरान्त कुछ समय बाद दूध पीने की रीति अथवा व्यवस्था जैसा कि पियाजे ने इसको कहा है प्रगति कर लेती है। दूध पीने के साथ-साथ बच्चा अपने हाथ से इधर-उधर पकड़ने के लिए भी चेष्टा करता है। वह अपने हाथ को अथवा उंगलियों को चूसने लगता है और यह धीरे-धीरे अनेक वस्तुओं के संपर्क का महत्वपूर्ण माध्यम बन जाता है। चूसने और हाथ को मुंह में रखने से बच्चे के संभावित संज्ञानात्मक क्षेत्र में वृद्धि हो जाती है। एक प्रक्रिया के अनुसार जिसे कि पियाजे ने "आत्मसातकरण का सामान्यीकरण" कहा है बच्चा इस चूसने की रीति में अधिकाधिक अनेक प्रकार की वस्तुओं को शामिल कर लेता है। जीवन के प्रथम सप्ताह के दौरान वह अपनी उंगलियों को, दूसरों के द्वारा प्रस्तुत उंगलियों को, अपने मुंह के संपर्क में आने वाली वस्तुओं को तथा अपना तकिया, रजाई, बिस्तर के कपड़े तथा अन्य उपलब्ध वस्तुओं को चूसने लगता है। ऐसा करते हुए वह इन वस्तुओं को चूषण की क्रिया में शामिल कर लेता है।

संवेदात्मक विकास

एक बच्चे की अनुक्रियाओं का भंडार बहुत सीमित होता है, अतः संवेदात्मक क्रियाओं के बारे में एकदम सही सूचना प्राप्त करना कठिन है तथापि चाक्षुष अनुभूति प्रकाश के प्रति नेत्रों की प्रतिक्रिया, चौंकना तथा ध्वनि एवं स्पर्श उद्दीपनों के प्रति क्रियाओं के स्तर में परिवर्तन जैसे व्यवहारों का निरीक्षण और इन्हें दर्ज करना संभव है। संवेदात्मक प्रतिक्रिया को विद्युत मस्तिष्क लेख और हृदय-स्पंदन में परिवर्तनों

के निरीक्षण द्वारा और गतिशील धारीदार नमूनों के प्रति बच्चों की आंखों की गतिविधि जैसी बातों को देखने के द्वारा भी दर्ज किया गया है।

यह स्पष्ट है कि गर्भावस्था की पूरी अवधि में उत्पन्न होने वाला नया शिशु देखता है, सुनता है, और दबाव, स्पर्श, स्वाद और तापमान में परिवर्तन के प्रति अनुक्रिया करता है। उसके व्यवहार से और तंत्रिका प्रणाली की संरचना से यह ज्ञात होता है कि उसकी विभिन्न इन्द्रियां, दृष्टि बहुत अधिक विकसित है।

दृष्टि

प्रायः जन्म के समय से ही एक औसत बच्चा देखने की क्षमता रखने के संकेत देता है। जब वह किसी वस्तु पर अपनी आंख ठहराता है और उस वस्तु के चलने के साथ-साथ अपनी दृष्टि को चलाता है तो यह मानना उचित है कि वह एक प्रकार से दृष्टि संबंधी प्रभावों को प्राप्त कर रहा है यद्यपि हमारे पास यह जानने का कोई उपाय नहीं है कि वह किस प्रकार के प्रभावों को प्राप्त कर रहा है। किसी वस्तु पर अपनी आंख ठहराने की योग्यता के विषय में बच्चों में पर्याप्त अंतर होता है। तथापि जन्म के पश्चात् सभी बच्चे चाक्षुष उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करते हैं और यह अनुक्रिया चयनात्मक होती है। जन्म के एकदम पश्चात् बच्चा थोड़ी देर के लिए एक बड़ी चलायमान वस्तु को (जैसे कि एक व्यक्ति) अपने दृष्टि पथ के एकदम करीब और सीध में समझता है। चलायमान छोटी, चमकदार लाल वस्तु को जबकि यह उसकी आंख से 8 इंच ऊपर रखी जाती है, पहले की अपेक्षा कुछ कम देखता है। लगभग दो सप्ताह में उसकी दृष्टि इस चलायमान वस्तु (लाल प्लास्टिक का छल्ला) का अपनी दृष्टि के दाए-बाएं होने पर पीछा कर सकती है। तीन सप्ताह में उसकी आंखे दो तीन फुट की दूरी पर एक चलते हुये व्यक्ति का पीछा कर सकती हैं। लगभग एक मास के अंदर उसकी दृष्टि ऊपर नीचे होते हुए लाल छल्ले का पीछा कर सकती है और कुछ समय के बाद छल्लों को (18–24 इंच के व्यास में) धीरे-धीरे वर्तुलाकार में घुमाए जाने पर पीछा कर सकती है। छह अथवा सात सप्ताह के अंदर बच्चा गोद में सीध लिए जाने पर अपने आसपास का निरीक्षण-सा करता हुआ प्रतीत होता है और जब बगल से लाल छल्ले को उसकी आंखों के आगे किया जाता है तो वह तीस डिग्री के कोण से उसकी तरफ अपनी आंखे कर लेता है। चौथा महीना होते-होते बच्चे की पुतली प्रायः बड़े आदमी की तरह विभिन्न दूरी पर स्थित वस्तुओं को देख सकती है।

प्रयोग की अवस्थाओं में अनेक जांचकर्ताओं ने चाक्षुष उद्दीपनों के अंतरों का पता लगाया है जो कि वहां बहुत पहले से विद्यमान थे। अनेक अध्ययनों से यह पता लगा है कि तीन से चार मास की अवस्था वाले बच्चे सादे उद्दीपनों की अपेक्षा नमूनेदार उद्दीपनों के प्रति अधिक रुचि दिखाते हैं (अर्थात् वह उसकी ओर अधिक समय

तक देखते हैं)। फैन्ड्स और ओर्डी ने यह दर्शाया है कि पांच दिन से कम की अवस्था वाले बच्चे सादा रंग वाले नमूने की अपेक्षा काले और सफेद नमूनों को अधिक देखते हैं। डोरिस और कूपर ने चार से उनहत्तर दिनों की अवस्था वाले 16 बच्चों में अवस्था और चमक में भेद करने की क्षमता के बीच स्पष्ट सहसंबंध को दर्शाया है।

ये निष्कर्ष शिशु-मानसिक मापनियों में देखे गए चाक्षुष उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया के साथ आमतौर पर मेल खाते हैं। दो मास की अवस्था के करीब बेले-मापनी जारी रखने पर एक बच्चा आंखों के सामने तेज़ी से हाथ घुमाने पर आंख बन्द कर लेता है, वह अपनी मां को पहचानने लगता है, और उसकी आंखे चलायमान पेंसिल का पीछा करती हैं,। ढाई मास की अवस्था में वह आवाज की तरफ देखने लगता है, और जब उसको सीधा गोद में लिया जाता है तो वह मेज पर एक इंच के लाल टुकड़े को देखता है,। साढ़े तीन महीने का होने पर उसकी आंखे छोटी-छोटी वस्तुओं, जैसे लाल छल्ला, चाय का चम्मच और गेंद, जबकि उन्हें मेज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चलाया जाता है, का पीछा करती हैं। चार मास के बच्चे की एक खास आदत अपने हाथों को देखने की होती है। साढ़े चार मास का होने पर वह चौथाई इंच के व्यास वाले टुकड़े को देखता है। पांच मास का होने पर वह परिचित और अपरिचित व्यक्तियों में भेद करने लगता है (विशेषकर दृष्टि द्वारा, जोकि उसके देखने के ढंग से व्यक्त होता है)। नमूनेदार वस्तुओं के चाक्षुष विभेद में और भी अधिक प्रगति तब प्रदर्शि होती है जब 12 मास का होने पर वह किसी पुस्तक में रंगीन तस्वीरों को बड़े चाव से देखता है। दूसरे वर्ष में उसके अनेक व्यवहारों से चाक्षुष विभेद के उपभोग करने की क्षमता का उस समय परिचय मिलता है जब वह हरकतों की नकल करता है,। गुटकों से मीनार बनाता है, गोल, चौकोर और तिकोने टुकड़ों को उसके अनुरूप छिद्रों के अनुसार ठीक-ठीक एक दूसरे पर बिठाता है और अधिक जटिल क्रियाओं को भी करने लगता है।

समय पूर्व और पूरे समय में जन्में बच्चों के प्रथम कुछ मास के जीवन में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई चाक्षुष तीव्रता का मूल्यांकन ब्राउन द्वारा किया गया है।

चाक्षुष विकास संबंधी सूचना का एक अन्य स्रोत नेत्र विशेषज्ञों द्वारा किए गए अध्ययन हैं। कीने ने दृष्टि और उभयाक्षता के कार्यात्मक विकास की एक सारणी तीन मास से ले कर 9 वर्ष की अवस्था वाले बच्चों के लिए तैयार की है। इसके अधिकांश तथ्य उन बातों के करीब हैं अथवा मिलते-जुलते हैं जो कि पहले से ही इस विषय में दर्ज किये जा चुके हैं। हम सातवें मास की अवस्था वाले बच्चे के विषय में प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता और एक साल की अवस्था में शुरू होने वाले चाक्षुष तीव्रता के अंशों के क्रम को, जबकि चाक्षुष तीव्रता लगभग 6/60 होती है और सम्मिश्रण

पूणतः नहीं होता है, इसमें और जोड़ सकते हैं । दो वर्ष की अवस्था में यह कम से कम 6/12 होती है । ढाई वर्ष की अवस्था में सहन करने की अधिक परिपक्व क्षमता के कारण इस तीव्रता में और सुधार हो जाता है । तीन वर्ष की अवस्था में दृष्टि तीव्रता लगभग 6/9 होती है । साढ़े तीन साल की अवस्था में सम्मिश्रण की क्षमता में सुधार होने लगता है और चार वर्ष की अवस्था में दृष्टि लगभग 6/6 होती है । पांच वर्ष की अवस्था में दृष्टि की क्रियाएं ठहराव की अपेक्षा घटिया होती हैं और साढ़े पांच की अवस्था में सम्मिश्रण पक्का और सही हो जाता है । छह से लेकर साढ़े छह की अवस्था तक दृष्टि की क्रियाएं सही होती हैं और औसत बच्चा अक्षरों और शब्द-प्रतीकों में भेद करने लगता है और पढ़ने लगता है । इसके बाद 9 वर्ष की अवस्था तक प्रिज्म स्रोत को सहन करने की योग्यता विकसित हो जाती है और बढ़ती ही जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि दृष्टि जन्म के समय विद्यमान होती है और अन्य इन्द्रियों के अनुपात में उस की तीव्रता कम से कम नौ वर्ष की अवस्था तक बढ़ती ही रहती है । यह परिवर्तन पहले काफी त्वरित होते हैं और अवस्था बढ़ने के साथ यह मन्द हो जाते हैं ।

सभी ज्ञानेन्द्रियों में से नेत्र सबसे अधिक जटिल होते हैं, और हम पाते है कि दृष्टि तीव्रता कई चरों का कार्य होती है, जिसमें सरल चर चमक और रंग, नमूनेदार वस्तु जो कि मात्रात्मक और गुणात्मक चरों की जटिलता से संबंधित होती है, सम्मिलित होते हैं, । साथ-साथ इसमें गहराई से भेद करने, एकाक्षता और उभयाक्षता तथा सहनशीलता और समाभिरूपता भी सम्मिलित हैं ।

सामान्य तौर पर इन्द्रियों के विषय में और विशेषकर दृष्टि के विषय में विकास के विशुद्ध संवेदी पक्ष प्रत्यक्षण और ऐसे उद्दीपन के प्रति सार्थक तथा अनुकूलनात्मक प्रतिक्रियाओं से मिश्रित होते हैं जो कि संवेदी विभेद के अध्ययन के लिए प्रस्तुत किए जाते हैं ।

श्रवण

कभी-कभी बच्चे जन्म से पहले भी ऐसे कायिक कंपनों के प्रति प्रतिक्रिया कराते हैं जो कि ध्वनि उत्पन्न करते हैं किन्तु इससे हम यह नहीं मान सकते हैं कि क्या बच्चा वास्तव में सुनता है । कुछ जांचकर्ताओं ने यह दावा किया है कि बच्चे जन्म के समय बहरे होते हैं किन्तु अनेक अध्ययनों से यह पता चलता है कि अधिकांश बच्चे जन्म के पहले दिनों में ही ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं । श्रवण तीव्रता का विकासात्मक नमूना अनेक प्रकार से दृष्टि के नमूने से मिलता-जुलता है । सामान्य नवजात शिशु चौंकने के प्रतिवर्त द्वारा तेज, ऊंची ध्वनि अथवा कान के समीप घंटी बजाये जाने के

प्रति प्रतिक्रिया करता है। जन्म के दस दिन के बाद वह झुनझुने की हल्की ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया करता है और 20 दिन के बाद धीमी आवाज़ के प्रति प्रतिक्रिया करता है। ढाई मास के बच्चे द्वारा ध्वनि के उद्गम स्थान का ठीक-ठीक निश्चय करना कठिन है जो दृष्टि से परे घंटी अथवा झुनझुने को बजाए जाने पर अपनी आंखों से उसकी तलाश करता हुआ सा दिखाई देता है। तीन मास का होने पर उसकी आंखें घंटी से झुनझुने की तरफ और झुनझुने से घंटी की तरफ बारी बारी से घूमने लगती हैं जबकि उन्हें उसके दृष्टि क्षेत्र के अन्दर आठ इंच की दूरी पर रखते हुए बारी-बारी से बजाया जाता है। चार मास का बच्चा दाएं-बाएं घंटी को देखने के लिए मुड़ने लगता है जबकि उसे पहले एक कान की और फिर दूसरे कान के करीब बजाया जाता है।

प्रथम चार मास के दौरान वल्कुट के श्रवण क्षेत्र में त्वरित वल्कुटीय विकास का साक्ष्य मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है इस अवस्था के आते आते सामान्य तीव्रता अच्छी तरह से विकसित हो जाती है। श्रवण के विषय में आगे होने वाले परिवर्तन मुख्यतः प्रत्यक्ष संबंधी प्रतीत होते हैं। 6 से 7 मास का बच्चा ध्वनि उत्पन्न करने में अधिक रुचि रखता है, वह अपने हाथ को अथवा खिलौने को कुर्सी पर बजाता है और सुनता है। वह बड़बड़ाता है और अक्षरों का बार-बार उच्चारण करने का प्रयत्न करता है। 8 से 9 मास की अवस्था में वह केवल परिचित शब्दों को सुनता है और साधारण आदेशों के प्रति उचित अनुक्रिया करता है।

श्रवण तीव्रता ध्वनि की ऊंचाई के साथ साथ बदलती है। फिर भी, स्वर की ऊंचाई के प्रति संवेदनशीलता का कारण बच्चे या शिशु का विकास नहीं होता बल्कि व्यक्तिगत भेद होता है।

स्पर्श तथा पीड़ा की संवेदनशीलता

बच्चे पीड़ा उद्दीपन के प्रति सापेक्षतः कम संवेदनशील होते हैं। हम यह सुनिश्चित नहीं कर सकते हैं कि बच्चा प्रौढ़ की अपेक्षा कितनी जल्दी और कितनी गहनता से पीड़ा महसूस करता है, परन्तु यह निस्संदेह सत्य है कि प्रौढ़ व्यक्तियों को कई पीड़ाएं भूतपूर्व अनुभवों के कारण अधिक तीव्र लगती हैं। इस प्रकार बच्चे की किसी पीड़ा के प्रति दृश्यमान असंवेदनशीलता इसके आंतर व्यवहार में परिलक्षित होती है इस बात को देखना काफी रुचिकर है। उदाहरण के लिए बच्चे बिना बेहोश किए गए ही और बिना किसी पीड़ा के सुन्नत को बर्दाश्त कर लेते हैं तथापि वे पीड़ा की अनुभूति से एकदम रहित नहीं होते। जन्म के प्रथम चार दिनों में और संभवतः बाल्यावस्था की एक लम्बी अवधि तक पीड़ा के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई संवेदनशीलता के साक्ष्य मिलते है। शूरमैन तथा रुबैक के अनुसार 12 से लेकर 50 वर्ष की अवस्था

अतिकल्पना

मानव मस्तिष्क की सहस्त्रों वर्षों की दार्शनिक छानबीन, आधी शताब्दी के चेतना संबंधी प्रयोगात्मक विश्लेषण तथा इसी तरह आधी शताब्दी के प्रयोगात्मक-व्यवहारात्मक विश्लेषण के बाजजूद 1970 के प्रारंभ तक अतिकल्पना के विषय में बहुत ही कम वास्तविक जानकारी उपलब्ध थी। इस विषय पर मनोविश्लेषणात्मक नैदानिक तथा कलात्मक रूप से तो बहुत कुछ लिखा जा चुका था परन्तु वैज्ञानिक रूप से बहुत कम लिखा गया था। क्लिन्गर ने पहली बार मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए गए उन सभी अनुसंधानों को क्रमबद्ध किया जो अतिकल्पना की संरचना और कार्य को अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं और इन्हीं अनुसंधानों के आधार पर किलन्गर ने अतिकल्पना का सिद्धान्त स्थापित किया। इस प्रकार उन्होंने क्रीड़ा और स्वप्न विषयों पर किए गए अनसंधान से विषय सामग्री को एक त्रित किया जो कि सैद्धांतिक रूप से अतिकल्पना के सदृश मानी गई है। उन्होंने अनुकूलन, विंबावली भाषा, वे गति कौशल जो अनुक्रिया घटकों के क्रम श्रृंखला पक्षों को उद्घाटित करते हैं, अभिप्रेरणात्मक स्थितियों पर अतिकल्पना की विषयवस्तु की निर्भरता के लिए अभिप्रेरणा तथा व्यक्त अतिकल्पना पर किए गए अनुसंधानों से प्राप्त सामग्री को भी एकत्र किया। क्लिन्गर द्वारा किए गए अनुसंधान से लेकर अब तक अतिकल्पना पर अनुसंधान जारी है। नीचे इन सभी की समीक्षा की गई है। इस समीक्षा से पहले अतिकल्पना की संकल्पना का विशदीकरण दिया गया है जिसे अनुसंधान में प्रयुक्त किया गया अथवा जिसका विकास आनुभविक अनुसंधानों में हुआ है। इसके अतिरिक्त अतिकल्पना के अध्ययन का एक संक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है।

अतिकल्पना की संकल्पना

अतिकल्पना एक आंतरिक मनोविज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें छोटे बच्चों के कृतक विश्वास, बड़े बच्चों, किशोरों और वयस्कों के दिवास्वप्न सम्मिलित होते हैं। हाल के अनुसंधानों से यह इंगित होता है कि रात्रिक स्वप्न तथा अतिकल्पना प्रक्रिया में उच्च अंतः संबंध होता है तथा दोनों में ही महत्वपूर्ण प्रभावी और संरचनात्मक घटक होते हैं तथा दिवा स्वप्नों में प्रेक्षित शैलीगत संगतियां रात्रिक स्वप्नों में भी दिखाई देती हैं। इसलिए इन शब्दों को अब क्रमशः जागृतावस्था अतिकल्पना और सुप्तावस्था अतिकल्पना कहा जाता है। बहुत छोटे बच्चे कई बार तथ्य और कल्पना में भेद नहीं कर पाते हैं इसीलिए कृतक विश्वास शब्द का निर्माण हुआ है। जैसे-जैसे

बच्चे बड़े होते जाते हैं उनकी विकासशील बुद्धि और बढ़ते हुए अनुभवों से यह संभव होता जाता है कि वे सत्य और असत्य में भेद कर पाते हैं (हारलॉक, 1974)।

अतिकल्पना एक सार्वभौमिक और व्यापक मानसिक क्रिया है जिस का सभी मानव आनन्द लेते हैं। 'निदेशित विचार' इसका विलोम है। यद्यपि कभी-कभी वयस्कों के लिए यह भेद करना कठिन होता है कि कब उनकी अतिकल्पनाएं समाप्त हो जाती हैं और कब भविष्य निदेशित विचार अथवा नियोजन प्रारम्भ हो जाता है। कभी-कभी दोनों प्रक्रियाएं विकिरित हो जाती हैं और संभवतः व्यक्ति की अपनी विचार-धारा में ही मिश्रित हो जाती हैं। तब ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों प्रक्रियाएं किसी एक सातत्यक की दो सीमाएं प्रदर्शित करती हैं। सामान्य व्यक्ति को अपने चिन्तन में इन दोनों में भेद करना कठिन हो जाता है। संकल्पनात्मक रूप से अतिकल्पना की घटना उस स्वतः स्फूर्ति मानसिक क्रिया का संकेत देती है, जो अधिकांशतः आंतरिक उद्दीपन द्वारा नियंत्रित होती है। इसके विपरीत निदेशित चिन्तन, सुविचारित, ताकिक, मूल्यांकनशील तथा वास्तविक जीवन स्थितियों में कार्य निष्पादन करने वाली क्रियायों के लिए एक उपकरण का कार्य करता है। एक संक्रियात्मक परिभाषा प्रस्तुत करते हुए क्लिन्गर (1971) का कथन है कि अतिकल्पना शब्द का अर्थ उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं की शाब्दिक रिपोर्ट है जिसके विचारात्मक उत्पादों का किसी मानसिक प्रक्रिया के बाहर वाले निकटस्थ उद्देश्य प्राप्त करने में सहायक होने की उपयोगिता के अर्थों में विषय व्यक्ति मूल्यांकन नहीं करता, अर्थात अतिकल्पना का अर्थ है बाह्य उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करने से भिन्न मानसिक क्रिया अथवा किसी कार्य स्थिति, के अंतगत समस्या समाधान जैसी क्रिया प्रसूत क्रिया। इस परिभाषा में दिवास्वप्न, मनोविलास और व्यक्त अतिकल्पना की रिपोर्ट सम्मिलित है।

दिवास्वप्न समायोजन की एक विधि है अथवा एक रक्षा तंत्र है। इसकी सहायता से व्यक्ति जो वास्तविकता में नहीं प्राप्त कर पाता है उसे वह कल्पना में प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह आत्म विश्वास प्राप्त करने में सहायक होते हैं अथवा व्यक्ति को अभाव के अनुभवों से सुरक्षित रखते हैं। तंत्र शब्द का अर्थ प्रक्रिया के अचेतन संचालन से है। एक सामान्य व्यक्ति अस्थाई रूप से दिवास्वप्न के बहाव में बह जाता है। परन्तु सभी कुंठायुक्त स्थितियों में इसका अभ्यासगत प्रयोग व्यक्ति को वास्तविक संसार से दूर खींच देता है। मनोविदलता एक गंभीर मानसिक रोग है जिसमें व्यक्ति वास्तविकता से दूर रहता है। प्रतिगमन का अर्थ है अतिकल्पना में विकास की प्रारंभिक अवस्था को दोबारा से जीना। अतिकल्पना में विरेचन गुण होता है। उदाहरण के लिए एक अपमानित व्यक्ति अपमान करने वाले व्यक्ति के प्रति अपने आक्रोश का प्रदर्शन दिवा स्वप्न में सफलतापूर्वक कर सकता है और इस प्रकार अपने मानसिक तनाव से मुक्त हो सकता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का मुक्त-

अतिकल्पना

मानव मस्तिष्क की सहस्त्रों वर्षों की दार्शनिक छानबीन, आधी शताब्दी के चेतना संबंधी प्रयोगात्मक विश्लेषण तथा इसी तरह आधी शताब्दी के प्रयोगात्मक-व्यवहारात्मक विश्लेषण के बाजजूद 1970 के प्रारंभ तक अतिकल्पना के विषय में बहुत ही कम वास्तविक जानकारी उपलब्ध थी। इस विषय पर मनोविश्लेषणात्मक नैदानिक तथा कलात्मक रूप से तो बहुत कुछ लिखा जा चुका था परन्तु वैज्ञानिक रूप से बहुत कम लिखा गया था। क्लिन्गर ने पहली बार मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए गए उन सभी अनुसंधानों को क्रमबद्ध किया जो अतिकल्पना की संरचना और कार्य को अभिव्यक्त करने में महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं और इन्हीं अनुसंधानों के आधार पर किलन्गर ने अतिकल्पना का सिद्धांन्त स्थापित किया। इस प्रकार उन्होंने क्रीड़ा और स्वप्न विषयों पर किए गए अनसंधान से विषय सामग्री को एक त्रित किया जो कि सैद्धांतिक रूप से अतिकल्पना के सदृश मानी गई है। उन्होंने अनुकूलन, विंबावली भाषा, वे गति कौशल जो अनुक्रिया घटकों के क्रम श्रृंखला पक्षों को उद्घाटित करते हैं, अभिप्रेरणात्मक स्थितियों पर अतिकल्पना की विषयवस्तु की निर्भरता के लिए अभिप्रेरणा तथा व्यक्त अतिकल्पना पर किए गए अनुसंधानों से प्राप्त सामग्री को भी एकत्र किया। क्लिन्गर द्वारा किए गए अनुसंधान से लेकर अब तक अतिकल्पना पर अनुसंधान जारी है। नीचे इन सभी की समीक्षा की गई है। इस समीक्षा से पहले अतिकल्पना की संकल्पना का विशदीकरण दिया गया है जिसे अनुसंधान में प्रयुक्त किया गया अथवा जिसका विकास आनुभविक अनुसंधानों में हुआ है। इसके अतिरिक्त अतिकल्पना के अध्ययन का एक संक्षिप्त इतिहास भी दिया गया है।

अतिकल्पना की संकल्पना

अतिकल्पना एक आंतरिक मनोविज्ञानिक प्रक्रिया है जिसमें छोटे बच्चों के कृतक विश्वास, बड़े बच्चों, किशोरों और वयस्कों के दिवास्वप्न सम्मिलित होते हैं। हाल के अनुसंधानों से यह इंगित होता है कि रात्रिक स्वप्न तथा अतिकल्पना प्रक्रिया में उच्च अंत: संबंध होता है तथा दोनों में ही महत्वपूर्ण प्रभावी और संरचनात्मक घटक होते हैं तथा दिवा स्वप्नों में प्रेक्षित शैलीगत संगतियां रात्रिक स्वप्नों में भी दिखाई देती हैं। इसलिए इन शब्दों को अब क्रमश: जागृतावस्था अतिकल्पना और सप्तावस्था अतिकल्पना कहा जाता है। बहुत छोटे बच्चे कई बार तथ्य और कल्पना में भेद नहीं कर पाते हैं इसीलिए कृतक विश्वास शब्द का निर्माण हुआ है। जैसे-जैसे

बच्चे बड़े होते जाते हैं उनकी विकासशील बुद्धि और बढ़ते हुए अनुभवों से यह संभव होता जाता है कि वे सत्य और असत्य में भेद कर पाते हैं (हारलॉक, 1974)।

अतिकल्पना एक सार्वभौमिक और व्यापक मानसिक क्रिया है जिस का सभी मानव आनन्द लेते हैं। 'निदेशित विचार' इसका विलोम है। यद्यपि कभी-कभी वयस्कों के लिए यह भेद करना कठिन होता है कि कब उनकी अतिकल्पनाएं समाप्त हो जाती हैं और कब भविष्य निदेशित विचार अथवा नियोजन प्रारम्भ हो जाता है। कभी-कभी दोनों प्रक्रियाएं विकिरित हो जाती हैं और संभवतः व्यक्ति की अपनी विचार-धारा में ही मिश्रित हो जाती हैं। तब ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों प्रक्रियाएं किसी एक सातत्यक की दो सीमाएं प्रदर्शित करती हैं। सामान्य व्यक्ति को अपने चिन्तन में इन दोनों में भेद करना कठिन हो जाता है। संकल्पनात्मक रूप से अतिकल्पना की घटना उस स्वतः स्फूर्ति मानसिक क्रिया का संकेत देती है, जो अधिकांशतः आंतरिक उद्दीपन द्वारा नियंत्रित होती है। इसके विपरीत निदेशित चिन्तन, सुविचारित, ताकिक, मूल्यांकनशील तथा वास्तविक जीवन स्थितियों में कार्य निष्पादन करने वाली क्रियायों के लिए एक उपकरण का कार्य करता है। एक संक्रियात्मक परिभाषा प्रस्तुत करते हुए क्लिन्गर (1971) का कथन है कि अतिकल्पना शब्द का अर्थ उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं की शाब्दिक रिपोर्ट है जिसके विचारात्मक उत्पादों का किसी मानसिक प्रक्रिया के बाहर वाले निकटस्थ उद्देश्य प्राप्त करने में सहायक होने की उपयोगिता के अर्थों में विषय व्यक्ति मूल्यांकन नहीं करता, अर्थात अतिकल्पना का अर्थ है बाह्य उद्दीपन के प्रति अनुक्रिया करने से भिन्न मानसिक क्रिया अथवा किसी कार्य स्थिति, के अंतगत समस्या समाधान जैसी क्रिया प्रसूत क्रिया। इस परिभाषा में दिवास्वप्न, मनोविलास और व्यक्त अतिकल्पना की रिपोर्ट सम्मिलित है।

दिवास्वप्न समायोजन की एक विधि है अथवा एक रक्षा तंत्र है। इसकी सहायता से व्यक्ति जो वास्तविकता में नहीं प्राप्त कर पाता है उसे वह कल्पना में प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यह आत्म विश्वास प्राप्त करने में सहायक होते हैं अथवा व्यक्ति को अभाव के अनुभवों से सुरक्षित रखते हैं। तंत्र शब्द का अर्थ प्रक्रिया के अचेतन संचालन से है। एक सामान्य व्यक्ति अस्थाई रूप से दिवास्वप्न के बहाव में बह जाता है। परन्तु सभी कुंठायुक्त स्थितियों में इसका अभ्यासगत प्रयोग व्यक्ति को वास्तविक संसार से दूर खींच देता है। मनोविदलता एक गंभीर मानसिक रोग है जिसमें व्यक्ति वास्तविकता से दूर रहता है। प्रतिगमन का अर्थ है अतिकल्पना में विकास की प्रारंभिक अवस्था को दोबारा से जीना। अतिकल्पना में विरेचन गुण होता है। उदाहरण के लिए एक अपमानित व्यक्ति अपमान करने वाले व्यक्ति के प्रति अपने आक्रोश का प्रदर्शन दिवा स्वप्न में सफलतापूर्वक कर सकता है और इस प्रकार अपने मानसिक तनाव से मुक्त हो सकता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का मुक्त-

तक पीड़ा की संवेदनशीलता में कोई अन्तर नहीं होता यद्यपि इस अवस्था के पश्चात् इसमें ह्रास हो जाता है। छोटा बच्चा स्पष्टतः उद्दीपन के प्रति प्रतिक्रिया करता है तथापि त्वचागत संवेदनशीलता भी आयु बढ़ने के साथ-साथ बढ़ती हुई प्रतीत होती है। उदाहरण के लिए वैन्ट ने 5 से 11 वर्ष की आयु वाले बच्चों के हाथों में स्पर्शगत संवेदनशीलता की शुरूआत का अध्ययन किया और यह पाया कि संवेदनशीलता इस अवस्था में बढ़ जाती है। उनके अनुसार इसमें लिंगगत अंतर भी होता है। लड़कियां अधिक संवेदनशीलता का परिचय देती हैं और कम अवस्था में ही संवेदनशीलता के वयस्क स्तर को प्राप्त कर लेती हैं।

गत्यात्मक विकास

गत्यात्मक समन्वय का विकास जो कि शुरू-शुरू में सरल प्रतिवर्तों के रूप में प्रदर्शित होता है,उद्दीपन के प्रति पेशीय अनक्रियाओं की अन्योन्यक्रियायों, पेशियों की वृद्धि और बढ़ती हुई शक्ति तथा अभ्यास के द्वारा समन्वय के विकास पर निर्भर करता हुआ प्रतीत होता है। ये सभी एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। अभ्यास के द्वारा पेशियां सशक्त होती हैं और इससे इनकी वृद्धि को बढ़ावा मिलता हैं। इससे अधिगम को, उदाहरण के लिए पठन, समझ और छोटी-छोटी वस्तुओं को काम में लेने के लिए आवश्यक आंख-हाथ के समन्वय में चाक्षुष और पेशीय इन्द्रियों क संकालिक उद्दीपन के माध्यम द्वारा बढ़ावा मिलता है। नवजात शिशुओं में यह समन्वय सिर-उठाना, शरीर की स्थिति के विभिन्न प्रकारों, घिसटना तथा अचानक पकड़ना जसी प्रतिवर्त अनुक्रियाओं में देखा जाता हैं। जल्दी ही एक और दो मास की अवस्था के बीच में हाथ पांव फैंकने के रूप में खिलवाड़ करते हुए हम उन्हें देखते हैं। जैसे-जैसे पेशियां अधिक सशक्त होती जाती हैं शिशु अपना सिर सीधा रखने में, अपने हाथ से सीना उचकाने में, चार मास की अवस्था होने पर करवट लेने म और पहले पहल सहारे से बैठने में और 6 मास का होते होते बिना किसी सहारे के (थोड़ी देर के लिए) बैठने में समर्थ हो जाता है। तीन मास का होते होते उसकी मुट्ठी बहुत कड़ी नहीं बंधी रहती है और वह छोटे खिलौने को इस तरह से पकड़ता है जो एकदम प्रतिवर्त नहीं रह पाता है। छह मास का बच्चा खिलौना पकड़ने के लिए एक हाथ बढ़ाता है (इससे पहले वह एक साथ दोनों हाथों का प्रयोग करते हुए किसी वस्तु को करीब खींचने की कोशिश करता है)। वह अपनी कलाई घुमाने, उंगलियों के सहारे अपने अंगूठे का आंशिक प्रयोग करनें में, पकड़ने में तथा मटर के दाने के बराबर छोटे-छोटे टुकड़ों को उठाने का प्रयत्न करने में प्रारंभिक कायिक समन्वय को प्रदर्शित करता है। आठ मास का बच्चा बिना किसी सहारे के काफी देर तक बैठा रहता है, थोड़ा-थोड़ा सरकना अथवा घिसटना शुरू कर सकता है और छोटी छोटी वस्तुओं को पूणतः अंगठे के सहारे से पकड़ने लगता है। नौ मास की अवस्था होने पर वह स्वयं उठकर

बैठ सकता है और अपने पालने की छड़ को पकड़ कर खड़ा भी हो सकता है। दस मास का बच्चा चुस्ती से सरकने लगता है और बहुधा सहारे से चल सकता है, बैठ सकता है और अपने दोनों हाथों को मिला सकता है। एक साल का बच्चा कुछ कदम बिना किसी सहारे के भी चल सकता है। अगले छह मास के दौरान वह गेंद को फेंक सकता है, पीछे की तरफ चल सकता है और सहारे से सीढ़ियों पर चढ़ और उतर सकता है। दो साल का बच्चा बिना कुछ पकड़े हुए सीढ़ियों पर चढ़ और उतर सकता है और तीन साल का होने पर वह छोटी-छोटी ऊंचाइयों से कूद सकता है, भागता, पंजों के बल चल सकता है। चार साल का बच्चा एक सीधी रेखा में चल सकता है और एक ही पैर के बल पर कुछ कदम चल सकता है।

व्यक्तिगत विभिन्नताएं

जिस अवस्था में बच्चे इन सब बातों को कर सकने में समर्थ होते हैं उनमें और उनकी कुशलता तथा गत्यात्मक समन्वय की सहजता में निश्चय ही काफी वैयक्तिक अंतर होते हैं तथा उनकी कुशलताओं में काफी विशिष्टता भी होती है। निश्चय ही कुशलता पूर्वक किए जाने के लिए प्रत्येक गत्यात्मक कार्य में काफी अभ्यास की आवश्यकता होती है।

गेंद को पकड़ने की क्षमता से ही ऊंची कूद अथवा दूर की कूद विषयक क्षमता का अनुमान नहीं किया जा सकता है। उदाहरण के लिए बेले ने यह पता लगाया कि $4\frac{1}{2}$ से 12 वर्ष की अवस्था के बच्चों के हस्त कौशल के दस परीक्षणों के प्राप्तांकों का शक्ति से कोई संबंध नहीं था और कूदने में प्राप्तांकों से उसका सहसंबंध .40 था (तीन परीक्षणों का योग) तथा संतुलन में प्राप्ताकों से उसका सहसंबंध .28 था। अधिकांशतः इस आयु में कूदने, संतुलन और शक्ति के प्राप्तांक एक दूसरे के साथ .30 के आसपास सहसंबंधित होने लगते हैं। इसी प्रकार ऐस्पेन्शेड ने पता लगाय कि 13 से 17 वर्ष के बच्चों के लिए स्थूल और सूक्ष्म गत्यात्मक कौशलों के बीच कोई संबंध नहीं होता यद्यपि इसी प्रकार की स्थूल गत्यात्मक क्रियाएं सामान्य रूप से परस्पर संबंधित थीं। उदाहरण के लिए, तेजी से कूदने के प्राप्तांक सामान्यतः .60 के आस पास दूर की कूद के साथ .40 के आसपास कूद और पहुंच के साथ, और .40 के आसपास दूर की फेंक के साथ सह संबंधित थे।

कुछ गत्यात्मक परीक्षण विषयक प्राप्तांक कालक्रम में कितने अनुरूप रह पाते हैं यह दर्शाने वाले सहसंबंध छोटे बच्चों के विषय में केवल औसत दर्जे के होते हैं। उदाहरण के लिए वर्कले वृद्धि अध्ययन में बेले ने यह पता लगाया है कि 27 और 30 मास की अवस्था में प्राप्तांकों के सहसंबंध प्रथम दो वर्षों में छोटी अवस्था के 6 स्तरों पर प्राप्तांकों के साथ .40 से नीचे हैं और इसमें दो अपवाद हैं। आगे की आयु में 4 और 12 वर्ष के बीच में कायिक स्फूर्ति परीक्षण विषयक बर्कले-बाल-प्राप्तांक पुनः

केवल कालानुगत औसत दर्जे की अनुरूपता दिखाते हैं। डेढ़ वर्ष की आयु के परीक्षण प्राप्तांकों ने साढ़े चार वर्ष की आयु के प्राप्तांकों के साथ .29, साढ़े पांच वष की आयु के .50, साढ़े 6 वर्ष की आयु के .49, साढ़े सात वर्ष की आयु के .55 और साढ़े 8 वर्ष की आयु के साथ .49 सहसंबंध दिखाए। ऐस्पेन्शेड ने 13 और 17 वर्ष की आयु के बीच 6 मास के अंतराल पर परीक्षित 160 बच्चों को अनेक गत्यात्मक परीक्षण से परीक्षित किया। अनेक बच्चों के विषय में 4 साल की अवधि के दौरान अच्छी खासी मात्रा में अनुरूपता पाई गई। ग्लेस्सों और क्रूस के अनुसार भी 6 से 14 वर्ष की आयु वाली लड़कियों के सापेक्ष प्राप्तांकों में ऐसी ही स्थिरता पाई गई है। इनमें दौड़ने और कूदने के प्राप्तांक फैंकने के प्राप्तांकों की अपेक्षा अधिक स्थिर होते हैं। ऐसे मामलों में अस्थिरता का कारण यह भी हो सकता है कि किशोरावस्था के बच्चों के विषय में प्राप्तांकों का संबंध उनकी शारीरिक पुष्टता और शक्ति की मात्रा पर भी निर्भर करता है।

जैसा कि गत्यात्मक योग्यताओं के मानक परीक्षणों के प्राप्तांकों द्वारा मापा गया है शैशवावस्था और बाल्यावस्था के दौरान गत्यात्मक कौशल लगातार बढ़ते हुए देखने में आते हैं। यह वृद्धि सबसे अधिक पहले 18 मास के दौरान होती है इसके बाद इसकी गति धीरे-धीरे कम होती जाती प्रतीत होती है।

लिंगगत अंतर

प्रथम 12 वर्ष की अवधि में गत्यात्मक परीक्षण के प्राप्तांकों में कोई लिंगगत अंतर नहीं होता। तथापि इस अवस्था के बाद लड़कियों के प्राप्तांक स्थिर होने लगते हैं जबकि लड़कों के प्राप्तांक बढ़ते रहते हैं। लड़कों के प्राप्तांकों में यह सतत वृद्धि उनकी शक्ति में सतत वृद्धि के साथ सहसंबंधित है तथा कुल गत्यात्मक योग्यताओं में शक्ति और प्राप्तांक दोनों ही लड़कों के विषय में उनकी कायिक परिपक्वता की मात्रा के साथ सहसंबंधित हैं। जिनका वयस्कता विषयक विकास त्वरित होता है वे मन्द गति से परिपक्वता प्राप्त करने वाले अपने समकक्षों की अपेक्षा कुल गत्यात्मक समन्वय के विषय में अधिक दृढ़ और अधिक कुशल होते हैं। यह भी सही है कि अधिक बलिष्ठ शरीर वाले लड़के उन लड़कों की अपेक्षा अधिक मजबूत होते हैं जिनका कि शरीर कम बलिष्ठ होता है।

विशिष्टता

सामान्य तौर से आयु के प्रथम 15 मास के पश्चात गत्यात्मक कौशलों में अधिक विशिष्टता आ जाती है। यह भी जाहिर है कि गत्यात्मक कौशल अभ्यास और प्रशिक्षण के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं। यह बात बहुत कम अवस्था वाले बच्चों के विषय में भी स्पष्ट रूप से जाहिर होती है। कायिक शक्ति की सामान्य सीमा के अंतर्गत विशिष्ट गत्यात्मक कौशलों को अभ्यास के द्वारा पर्याप्त रूप से बढ़ाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. बेले, नैनसी 1933, प्रथम तीन वर्षों की अवधि में मानसिक वृद्धि : दोहराए जाने वाले परीक्षणों द्वारा इकसठ बच्चों का विकासात्मक अध्ययन, जैनेटिक साईकॉलोजी मोनोग्राफस 1-4 नं. ।

2. बेले, नैनसी 1935, प्रथम तीन वर्षों की अवधि में गत्यात्मक योग्यताओं का विकास, वाशिंगटन : सोसाइटी फॉर रिसर्च इन चाइल्ड डेवलपमेंट ।

3. बेले, नैनसी 1939, दो से बारह वर्ष की अवधि में मानसिक तथा गत्यात्मक विकास, रिव्यू ऑफ एजुकेशनल रिसर्च 9 : 18-37, 114-125 ।

4. ब्राऊन, सी. ए; 1961 शिशु और छोटे बच्चे में दृष्टि क्षमता का विकास, सेरीब्रेल पाल्सी, बुलेटिन 3: 364-372 ।

5. क्लार्क, एच. हेरीसन, तथा हेरीसन, जेम्स सी. ई. 1962, विकसित सामान्य तथा मंदित परिपक्वता वाले लड़कों के शारीरिक तथा गत्यात्मक विशेषकों के बीच अंतर, स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन का अमरीकी संघ, रिसर्च क्वाटर्ली 32 : 163-176 ।

6. इकोरन, डोरथी एच. 1963 बाइनोजीकल कोरिलेट्स ऑफ बिहेवियर, वोल्यूम 62, पृष्ठ 4–61, नेशनल सोसाइटी फॉर द स्टडी ऑफ एजुकेशन, वार्षिक पुस्तक भाग-I बाल मनोविज्ञान, शिकागो यूनिवर्सल प्रेस ।

7. एस्पेंनशेड, एना. 1947, गत्यात्मक विकास, रिव्यू ऑफ ऐजुकेशनल रिसर्च 17 : 354-361 ।

8. फैन्टज, रोबर्ट एल. 1958, छोटे शिशुओं में प्रतिरूप दृष्टि, साइक्लोजीकल रिकॉर्ड 8: 43-47 ।

9. गोवेटोस, लुईस, ए. 1959, वृद्धि माप तथा गत्यात्मक कौशलों में संबंध तथा आयु अंतर, बाल विकास 30:333–40.

10. जोन्स, हैरल्ड ई. 1944, शारीरिक योग्यताओं का विकास, वोल्यूम 43. पृ. 100-122, नेशनल सोसाइटी फॉर द स्टडी ऑफ ऐजुकेशन, वार्षिक पुस्तक, पार्ट I किशोरावस्था, शिक गो यूनियन, प्रस ।

11. लिपसिट, लेविस पी. तथा लेवीनिसीम 1959, इलेक्ट्रोटैक्चुअल थ्रेशहोल्ड इन द ब्यूनेट, बाल विकास 30:547-554.

12. वेबर, अरनेस्ट जी. 1949, थ्योरी ऑफ हियरिंग, न्यूयार्क : विले ।

13. व्हाइट, वर्तन एल., कासल, पीटर, तथा हैल्ड, रिचर्ड 1964, दृष्टि निदेशित पहुंच के विकास का निरीक्षण, बाल विकास 35 : 349-364 ।

साहचर्य तकनीक रोगी की अतिकल्पना को दबे हुए संवेगों को मुक्त करने तथा दमित अनुभवों को स्मृति में फिर से लौटाने के लिए प्रयोग करता है। यह कहना चाहिए कि उसका चिकित्सात्मक मूल्य है।

सभी प्रकार के दिवास्वप्नों को दो प्रमुख वर्गों में बांटा जा सकता है, यथा-विजयी नेता' प्रकार जिसमें स्वप्न दृष्टा अन्य व्यक्तियों के ऊपर अपनी वरिष्ठता स्थापित करके अपने अहम् को सहारा देता है तथा 'पीड़ित नेता' अथवा 'शहीद' प्रकार जहां स्वप्नदृष्टा आत्मसहानुभूति से संतोष प्राप्त करता है।

मनोविलास कल्पना में व्यक्ति उद्देश्यहीन विचारों की शृंखला में मग्न होता है। मनोविलास उकताहट अथवा अधिक थकान के प्रति प्रतिक्रिया होती है, जबकि दिवा-स्वप्न कुंठा के प्रति प्रतिक्रिया होती है और वह प्रयोजनपूर्ण होते हैं। मनोविलास कल्पना एक प्रकार का मानसिक विश्राम होता है जबकि दिवास्वप्न तनाव कम करने की युक्ति है। किसी भी अतिकल्पना प्रक्रिया में दोनों का विकिरण हो सकता है।

किसी भी व्यक्त अतिकल्पना का अर्थ है एक मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रस्तुत उद्दीपन के द्वारा व्यक्त की गई अतिकल्पना। ये उद्दीपन या तो प्रक्षेपी परीक्षण हो सकते हैं या अतिकल्पना के अध्ययन के संक्षिप्त ऐतिहासिक वर्णन के आधार पर निकाली गई निम्नलिखित अन्य सामग्री।

संपुट इतिहास

विलन्गर (1971) ने संत आगस्टीन द्वारा उल्लेखित आंतरिक अनुभव की प्रणालीबद्ध छानबीन करके अतिकल्पना का उद्गम निकाल कर उसकी जांच करने का प्रयास किया। उनकी जांच 'निदेशित विचार' के अंतर्गत आती है, क्योंकि उसका फोकस भावना और आवेग के गहनतम तत्वों को उजागर करने के उद्देश्य से आत्म-विश्लेषण अथवा आत्मपरीक्षण करने पर होता है। यदि आत्म विश्लेषण को अतिकल्पना के अध्ययन का पूर्वपद मान लिया जाए तो आत्म परीक्षण की विधि में उसका इतिहास वैदिक काल में पाया जा सकता है। परन्तु ये परीक्षण विधियां अधिक मानसिक शक्ति प्राप्त करने अथवा एकाग्रचित होने की क्षमता प्राप्त करने या आगस्टीन और भारतीय ज्ञानमार्गियों द्वारा प्रस्तावित विश्व के संबंध में अधिक जानकारी के लिए सहायक होती हैं।

मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहारात्मक घटना के रूप में अतिकल्पना का औपचारिक अध्ययन फ्रांसिस गाल्टन द्वारा प्रतिपादित बिंबावली में व्यक्तिगत भेदों के अध्ययन से प्रचलित है। यद्यपि स्वंय बिंबावली का जांच के क्षेत्र के रूप में एक पृथक इतिहास

है। इस तथ्य ने कि अतिकल्पना व्यवहार में किसी प्रकार की बिबावली सम्मिलित होती है, गाल्टन को ऐसे विषयों पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया जिसमें व्यक्तियों की आंतरिक निजी संरचनाओं में भेद निहित होते हैं। 1890 तक विलियम जेम्स ने अपनी महान कृति 'द प्रिंसिपल्स ऑफ साइकोलोजी में कई अध्यायों में तथा विशेष प्रसिद्ध अध्याय' 'स्ट्रीम ऑफ थाट' में भी अतिकल्पना प्रक्रियाओं से संबंधित विषयों पर विचार व्यक्त किए हैं। जीवित प्राणियों के मस्तिष्क के स्वतः उद्दीपक क्रियाशील गुणों की सामान्य विशिष्टता और विक्षिप्त मनुष्य की विभ्रान्ति अथवा बेतुकी भ्रान्ति या धार्मिक रहस्यवादियों की प्रेरणात्मक दिव्यदृष्टि के बीच निरन्तरता के भाव को समझने का काम सबसे पहले जेम्स ने किया जिनकी गणना महान मनोविज्ञानिकों में की जाती है।

वर्ष 1913 से लेकर 1960 तक, जब कि वाटसन ने मानसिकतावाद पर एक प्रबल कार्य प्रारंभ किया था, आंतरिक अनुभव की जांच के ऐतिहासिक स्थगन के कारण अतिकल्पना के अध्ययन को प्रारंभिक अवस्था में ही गंभीर धक्का लगा था। पुनः परिभाषित मनोविज्ञान यथा–जेम्स का 'मानसिक जीवन का विज्ञान', वाटसन के 'व्यवहार विज्ञान' में परिवर्तित हो गया। व्यवहारवादी और नवव्यवहारवादी आन्दोलन के फलस्वरुप मनोवैज्ञानिक ज्ञान और प्रणाली–विज्ञान में 'आश्चर्यजनक प्रगति' हुई परन्तु इसका दुष्प्रभाव हुआ और क्लासिकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं की सापेक्षतः उपेक्षा हुई। उपेक्षित क्षेत्रों में मुख्य अतिकल्पना की घटना थी। 1966 तक किसी भी लेखक के नाम से संयुक्त राज्य अमेरिका में एक भी पुस्तक नहीं छपी जिसमें पूर्ण रूप से अतिकल्पना की प्रणालीबद्ध जांच की गई हो। अन्य देशों में जो कुछ पुस्तकें छपीं थी उनमें अतिकल्पना के अतिरिक्त अन्य घटनाओं पर कार्य किया गया।

मनोवैज्ञानिक लौंग की पुस्तक 'क्लैक्टेड पेपर्स ऑन द साइकालोजी ऑफ फैन्टेसी' (1921) युग के विश्लेषणात्मक सिद्धांतों की ही मुख्यतः व्याख्या है। वैरेन्डॉन्क की पुस्तक 'साइकॉलोजी आफ डे ड्रीम्स' (1921) में उन्होंने अपने अतिकल्पना अनुभवों में अन्तर्निरीक्षणात्मक सिद्धांत को लागू कर दिया है तथा ग्रीन की पुस्तक 'द डे ड्रीम' (1923) में दिवास्वप्न की विकासात्मक अवस्थाओं को वृतांतों के प्रमाण देकर उल्लिखित किया गया है। केवल अतिकल्पना की ही मनोवैज्ञानिक जांच पर लिखी गई प्रथम अमरीकी पुस्तक और वैरेन्डॉन्क के बाद से इस प्रकार का पहला काम क्लिन्गर 'नेडे ड्रीमिंग' (1966) नामक पुस्तक लिख कर किया।

क्लिन्गर ने लिखा है कि 1960 के दशक के मध्य में इस कार्य का स्थगन समाप्त हो गया। अमरीकी व्यवहारवादी आन्दोलन की मनोवृत्ति में परिवर्तन आया और अब उनका ध्यान 'उपेक्षित समस्याओं' की ओर आकर्षित होने लगा। 1968 में अमरीकी मनोवैज्ञानिक संघ के सम्मेलन में "दि अनफिनिश्ड बिज़िनेस ऑफ विलियम जेम्स" और "व्हाट एवर हैपन्ड टू द विल इन अमेरिकन साईकॉलोजी", नामक विषयों पर चर्चा हुई। अन्त में अतिकल्पना की संरचना और कार्यों पर विस्तृत और गहन कार्य क्लिन्गर द्वारा किया गया और वह 1971 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद से आज तक अतिकल्पना पर अनुसंधान उसी प्रकार हो रहा है जैसा कि अमरीकी मनोविज्ञानिक सार–विवरणी से ज्ञात होता है। अधिकांश सूचीबद्ध अनुसंधानों में अतिकल्पना को सुरक्षा के रूप में लिया गया है। अन्य अनुसंधानों में एक महत्वपूर्ण अध्ययन अतिकल्पना, सृजनात्मक और अनुरूपता (अंगरक्षा, 1976) पर है तथा एक अतिकल्पना की संज्ञानात्मक शैली (स्टारकर, 1973) से संबंध पर है, जिसकी कि अभी तक गवेषणा नहीं हुई है। वर्ष 1975 में डैली ने एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसका विषय था पुरुष और स्त्रियों की अतिकल्पना किस प्रकार उनके व्यवहारिक जीवन पर प्रभाव डालती है'। बारबरा बैरीटीन ने स्त्रियों की लैंगिक अतिकल्पानाओं पर अनुसंधान किया है और उनको सूचीबद्ध किया है।

मनोविश्लेषणात्मक योगदान

यद्यपि बिंबावली और बिंबविहीन विचार की संभाव्य विद्यमानता के संदर्भ में मनोविज्ञान के क्षेत्र में उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के मध्य में पर्याप्त अनुसंधान और विवाद हुआ है फिर भी सहजरूप से उत्पन्न बिंब मनोग्रंथि के रूप में दिवास्वपन पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। उस काल में अतिकल्पना प्रक्रियाओं और स्वप्नों में रुचि की सीमा केवल नैदानिक मनोचिकित्सक विशेषकर मनोविश्लेषणाविद तक रह गई थी। विशिष्ट आत्म प्रेक्षण और गंभीर नैदानिक कार्य पर मुख्यतः आधारित रात्रिक स्वप्नों की संरचना और व्याख्यात्मक संभाव्यताओं के फ्रायड द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण के फलस्वरुप अन्य स्वप्नानुमा घटनाओं जैसे दिवास्वप्न की छानबीन भी हुई। फ्रायड ने जब यह अनुभव किया कि रोगियों द्वारा बतलाए गये शशव कालीन विलोभन (जिसका उन्हें विश्वास था कि वे तंत्रिकातापी विकास के आधार हैं) कभी संभव नहीं हो सकते थे तब इस प्रकार की अध्ययन सामग्री के स्रोत के रूप में वह शैशवकालीन अतिकल्पना पर अधिक ध्यान देने के लिए बाध्य हो गए। मनोविश्लेषणाविद् की मुक्त साहचर्य-प्रक्रिया में भी अतिकल्पना अथवा दिवास्वप्न का विवरण प्राप्त होने लगा। इनमें तकनीकी मनोचिकित्सात्मक अर्थों में सबसे महत्वपूर्ण अतिकल्पना अथवा दिवास्वप्न वह है

जिनमें विश्लेषणविद् और रोगी के बीच संबंध निहित होता है। इस कारण कई मनोविश्लेषणविदों ने रोगियों के दिवास्वप्नों पर अधिक ध्यान दिया और कुछ मामलों में तो वे रोगियों की अतिकल्पनाओं की अभिव्यक्ति पर तब प्रयोग करने लगे जब वे रात्रिक स्वप्नों को पुनः स्मरण करने में असमर्थ थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में फ्रायड ने भी अपने शोध पत्रों 'दिवास्वप्नों से कवि का संबंध' तथा 'मानसिक कार्यात्मकता के दो सिद्धांतों का प्रतिपादन' में दिवास्वप्नों के मनोवैज्ञानिक महत्व पर चिन्तन किया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में मनोविश्लेषणविदों ने स्वतःस्फूर्त अतिकल्पनाओं की रिपोर्टों का नियमित रूप से उपयोग किया और कई शोध पत्र प्रकाशित किए जिनमें पौराणिक कथाओं अथवा लोकप्रिय कहानियों और साहित्य को अतिकल्पना के रूप में दिया गया था।

प्रक्षेपी विधियां

बच्चों द्वारा कही गई कहानियों या उनके द्वारा चित्रित चित्रों के माध्यम से उनकी अतिकल्पनाओं का अध्ययन करने का प्रयास किया गया परन्तु अतिकल्पना के सबसे प्रभावशाली मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथाकथित प्रक्षेपी प्रविधियों के विकास से ही प्रारंभ हुए हैं।

रोर्शा प्रविधि

प्रक्षेपी विधियों में सबसे प्रमुख और प्रसिद्ध स्विटजरलैंड के मनोचिकित्सक हर्मन रोर्शा द्वारा विकसित रोर्शा स्याही धब्बा प्रविधि थी। उनकी विशेष रुचि अपनी इस खोज में थी कि जिन व्यक्तियों को स्याही के धब्बों में विभिन्न 'मानव गति' करने वाले व्यक्ति, जैसे 'दो झुके हुए अर्दली' और 'दो नाचती हुई महिलाएं' दिखाई दीं, उनमें एक ओर तो पर्याप्त गतिरोध अथवा विचित्र गतिशीलता और दूसरी ओर 'आंतरिक जीवन' जैसे कल्पना अथवा अतिकल्पना के लिए उच्च क्षमता थी। इसके विपरीत विभिन्न रंगों को प्रधानता देने वाली अनुक्रियाएं उत्पन्न करने वाले व्यक्ति अधिक बर्हिमुखी, गति रूप से प्रभावशाली और संवेगात्मकतः अस्थिर थे। मानव गति और रंग अनुक्रियाओं के मेल से रोशां द्वारा तथाकथित 'अनुभव प्रकार' का संकेत मिला, जिसमें अतिकल्पना व्यवहार तथा आन्तरिक जीवन की क्षमता का सापेक्षतः रागात्मकता वृत्तियों और प्रत्यक्ष क्रिया से संतुलन था।

रोर्शा विधि का कुछ संशोधित रूप यूरोप में धीरे-धीरे फैल गया। डैविड लेवी तथा सैम्युल बैक द्वारा 1920 के दशक के अंत में और 1930 के दशक

के प्रारंभ में संयुक्त राज्य अमरीका में चलाया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान संयुक्त राज्य अमरीका में इस विधि को नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने अपना लिया। इन्होंने इस विधि को रोगियों से बिना प्रत्यक्ष प्रश्न पूछे उनके निजी अतिकल्पना जगत को खोजने वाला तथा परिमाणीकृत की जाने वाली व्यवहारात्मक सामग्री को व्यक्त करने वाला साधन पाया। इस प्रकार नैदानिक मनोविश्लेषणविदों और मनोचिकित्सा के विशुद्ध गुणात्मक दृष्टिकोण के प्रति शिक्षा मनोविज्ञान की आपत्तियों का कुछ सीमा तक यह विधि समाधान करती है। रोर्शा तकनीक पर विश्वविद्यालयों में और निजी गोष्ठियों में अधिक औपचारिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों को लागू करने से तकनीक की विशेषताओं को जांचने अथवा संस्कृतियों, मनोवैज्ञानिक समूहों की तुलना करने अथवा स्याही धब्बों के प्रति व्यक्त अतिकल्पना अनुक्रिया के प्रयोग से व्यक्तिगत भेद की मात्रा जानने के लिए पर्याप्त प्रणालीबद्ध अनुसंधान हुआ। इस क्षेत्र में किए गए अधिकांश कार्य का संक्षेप तथा रोर्शा विधि के प्रयोग में काम आने वाले विधि-संबंधी और सैद्धांतिक विषय रिकर्स – ओवसियानकिना (1960) द्वारा संपादित 'रोर्शा मनोविज्ञान' नामक पुस्तक में उपलब्ध है। रोर्शा की प्रस्थिति को एक वैद्य सिद्धांत और परीक्षण के विज्ञान सम्मत साधन के रूप में जांचने के विशिष्ट उद्देश्य को पूर्ण करने वाली हर्ट (1962) द्वारा संपादित एक "रोर्शा साइन्स" नामक पुस्तक है।

कथानक संप्रत्यक्षण परीक्षण

सामान्य व्यक्तित्व के स्वरूप का अध्ययन करने के लिए 1930 के दशक के प्रारंभ में हार्वर्ड विश्वविद्यालय की मनोविज्ञानिक निदानशाला में हैनरी ए. मुरे के नेतृत्व में मनोवैज्ञानिकों के एक समूह ने व्यक्त-अतिकल्पनाओं का प्रयोग करके विभिन्न तकनीकों का गहन अध्ययन अपने हाथ में लिया। इसके फलस्वरूप जो विशिष्ट तकनीक निकाली गयी वह थी मुरे का कथानक संप्रत्यक्षण परीक्षण। इस विधि से तस्वीरों जैसे एक लड़के की तस्वीर जो सामने मेज पर रखे वायलिन को ताक रहा है, के प्रति कल्पनात्मक कहानियां अभिव्यक्त कराई जाती हैं। 20 चित्रों की श्रृंखला में से प्रत्येक चित्र पर दी गई कथा का कथा-वस्तु में सन्निहित अभिप्रेरणात्मक पैटर्न के संदर्भ में विश्लेषण किया गया जो वस्तुतः मनोविश्लेषक व्याख्यात्मक विविधों का अनुप्रयोग ही था, संभवतः जिसे अधिक व्यवस्थित, परिमाणित और अनुसंधान की अपेक्षाओं के अनुकूल माना गया।

उपचार, उद्योग और अनुसंधान आदि के लिए मूलभूत विधि में चित्र की विषय-वस्तु और प्राप्तांक वर्गीकरण में संशोधनों के साथ यह विधि आज भी व्यापक रूप से प्रयुक्त होती है। व्यक्त अतिकल्पना निर्मितियों में अभिप्रेरणात्मक प्रतिरूपों

की प्राप्ति, डेविड मैक्लीलैंड, जॉन एटकिन्सन तथा अतिकल्पना के माध्यम से उपलब्धि अभिप्रेरणा के अनेक विद्यार्थियों द्वारा किए गए अध्ययन में विशेष रूप से सहायक रही है। उपलब्धि और संबंधन जैसे अभिप्रेरणों के लिए उपलब्ध सापेक्षतः प्रक्षेपी प्राप्तांकन तकनीकों के कारण और निर्णायकों की उच्च विश्वसनीयता के कारण प्रणालीबद्ध अनुसंधान में आवश्यकता अथवा अभिप्रेरणा की अतिकल्पना अभिव्यक्ति के रूप में कथा सामग्री के अंकन के लिए रोशा विधि की तुलना में कथानक संप्रत्यक्षण परीक्षण अथवा उससे संबंधित विधियों का अधिक व्यापक रूप से प्रयोग होता है।

अन्य प्रक्षेपी विधियां

नैदानिक प्रैक्टिस में तथा कम मात्रा में औपचारिक अनुसंधान में अतिकल्पना अभिव्यक्ति के विभिन्न प्रकार के तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। इन विधियों में निम्नलिखित तकनीक सम्मिलित हैं यथा–विभिन्न चित्रकारी प्रक्रियाएं जैसे उंगली से पेंटिंग बनाना, अधूरे वाक्यों या 'अपनी तीन इच्छाएं बताइए' जैसे वाक्यों के प्रति अभिव्यक्त अनुक्रियाएं, मौज़ेक पैटर्न बनाना, विभिन्न प्रतीकात्मक वस्तुओं का चयन तथा कठपुतली का खेल आदि। इन सभी विधियों से यह एक सामान्य अनुमान लगाया जाता है कि एक प्रतिष्ठित व्यक्तित्व प्रवृत्ति या शैली तथा अभिप्रेरण प्रतिरूप या बेतुके विचार और विकृति विज्ञान इस प्रकार की अर्ध–अतिकल्पना अभिव्यक्तियों में व्यक्त होंगे। इन प्रेक्षपी तकनीकों के प्रचुरता से प्रयोग के बावजूद भी, अभी तक कोई ऐसा तकनीक नहीं है जो व्यापक रूप से प्रयुक्त होता हो और जो पर्याप्त प्रणालीबद्ध प्रयोग के फलस्वरूप बना हो और जिसने अपने व्यापक अनुप्रयोग के कारण इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया हो। किसी किसी नैदानिक मनोवैज्ञानिक को अपने अनुभवों या विशेष तकनीकों से निष्कर्ष निकालने का गुण प्राप्त होता है, परन्तु इस प्रकार के व्यक्तिगत गुण से सामान्यतः मनोविज्ञान ज्ञान को कोई लाभ नहीं होता।

इस स्थिति के आधार पर चित्रकला को बच्चों के लिए एक वैज्ञानिक प्रक्षेप प्रविधि बनाने का प्रयास किया गया। धोंडियाल ने (1964) के प्रयोग के अंतर्गत कुछ कारकों को स्थिर रखकर (उदाहरणार्थ आयु और लिंग) 100 बच्चों (50 सामान्य + 50 अवसामान्य) के व्यक्तित्व के अध्ययन किए। इनमें सुसमायोजित लड़कों का एक नियंत्रित समूह और विभिन्न प्रकार के कुसमायोजित समूह थे। बच्चों की अतिकल्पना की अभिव्यक्ति चित्र बनाने के एक खेल द्वारा कारवाइ गई तथा इसमें बच्चों से उनके मन में आने वाले भाव और रुचि का कुछ भी

चित्र बनाने को कहा गया। कला सामग्री उनके सामने पहले से ही रखी थी। इस प्रकार बनाए गए चित्रों को स्वतः स्फूर्त कहा गया। कला कार्य करते समय उनकी अतिकल्पनाओं को जानने के लिए कथानक संप्रत्यक्षण प्रविधियों के आधार पर पूछताछ की गई। .8 से 1.0 अन्तर–प्राप्तांकन विश्वसनीयता वाली एक अंक देने वाली प्रणाली निकाली गई। विपरीत समूहों के द्वारा बनाई गई कला निर्मितियों की सांख्यकीय तुलना के आधार पर एक व्याख्यात्मक नियमावली बनाई गई। सामान्यताओं के निष्पादन के लिए आधार रूप में तर्क शास्त्र का भी प्रयोग किया गया। संग्रहण-पुनः संग्रहण (अर्थात् परीक्षण पुनः परीक्षण) और आंतरिक संगति विधियों का प्रयोग कर विश्वसनीयता निर्धारित की गई। रोर्शा, सी. ए. टी. और आई. एस. बी तथा विशेष रूप से निर्मित प्रश्नावलियों जैसी बाह्य कसौटियों के परिणामों का प्रयोग कर उसकी विश्वसनीयता स्थापित की गई। चूंकि विपरीत समूह बनाए गए थे इसलिए प्रसरण के विश्लेषण का प्रयोग करके विभिन्न प्राप्तांक वर्गों के विभेदात्मक मूल्यों का आकलन किया गया।

प्रयोगात्मक उपागम

हाल में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत में विशिष्ट सैद्धांतिक विकासों तथा मनोविज्ञान और तंत्रिका शरीर विज्ञान में अनुसंधान की प्रगति के फलस्वरूप बिबावली अथवा अतिकल्पना और दिवास्वप्न के स्वरूप के अध्ययन में प्रयोगात्मक प्रयासों पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। नए तकनीकों में प्रयोग पात्र के संवेदनात्मक पृथक-करण के दौरान विद्युत शरीरक्रियात्मक मापन अथवा प्रणालीबद्ध जांच सम्मिलित है। इसमें विशेष औषधि के प्रभाव से अथवा परिवीक्षण या सतर्क कार्य के दौरान् सामान्य वयस्क की 'विचारधारा' के अध्ययन को अधिक परिष्कृत बनाया गया है। इस क्षेत्र में हाल में हुई प्रगति का सार होल्ट (1964) तथा सिगर (1966) की पुस्तक में दिया है।

प्रचलित सिद्धान्त और संबद्ध अनुसंधान

सामान्य वयस्क और बालकों की अतिकल्पना के विस्तार और विभिन्नता तथा विभिन्न सांस्कृतिक समूहों में दिवास्वप्नों की संरचना, बारंबारता और संकल्पना में भेदों के विषय में बहुत कम जानकारी है। फिर भी, मुख्यतः मनोविश्लेषण के क्षेत्र से व्यक्ति के दिवास्वप्नों के अर्थ ग्रहण के संबंध में एक प्रारंभिक सैद्धांतिक सूत्र उत्पन्न हुआ है। अनुसंधान से अतिकल्पना के सिद्धांत के प्रभावों की जांच के लिए किए गए उन प्रयासों का पता लगता है जो कि मुख्यतः फ्रायड के विशिष्ट सूत्रों से निकाले गए हैं।

सुरक्षात्मक अथवा विरेचक मॉडल

फ्रायड की अधिक आकर्षित अन्तर्दृष्टियों में से एक उसका यह प्रक्षण था कि परितोषण में देरी मनुष्य की अनुकूली विकास में एक महत्वपूर्ण चरण है और व्यक्ति की कल्पनात्मक क्षमता के साथ संबधित है। विचार अथवा अतिकल्पना तथा नियंत्रण तंत्रों के बीच संबंध की दो सामान्य संकल्पनाएं फ्रायड के शोध कार्य में तथा मनोविश्लेषणात्मक जांचकर्त्ताओं अथवा उन अधिगम सिद्धांतवादियों में देखी जा सकती हैं जिन्होंने विचार और देरी के संबंधों के प्रभावों को विकसित किया है।

'कवि और दिवास्वप्न' (1908) पर लिखित फ्रायड क प्रारंभिक शोध पत्र से एक संकल्पना उद्भूत होती है जिसमें यह कहा गया है कि "अतृप्त इच्छाएं ही अतिकल्पना की अंतर्नोद शक्ति होती है" और उन्होंने इच्छापूर्ति के संबंध में दिवास्वप्न और रात्रि स्वप्नों में समानता की सीमा की ओर भी इंगित किया है। कवि जिन दिवास्वप्नों को कलात्मक कृतियों में परिणित करता है वे शैशवकाल की अतृप्त इच्छाएं होती हैं। यह दिवास्वप्न इन इच्छाओं के प्रत्यक्ष स्वीकरण के प्रति सुरक्षा का कार्य करते हैं। फ्रायड का कथन है कि 'खुशहाल व्यक्ति कभी दिवास्वप्न नहीं देखते'।

दिवास्वप्न किसी अतृप्त इच्छा का परिणाम होते हैं तथा उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति के प्रति सुरक्षा का कार्य करते हैं, मनोविश्लेषणात्मक चिन्तन में यह धारणा व्याप्त है। फ्रायड की दूसरी संकल्पना कि विचार और अतिकल्पना की सभी प्रक्रियाएं जिसमें आंशिक तुष्टि होती है (कुछ मात्रा में शक्ति खर्च होती है) अंतर्नोद को कुछ अंश तक कम करती है और परिणामस्वरूप समग्र गति कार्य में देरी होती है। बच्चों में अतिकल्पना और क्रीड़ा तथा वयस्कों में दिवास्वप्न के माध्यम से प्राप्त विरेचन अथवा अंतर्नोद में कमी वाले सिद्धांत के कई महत्वपूर्ण अर्थ है।

वस्तुतः विरेचन सिद्धांत यह प्रस्तावित करता है कि किसी आवश्यकता की तुष्टि अथवा ऐसी तुष्टि को प्राप्त करवाने वाली संबंधित गतियों द्वारा कुछ मात्रा में शक्ति के निष्कासन के अवसर में देरी होने पर तुष्टि प्रदान करने वाली क्रिया अथवा उससे संबंधित गतियों की 'मन की आंखों' में परिकल्पना पुनरुपादन आंशिक रूप से शक्ति में कमी उस मात्रा तक ला देगा जिससे अंधाधुंध अथवा व्यर्थ की क्रियायें नहीं हो सकेंगी।

मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से (जहां पर उद्दीपन के आंतरिक उद्भव पर बल दिया जाता है) इस प्रकार के आंशिक निष्कासन कई समाज विरोधी अथवा

असामाजिक प्रवृत्तियों के कुसमायोजित प्रत्यक्ष निष्कासन की प्रभावशाली रूप से नियंत्रित करते हैं। जिस प्रकार टेलिविजन पर कुश्ती और बॉक्सिंग के कार्यक्रमों को नियमित रूप से देखने से किसी व्यक्ति को थोड़ा-सा ही उकसाने पर अपने पड़ोसी पर प्रहार करने की प्रवृत्ति में कमी होती है, इसी प्रकार लैंगिक विषय के संबंध में दिवास्वप्नों की सचेत स्वीकृति भी बलात्कार की प्रवृत्ति को रोकती है, जबकि इस प्रकार के विचारों का अनुभव न कर पाने पर ऐसे आवेगपूर्ण बाह्य तुष्टिकारक व्यवहार उत्पन्न होते हैं जिनके परिणाम अति दुर्भाग्यपूर्ण होते हैं। शिक्षा मनोविज्ञान में विरेचन मॉडल के अधिगम सिद्धांत सूत्र मूलप्रवृत्तिक शक्ति की मात्रा का विशेष रूप से उल्लेख नहीं करते, परन्तु वे इस बात पर बल देते हैं कि अतिकल्पित व्यवहार में ऐसे गौण पुनर्बलक गुण होते हैं जो अंतर्नोद शक्ति को कम करते हैं जिसके फलस्वरूप व्यक्ति लक्ष्यवस्तु के दिवास्वप्न लेने लगता है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि यदि कोई बालक भूखा होता है तो वह खाने की वस्तु को ढूंढने संबंधी गतिक प्रतिक्रियाएं करने लगता है। दिवास्वप्नों की सीमा यहां तक होती है कि वह गतियों के प्रतिबिंब की पुर्नउत्पत्ति कर लेता है जो उसकी भूख को तुष्ट कर सकता है, अथवा ऐसे प्रतिबिंब की उत्पत्ति करता है जसे उसकी मां खाना ले कर आ रही है यदि उसी समय सचमुच उसकी मां आ जाती है तब प्रत्यक्षमूलक प्रतिनिधित्व गौण-पुनर्बलक गुणों का रूप धारण कर लेता है। यदि उसकी मां नियमित रूप से आती है परन्तु यदि वह कभी-कभी नहीं आती है (विलोप को रोकने के लिए सविराम पुनर्बलन श्रेष्ट होता है) तो आवश्यकता की अवस्था में अतिकल्पना क्रिया-अनुक्रिया के रूप में सीख ली जाती है।

अतिकल्पना के विरेचन सिद्धांत तथा अंतर्नोद को कम करने वाले इस मॉडल के कुछ प्रभावों का परीक्षण करने के लिए अनुसंधान के कई रुचिकर विषयों का विकास किया गया है। इस सिद्धांत में प्रक्षेपी परीक्षणों के तर्क के लिए कुछ महत्वपूर्ण अर्थ हैं जहां पर व्यक्ति को यह निश्चय करना पड़ता है कि जो व्यक्ति स्याही के धब्बों अथवा तस्वीरों के प्रति कुछ निरंतर अनुक्रिया पैटर्न प्रदर्शित करते हैं वे बाह्य व्यवहार में भी वही या उसके विपरीत अनुक्रिया पैटर्न प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिए रोर्शा परीक्षण में स्याही के धब्बों पर गतिके प्रत्यक्षण तथा बाह्य गति, आवेगशीलता तथा अन्य अहम कार्यों के बीच विपरीत संबंधों के प्रमाण हैं। अधिकांश प्रमाण रोर्शा की इस धारणा का समर्थन करते हैं कि जहां एक ओर तो मानवगति अनुक्रियाएं नियंत्रित गतिशीलता से संबंधित हैं वहां दूसरी ओर कल्पनात्मक विकास से संबंधित हैं। मनोवैज्ञानिक श्री मेज द्वारा किए गए एक प्रयोग में इस श्रृंखला की एक महत्वपूर्ण कड़ी प्राप्त होती है कि रोर्शा के सभी कारकों में से मानवगति अनुक्रिया ही दिवास्वप्न की बारंबारता से महत्वपूर्ण रूप से संबंद्ध है।

विरेचक मॉडल की आलोचना

जब प्रेक्षपी विधि का फोकस अतिकल्पना और गति व्यवहार के संरचनात्मक पक्ष पर न होकर विशेष विषयवस्तु का प्रक्षेपी अतिकल्पना से संबंध पर होता है तो एक भिन्न अनुसंधान का उद्भव होता है । कथानक संप्रत्यक्षण परीक्षण के प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति सिद्धांत और वैकल्पिक मार्ग के बीच विवाद का समाधान प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति के हित में हुए अधिकांश अध्ययनों से हो गया है। मनोवैज्ञानिक वत्स (1961) द्वारा संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत और मैक्लीलैंड (1961) तथा एटकिसन (1958) द्वारा विस्तृत रूप में प्रस्तुत अतिकल्पित आक्रमण पर साहित्य इस विचार का समर्थन करता है कि वे व्यक्ति जो कि आक्रमक अथवा उपलब्धि-अभिमुखी कथा का निर्माण करते हैं अपने प्रतिदिन के जीवन में भी उसी प्रकार का व्यवहार करते हैं ।

फैशबक (1955) के अध्ययन में अतिकल्पना के अंतर्नोद कम करने वाले मॉडल की परीक्षा करने के प्रयास में एक महत्वपूर्ण चरण सामने आया, जिसमें यह प्रदर्शित किया गया था कि जब अपमानित व्यक्ति 'क' को कहानी सुनाने के माध्यम से अपने आक्रामक व्यवहार को अभिव्यक्त करने का अवसर दिया गया तो उन्होंने उस समूह की तुलना में कम आक्रामक व्यवहार प्रदर्शित किया जिन्हें अतिकल्पित आक्रामक अभिव्यक्ति का अवसर ही नहीं दिया गया । फैशबक ने यह भी पाया कि क्रोध दिलाने पर लड़ाई की फिल्म देखने पर बाद का आक्रामक व्यवहार कम आक्रामक हो जाता है । फिर भी यह ध्यान रहे कि विशुद्ध दिवास्वप्न जो अन्तर्नोद कम करने वाले दैनिक जीवन की घटनाएं होते हैं, इनकी तुलना में कहानी लेखन एक अधिक गति युक्त अभिव्यक्ति होती है ।

जहां प्रयोगात्मक प्रयासों का फोक्स प्रयोग से उकसाए गए क्रोध पर न होकर दबाव, चिन्ता अथवा भय पर होता है, वहां दिवास्वप्न या अतिकल्पना का विरेचक महत्व कम दिखाई देता है अथवा वे असमर्थित होते हैं (सिगर 1966) । इन परिवामों से यह सुझाव मिलता है कि जब हम अंतर्नोद के रूप में क्रोध के स्थान पर तनाव की ओर अधिक ध्यान देते हैं तो दिवास्वप्न के प्रभाव अधिक जटिल होते हैं । जब भविष्य की स्थिति की कोई संरचना नहीं होती तो अतिकल्पना दुश्चिन्ता को बढ़ाती है, परन्तु इसे तब कम किया जा सकता है जब व्यक्ति को निरंतर विचार करने से रोक कर थोड़ी अवधि का तनाव सन्निकट हो ।

विरेचन सिद्धांत के प्रति विशिष्ट प्रमाण बरकोविट्ज (1964), बंदूरा, रौस तथा रौस (1963) द्वारा किए गए अनुसंधानों में परिलक्षित होते हैं । ये अध्ययन आक्रामक अभिव्यक्ति पर पूरी तरह अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए विरेचन सिद्धांत

को नहीं मानते हैं तथा प्रत्यक्ष गतिक अभिव्यक्ति के संबंध में अतिकल्पना के अर्थ को समझने के लिए पर्यावरणीय उद्दीपन के प्रतिरूप की महत्ता को अधिक मानते हैं। उदाहरण के लिए बरकोविट्ज़ ने पाया कि एक व्यक्ति ने एक फिल्म दृश्य देखा जिसमें एक पुरस्कृत लड़ने वाले को समर्थनीय मार पड़ रही थी। इस दृश्य के फौरन बाद उस व्यक्ति ने अपने सहपाठी के प्रति उच्च आक्रामक व्यवहार दिखाया। बरकोविट्ज ने इस व्यवहार की तुलना अन्य व्यक्ति से की जिसे यह बताया गया था कि यह मार अनुचित थी। बंदूरा, रौस तथा मॉडलिंग व्यवहार के लिए रौस द्वारा किए गए अध्ययनों से भी यह पता लगता है कि जिन छोटे बच्चों में कुंठा से क्रोध उत्पन्न होता है वे प्रत्यक्ष अथवा फिल्म में पहले देखे गए आक्रामक व्यवहार की प्रत्यक्ष नकल कर लेते हैं।

हाल के अनुसंधान के परिप्रेक्षय में तथा इस समस्या के पुनः अध्ययन से अतिकल्पना के विरेचन सिद्धांत के प्रमाण क्षीण प्रतीत होते हैं। हां, इसकी आधार-सामग्री मुख्यतः आक्रामक व्यवहार के अध्ययन से ली गई है और सामान्य रूप में स्वाभाविक दिवास्वप्न व्यवहार और उसके परिणामों (फिल्माए गए अथवा कथा द्वारा उत्तेजित अनुक्रियाओं की तुलना में) अथवा क्रोध और आक्रामक व्यवहार से इतर अन्य प्रभात के प्रति कम जिज्ञासा रही है।

संज्ञानात्मक कौशल के रूप में अतिकल्पना

एक वैकल्पिक उपागम प्रस्तावित किया जा सकता है जो कम से कम गति प्रत्यक्षण और गति अवरोध और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति या अतिकल्पना आक्रमण के मॉडलिंग सिद्धांतों के परिणामों पर रोर्शा की आधार-सामग्री से संकल्पनात्मक रूप में मेल खाता है। स्वतंत्र अहम् की संकल्पना का विकास करते हुए हैज हार्टमैन ने यह देखा कि व्यक्ति की अपनी मानसिक प्रक्रियाओं में बढ़ी हुई अंतर्दृष्टि से अतिकल्पना उसको वाह्य संसार पर अधिक प्रवीणता दिलाने में सहायक होती है। यह वांछनीय है कि हार्टमैन के अध्ययन से कुछ आगे बढ़कर विरेचक गतिकी अथवा तटस्थीकृत वनाम कामवासना कृत शक्ति की संकल्पना को ध्यान में रखे बिना अतिकल्पना और विवावली के मूल का नए सिरे से अध्ययन किया जाए। इसके अतिरिक्त अतिकल्पना व्यवहार अथवा दिवास्वप्न के विकास का संज्ञात्मक कौशल और धीरे-धीरे होने वाली अनुक्रिया आंतरीकरण तथा किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में होने वाले अनुकरणीय व्यवहार (यथा वे अनुक्रियाएं जो अधिकांश बच्चों में उपलब्ध होती हैं) की क्षमता के रूप में अध्ययन करना चाहिए। बच्चों में चाक्षुष और श्रव्य बिंब बनाने की क्षमता में स्वाभाविक रूप से भिन्नता होती है, परन्तु अधिकांशतः यह भेद दिवास्वप्नों के कौशल और शैली के बाद के विकास के कारण

होते हैं। विशेष अक्षमताएं भी होती हैं और यह पाया गया है कि जन्मजात अंधे बच्चे उसी अवस्था के सनेत्र बच्चों की तुलना में अपनी स्वतः स्फूर्त क्रीड़ाओं और कहानी कहने में कम कल्पनाशील होते हैं।

इस प्रकार बच्चों के विकास में अतिकल्पना क्रीड़ा एक महत्वपूर्ण लक्षण है और पियाजे के अनुसार यह सतत आत्मसातकरण-समंजन पैटर्न का एक भाग है। फिर भी कुछ ऐसे विशिष्ट कारक हैं जिनके कारण अतिकल्पना कभी-कभी होने वाली अनुक्रिया के पैटर्न के बजाय एक एकीकृत कौशल बनती जा रही है, और इस प्रकार यह आंतरिक आयाम पर अधिक ध्यान देने वाली वह क्षमता हो जाती है जो कि मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति हो सकती है। इसी प्रकार यदि हम मनुष्य की आंतरिक कौशल संभाव्यताओं को स्पष्ट रूप से पहचाने तो हम उसकी क्षमताओं को पूर्ण रूप से और बढ़ा सकते हैं।

व्यक्तित्व स्तर के रूप में अतिकल्पना

आज तक केवल एक ही अध्ययन उपलब्ध है जो कि व्यक्तित्व संरचना के रूप में अतिकल्पना को मानता है। मनोवैज्ञानिक शनमुगम (1957) ने गुप्त और बाह्य व्यक्तित्व कार्यों की जांच करने के लिए अपने द्वारा प्रतिपादित परीक्षणों का प्रयोग कर ऐसे निष्कर्ष निकाले जो प्रेरक भी हैं और जिनकी पुष्टि करना आवश्यक भी है।

तादात्मय और अनुकरण अतिकल्पना के विकास के कारक

अतिकल्पना के विकास के लिए कौन-सी संगत परिस्थितियां हैं ?

माडलिंग सिद्धांत के अनुसार अतिकल्पना विकास में माता–पिता का अनुकरण करना संभवतः महत्वपूर्ण तत्व है। वह बच्चा जो अपने माता-पिता को भद्र व्यक्ति के रूप में देखता है वही अपने एकात्मीकरण के लिए शीघ्र संघर्ष करता है और अपने माता पिता के व्यवहारों को अधिक सीखता है। इसके कुछ प्रमाण है कि जो व्यक्ति रोर्शा परीक्षण (मानव गति अनुक्रियाएं) पर अधिक कल्पना का प्रदर्शन करते हैं वे यह भी कहते हैं कि उनके माता-पिता भद्र और स्नेहशील थे। ऐसी विशिष्ट वयस्क आकृति प्रायः मां के साथ एकात्मीकरण करती है जो कि आवेग का अवरोध करती हो, समाजीकरण और कहानी सुनाने का प्रतिनिधित्व करती हो, आन्तरीकरण का विकास करन के लिए एक महत्वपूर्ण लक्षण है। दिवास्वप्न पर किए गए अनेक अध्ययनों से इसके कई प्रमाण प्रकट हुए हैं कि उन वयस्क लड़के

और लड़कियां की तुलना में जिनके आदर्श अपने-अपने पिता के आदर्शों से भिन्न थे उन वयस्क लड़के-लड़कियों में दिवास्वप्न अधिक पाये जाते हैं जो अपनी माता के साथ अधिक तादात्मय बनाए होते हैं। हार्वर्ड में इसी प्रकार की खोज का शोरफ (1959) ने भी अपने शोध निबंध में वर्णन किया है, उन्होंने यह खोज की थी कि जो किशोर अपनी माता के विश्वासपात्र होते हैं वे अधिक कल्पनाशील होते हैं और अंतरदर्शन की प्रवृत्तियां प्रदर्शित करते हैं। अतिकल्पना कौशल को बढ़ाने के लिए कुछ सीमा तक माडलिंग और अनुकरण की आवश्यकता होती है और यह कुछ विशेष प्रकार की अनुक्रियाओं की नकल करके तथा माता-पिता द्वारा इन अनुक्रियाओं को पुरस्कृत करके उपलब्ध किया जा सकता है।

क्रीड़ा के अवसर

यदि किसी बालक को एक ऐसे वयस्क के निकट रखा जाय जो शब्दों के आदान-प्रदान और अतिकल्पना क्रीड़ा को प्रोत्साहित करता है तब भी इस प्रकार की क्रियाओं के अभ्यास के लिए बालक को अवसर की आवश्यकता होती है। ऐसे संकेत मिलते हैं कि अन्य बच्चों के साथ अधिकाधिक संपर्क से अतिकल्पना क्रीड़ा के लिए कम अवसर मिलते हैं, जब तक कि बच्चे आयु में बड़े न हों और वे माता पिता की भूमिका वाले खेल न खेलते हों। उदाहरण के लिए काफी बड़ी बहन का 'घर घर' या 'स्कूल स्कूल' का खेल छोटे बच्चों के साथ खेलना। कुल मिलाकर शारीरिक गति का उतार-चढ़ाव तथा विविध बाह्य उत्तेजना जो बच्चों के समूह में अधिकाधिक होती है बच्चे को बाह्य व्यवहार में इस प्रकार व्यस्त रखती है कि उसे कल्पना क्रीड़ा के लिए बहुत कम समय मिल पाता है। 6 वर्ष से 9 वर्ष के बच्चों का अध्ययन करने पर जो प्रमाण मिलें उनसे यह प्रदर्शित होता है कि बच्चे अधिक अतिकल्पना क्रीड़ा करते हैं जिनके बड़े भाई-बहन कम होते हैं अर्थात् वे या तो परिवार के पहले बच्चे होते हैं या वे अकेली संतान होते हैं और वे बड़े परिवार के सदस्य नहीं होते।

दिवास्वप्न इस प्रकार से एकाकीपन के प्रति एक सुरक्षा युक्ति होते हैं। इसी तरह कई बच्चे जो अतिकल्पना क्रीड़ा में खूब आनन्द लेते हैं और जो इस आनन्द को अन्य बच्चों के साथ बांटना चाहते हैं वे अन्य बच्चों की अव्यवस्था से कुंठित हो जाते हैं और फिर वे कल्पना के एकाकी खेल में लग जाते हैं। यदि इन बच्चों का प्रभाव उस समूह पर होता है तो वे अधिक सुगठित अतिकल्पना के खेल का विकास कर लेते हैं। उदाहरण के लिए डाकू या जासूस आदि। यदि किसी विशिष्ट बच्चे को निम्नलिखित अवसर मिले हों तो उसके अतिकल्पना खेल-खेलन

की अधिक संभावना होती है यथा–एकाकीपन, पढ़ने, कहानी कहने आदि के लिए प्रोत्साहन मिलना, परिवार की परम्परा के रूप में अतिकल्पना के लिए प्रोत्साहन मिलना तथा ऐसे सांस्कृतिक अवसर जो कल्पना पर बल देते हैं और बौद्धिक खोज को प्रोत्साहित करते हों, उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा समाज में उच्च स्थान दिलाते हों आदि। इसके परिणामस्वरुप जो बालक कल्पित व्यक्ति, स्थितियाँ, संसार अथवा वैज्ञानिक कृतक विश्वास आदि का सृजन कर अतिकल्पना क्रीड़ा में अधिक व्यस्त रहता है वह कर्ट गोल्डस्टीन द्वारा कहे गए 'संभाव्य के प्रति अभिवृत्ति' से संबंधित कौशलों की श्रृंखला का अभ्यास करता है। इन बच्चों की शब्दावली अधिक जटिल होती है, उनमें संरचनात्मक और संगठनात्मक कौशल विकसित होते हैं। वे उन पारिवारिक संबंधों को जान लेते हैं जिन्ह अन्य बच्चों को पाठशाला में जाकर सीखना पड़ता है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे अनुभव का एक आयाम बना लेते हैं, यथा अपने ही सह संबंधों पर ध्यान केन्द्रित किए रहना जो कि ऐसा क्षेत्र हो सकता है जिसमें वे अपनी इच्छा से प्रवेश कर सकते हैं अथवा निकल सकते हैं। यदि बच्चे के लिए बाह्य संसार अधिक तनाव पूर्ण हो जाता है या वह अपने सम समूह के साथ सकारात्मक सामाजिक संबंध विकसित नहीं कर पाता है तो वह आयाम विस्तृत सुरक्षा का आधार बन सकता है। विस्तृत आंतरिक जीवन के विकास से सामाजिक अनुभव, सामूहिक खेल अथवा खेलकूद में आनन्द व कौशल प्राप्त करने की संभावना नहीं रहती। यह खेलने और संतोष प्राप्त करने के लिए मात्र एक अतिरिक्त माध्यम प्रस्तुत करता है। अभी तक इसका कोई प्रमाण नहीं है कि मनस्तापी रोगी दिवा-स्वप्न के प्रति कोई अत्यधिक झुकाव प्रदर्शित करते हैं। वास्तव में पुराने रोगी आंतरिक जीवन और दिवास्वप्न की अशक्तता 'निजी संसार' में खोये रहने की तुलना में अधिक प्रदर्शित करते हैं।

अतिकल्पना के अनुकूली पक्ष

यह स्पष्ट है कि मनुष्य म विकासात्मक प्रगतियों का प्रतिनिधित्व उसकी विकसित शब्दावली और अमूर्त कौशल करते हैं। उसके विचारों के अतिकल्पनात्मक पक्षों, दिवास्वप्न और रात्रिक स्वप्नों की अभिव्यक्ति पर भी हम विचार करेंगे। कल्पना और गति आवेगशीलता के बीच विपरीत संबंधों के विषय में रोर्शा की खोजों की व्याख्या सापेक्षतः विरेचन सिद्धांत की अपेक्षा उस व्यक्ति को देख कर अच्छी तरह की जा सकती है जिनके पास गतिक्रिया के अतिरिक्त वैकल्पिक अनुक्रियाओं के रूप में कल्पना है। अपनी रुचि बनाए रखने तथा सकारात्मक प्रभावी अनुभव प्रस्तुत करने के लिए यदि उसके पास आंतरिक उद्दीपन है तो किसी प्रतीक्षालय में बैठा वह अधीर नहीं हो सकता (जैसे कि अन्य कई अध्ययनों में पाया गया है)। अपने ध्यान और रुचि को बनाए रखने के

लिए वह स्वेच्छा से एक आंतरिक स्रोत बना सकता है (किसी फिल्म की कल्पना करना, बेसबाल के खेल को दोबारा खेलना) अथवा चेतना की धारा को बहने देना है, जो कि उसके मस्तिष्क की एक प्रतिध्वनात्मक क्रिया होती है। जब संवेदन संकेत कम हो जाते हैं तो उस अवस्था में यह क्षमता एक सम्पत्ति बन जाती है जैसा कि संवेदन वंचन (होल्ट, 1964) के अध्ययनों में पाया गया। इसी प्रकार (सिंगर, 1966,) यह पाया गया कि वे व्यक्ति जिन्हें परस्पर मुक्त बातें करने दिया जाए और सभी बाह्य संकेतों को कम कर दिया जाए और एक अंधेरे कमरे में मध्यम-सी रोशनी को जलाने और बुझाने का काम दिया जाए तो वे जागे रहते हैं और आराम देह अनुभव करते हैं। यदि उन्हीं व्यक्तियों को एकरस कार्य जैसे गिनने में लगा दिया जाये तो वे सो जाते थे और चिड़चिड़े हो जाते थे। इस बात के भी प्रमाण है कि जो व्यक्ति दिवास्वप्न में मग्न रहते हैं, अर्थात् जिसके लिए आंतरिक अनुभव पर ध्यान देना एक प्रतिष्ठित आदत सी बन जाती है उन्हें विभ्रम कम होते हैं। जो व्यक्ति पढ़कर और कल्पनात्मक खेल के माध्यम से घटनाओं या व्यक्तियों के संबंध में दृश्यों की तस्वीर बनाने की दक्षता विकसित कर लेते हैं उनके पास अपनी अनुक्रियाओं के भंडार को बढ़ाने का एक साधन हो जाता है। व्यक्ति की विभिन्न सामाजिक अनुक्रियाओं अथवा दृश्यों की कल्पना कर लेने की क्षमता उसमें नयी अथवा कठिन परिस्थितियों का सामना करने की योग्यता को बढ़ाती है। स्पष्ट है कि वास्तविक स्थितियों का सामना करने के लिए भी अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह संभव है कि इस प्रकार का अभ्यास अति-कल्पना में रत रहने से ही व्यक्ति में जल्दी आता है। यह एक तथ्य है कि जिस अतिकल्पना का अभ्युदय खेल के माध्यम से होता है और वह हास्य और वाग्दिग्धता के निकट होती है। इस माध्यम से अतिकल्पना करने वाला व्यक्ति जब किसी दुश्चिन्ता या संघर्ष में होता है तो वह अपनी दुविधा का हास्यकर और विचित्र या असाधारण पक्ष भी ढूंढ लेता है तथा अपनी समस्या का कोई अस्थाई सकारात्मक और प्रभावी अनुभव प्राप्त करके उस संकट को वह हास्यकर अतिकल्पना से हल्का कर लेता है। इस प्रकार विचारों, स्मृतियों अथवा सीमावर्ती संबंधों पर विभिन्नता से ध्यान देने की आंतरिक संज्ञानात्मक शैली के विकास अथवा अपनी इच्छा से ऐसी सामग्री में फेरबदल करने की योग्यता उसके व्यक्तित्व की सम्पूर्ण अहम् शक्ति के एक महत्वपूर्ण लक्षण के रूप में देखी जा सकती है। यह भी गति कौशल, सुनिश्चित क्षमता या संचार में सूक्ष्मता के कौशल के समान ही एक कौशल है।

हाल की अनुसंधान प्रगतियां

यहाँ सैद्धांतिक विषयों पर हुए अनुसंधानों के अतिरिक्त अतिकल्पना के क्षेत्र में हुए अन्य महत्वपूर्ण प्रयोगात्मक कार्यों का भी संक्षिप्त उल्लेख दिया जा

रहा है। उपलब्धि अभिप्रेरण के प्रमाण के रूप में तीसरे ग्रेड की पाठ्य-पुस्तकों में कहानियों के अतिकल्पना विषय की व्याख्या के संबंध में मैक्लीलैंड का विस्तृत अनुसंधान कार्य विशेषकर सफल कार्य है। उदाहरण के लिए मैक्लीलैंड ने यह दिखाया है कि संसार के विभिन्न देशों की अतिकल्पना रचनाओं में अभिव्यक्त उपलब्धि अभिप्रेरणा की मात्रा देश के कई वर्षों के वास्तविक आर्थिक विकास से संबंधित होती है (मैक्लीलैंड 1961) । इन प्रभावशाली परिणामों से यह सुझाव मिलता है कि उपलब्धि अभिमुख सामग्री को बच्चों को पढ़ाने वाली कहानियों में सम्मिलित करने से या तो वे और अधिक उपलब्धि अभिमुख होने के लिए उत्तेजित हो जाते हैं या (जिसकी अधिक संभावना होती है) चेतन अथवा अचेतन रूप से उन बच्चों में पहले से चले आए राष्ट्रीय उपलब्धि अभिमुख पैटर्न प्रतिबिंबित होते हैं जिन्हें कथानक सामग्री दी गई हो। एटकिन्सन तथा मैक्लीलैंड द्वारा किए गए अधिकांश कार्य में अतिकल्पना प्रक्रिया के अध्ययन पर बल दिए जाने के बजाए अभिप्रेरणा के स्वरूप पर अधिक बल दिया गया है, फिर भी मैक्लीलैंड ने किसी भी प्रकार के वंचन की सीमा और वंचित आवश्यकता की अतिकल्पना अभिव्यक्ति के बीच संबंध बनाने का प्रयास किया।

इस बात का अधिक ज्ञान होने से कि कम संवेदी उद्दीपन की अवधि में मनुष्य आंतरिक रूप से उत्पन्न उद्दीपन के प्रति अधिक अनुक्रियाशील हो जाता है तथा इसके साथ-साथ प्रमस्तिष्क विद्युत आरेख तथा आक्युलोरेटिनोग्राम द्वारा रात्रिक स्वप्नों के अध्ययन में की गई प्रगतियों से मनुष्य के जागृतावस्था के विचारों के पैटर्न के संबंध में अध्ययन को प्रोत्साहन मिला। कई जांचों से यह सुझाव मिला है कि सोने वाले वे वयस्क जो दिवास्वप्न में लीन रहते हैं कम नेत्र गति प्रदर्शित करते हैं। परन्तु इसके साथ-साथ नेत्र गति तब बढ़ जाती है जबकि वे आने वाले विचारों को दबाने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार विषय व्यक्तियों को अतिकल्पना में लीन होने से रोकने के लिए आवश्यक बाह्य उद्दीपन की सापेक्ष सीमा के प्रायोगिक अध्ययनों से यह सुझाव मिलता है कि कालिज में जाने वाले व्यस्कों में बाह्य वस्तुओं पर अधिकाधिक ध्यान देने की आवश्यकता के बावजूद भी उनमें उल्लेखनीय मात्रा में विचार उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसी संभावना है कि लगातार चलने वाली आंतरिक अनुकरणात्मक क्रिया करने के लिए मनुष्य की इच्छा या क्षमता व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए एक महत्वपूर्ण आयाम है।

अभी तक इस विचारधारा के मनोवैज्ञानिक आधार या इस प्रकार की आंतरिक प्रक्रियाओं पर ध्यान देने वाले कारकों के विषय में सापेक्षतः कम जानकारी है। दिवास्वप्नों में व्यक्तिगत भेदों के विषय में व्यवस्थित रूप में हम कम ही जानते हैं, यद्यपि इन क्षेत्रों में और अधिक कार्य करने के लिए कुछ अध्ययनों के कारण

रास्ते खुल गये हैं। दिवास्वप्नों या आंतरिक जीवन में बारबार लौटने की प्रवृत्ति, विषयवस्तु और संरचना के संबंध में सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय समहों के बीच भेद है या नहीं इस पर औपचारिक आधार–सामग्री वास्तव में बहुत कम उपलब्ध है ? सिंगर और मैकेवन ने इस बात के कुछ प्रमाण पाए कि अमरीका में पैदा हुए उपसांस्कृतिक समूहों में (हबशी, यहूदी, इतालवी, आयरिश, जर्मन तथा आंग्लो सैक्सन) दिवास्वप्न बारंबारता में भेद है, तथा चल समूह (अथवा सामाजिक रूप से कम सुरक्षित समूहों) में अतिकल्पना क्रिया अधिक पाई जाती है। सिंगर और ऑपलर द्वारा अमरीका में उत्पन्न आइरिश और इतालवी मनोविदलित वयस्कों के बीच की गई तुलना से भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों की अतिकल्पना क्रियाओं में भी भिन्नता के प्रमाण पाए गए।

अतिकल्पना अनुसंधान के क्षेत्र में एक नया विकास हुआ है जिसमें जागृतावस्था अतिकल्पना तथा सुप्तावस्था अतिकल्पना के साथ संबंध के अध्ययन में कारक विश्लेषणात्मक उपागम का प्रयोग किया जाता है। इससे पहले इस संबंध की खोज उन अध्ययनों से की जाती थी जिसमें स्वप्न की रिपोर्टों का संबंध कथानक संप्रत्यक्षण परीक्षण की कथाओं से किया जाता था (सैरेसौन, 1944, गौर्डन 1953 तथा शुलमैन 1955) परन्तु उनके परिणाम अनियमित थे। कल्पनात्मक प्रक्रिया तालिका का प्रयोग कर कारक विश्लेषणात्मक अध्ययनों से इस तथ्य का पता चलता है कि दिवास्वप्न की "शैलियां" होती हैं (सिंगर तथा एन्ट्रोबस, 1963 तथा 1972 एटार्कर 1973 तथा आइजैक्स 1975)। एटार्कर (अक्तूबर, 1977) ने अधिकांश व्यक्तियों की जागृतावस्था अतिकल्पनाओं में तीन कारकों को भिन्न-भिन्न मात्रा में पाया। ये कारक निम्नलिखित हैं : (1) "संघर्षात्मक अथवा अपराध–दुःखाभासी कारक" जिसमें जागृतावस्था अतिकल्पना में दोषों, भय, विद्वेषों तथा महत्वकांक्षाओं के प्रभुत्व का वर्णन निहित है; (2) सकारात्मक सुस्पष्ट कारक जिसमें ऐसे विविध कल्पनात्मक अनुभवों से आनन्द प्राप्त करने की क्षमता निहित होती है जो कि संघर्षात्मक नहीं हैं; तथा (3) जिज्ञासा कारक जिसका संबंध ऐसी अतिकल्पना में लीन होने से है जो प्रायः डराने वाली या विचित्र होती है तथा जिसमें ध्यान पर नियंत्रण स्पष्टतः कम होता है। सकारात्मक सुस्पष्ट दिवास्वप्न लेने वाले व्यक्ति के स्वप्न बहुत ही कम विचित्र होते हैं और उनके स्वप्नों का अत्याधिक सकारात्मक प्रभाव होता है। अपराध-दुखाभासी स्वप्न लेने वाले व्यक्तियों के स्वप्न अधिक विचित्र होते हैं तथा वे सकारात्मक–सुस्पष्ट दिवास्वप्न लेने वालों की तुलना में अधिक नकारात्मक होते हैं, जिज्ञासा विकर्षणीय दिवास्वप्न लेने वाले व्यक्ति सबसे अधिक विचित्र, संवेगात्मक तथा सबसे अधिक नकारात्मक स्वप्नों का उल्लेख करते हैं।

इस धारणा के विपरीत कि सचेत अगम्यागमन अतिकल्पना के परिणाम अहम् या पराअहम् विकृति होती है, वर्मन (1977) द्वारा किए गए नैदानिक मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन में इस घटना को नियंत्रण करने वाले कारकों का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार हैं –(1) छोटी अवस्था में ही अत्यधिक लैंगिक उद्दीपन होना, (2) कुछ समय पश्चात् अन्तर्नोद तनाव बढ़ना, (3) अहम्-परा अहम् तनावों को संतोषजनक स्तरों पर बनाए रखने के लिए सुरक्षा युक्तियों का प्रयोग करना, तथा (4) इडिपस मनोग्रंथी के अन्य पक्षों का निरन्तर दमन करना।

यंग, फ्रायड, फ्रैंक तथा बर्न के विचारों पर जोर देते हुए अंगरस्मा ने मनो-वैज्ञानिक सारांशों (1978) में से निकाले गए 'अतिकल्पना,' 'सृजनात्मकता' और 'अनुरूपता' पर लेखों में अतिकल्पना, सृजनात्मकता तथा अनुरूपता के बीच संबंध के प्रति दृष्टिकोणों की एक सामान्य समीक्षा प्रस्तुत की है। इस सामान्य समीक्षा से यह सुझाव मिलता है कि अतिकल्पना मौलिकता और सृजनात्मकता का एक साधन है, विशेषकर उन बच्चों के लिए जो अनुरूपता का उपयोग करते हैं। साधारण पलायनवाद की तुलना में दिवास्वप्न श्रेष्ठ मूल्यों के प्रति उदारता का विकास करते हैं ।

अतिकल्पना की संरचना और कार्य (क्लिन्गर का अध्ययन)

किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए प्रणाली विज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतिकल्पना की संरचना का परिशुद्ध वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए अतिकल्पना प्रक्रिया का प्रत्यक्ष अध्ययन बिना किसी प्रयोगकर्ता के हस्तक्षेप से किया जाना चाहिए। परन्तु विज्ञान के विकास के समय अतिकल्पनाओं का प्रक्षेण प्रयोग-विषय द्वारा उन्हें शब्दों में व्यक्त करके किया जा सकता है, जिसका अर्थ है प्रयोगकर्ता द्वारा हस्तक्षेप। इस प्रकार क्लिंगर ने एक अप्रत्यक्ष विधि निकाली जिसको सबसे अधिक खगोल भौतिकी में अपनाया गया । यदि खगोल भौतिक विज्ञानियों ने वस्तुओं तक सापेक्षतः प्रत्यक्ष पहुंच पर जोर दिया होता तो खगोल भौतिकी की प्रगति में बहुत देर लगती। क्लिंगर का कथन है कि सभी वैज्ञानिक जांच इन अर्थों में अप्रत्यक्ष रूप से हुई है कि वह वैज्ञानिक और अध्ययन-विषय के बीच भिन्न जटिलता वाले ट्रान्सड्यूसर्स (Transducers) को सन्निविष्ट करती है।

हाल ही में एसरइन्स्की और क्लीटमैन द्वारा स्वप्न अनुसंधान क्षेत्र में अप्रत्यक्ष विधि से आन्दोलन हुआ है। इस विधि में प्रयोग-विषय को उस समय नींद से जगाया जाता है जब उसकी पलकें गति करती दिखाई देती हैं (आर इ एम) अथवा ऐसी

गति न होने पर तथा आइ इ एम (एन आर इ एम) और प्रमस्तिष्क विद्युत आरेख (ई. ई. जी) द्वारा मस्तिष्क लहरों के पैटर्न लिए जाने पर भी, जो विशिष्ट स्वप्नावस्थाओं के होने की संभावनाएं इंगित करते हैं, व्यक्ति को जगाया जाता है जिससे वह स्वप्न को तत्काल याद कर सके ।

अतिकल्पना संरचना का अध्ययन करने के लिए क्लिन्गर (1071) ने दो प्रकार के आनुभविक उपागमों को अपनाया । पहला था शाब्दिक विचारों की आवधिक श्रृंखला की जांच करना जैसे अतिकल्पना के लिए प्रतिनिधि के रूप में सस्वर सोचना' । मौरिस प्रयोगशाला में कुछ पूर्व स्नातकों को निम्नलिखित निर्देशों में से एक के अंतर्गत सस्वर सोचने के लिए कहा गया : तार की पहेली को सुलझाना ; तर्क की एक समस्या को सुलझाना; जागृतावस्था स्वप्न में लीन रहना; (बैठकर, आँखें खोलकर) तथा तंद्रिल स्वप्न में लीन रहना, (कुर्सी में आराम से बैठकर आखें बंद करके) वे सब श्रव्यतामापी यंत्र लगे कमरे में अकेले बैठ थे। इन व्यक्तियों को निर्देश टेपरिकार्डर द्वारा दिए गए तथा उनकी अनुक्रियाओं को अंत: संचारी के द्वारा ओडियोटेप पर रिकार्ड किया गया। विषय व्यक्ति को अपनी अनुक्रियाओं का निरीक्षण करने की स्वतंत्रता होती है और वे इसके लिए केवल टेपरिकार्डर से कहते हैं कि हम अपनी रिपोर्ट को अभी रोक रहे हैं। परन्तु ऐसा वे कम ही करते हैं। उनकी शाब्दिक अनुक्रिया का विषय-विश्लेषण करने के लिए क्लिन्गर ने एक संरचनात्मक संहिता प्रणाली का विकास किया। उसका दूसरा उपागम अतिकल्पना के कुछ पक्षों और शीघ्रता से होने वाले व्यवहार के बीच समानताएं निकालना तथा एक की दूसरे से सामान्यीकरण के आधार पर तुलना करना तथा इस पर निर्भर रह कर अतिकल्पना के संभाव्य गुणों को निकालना है ।

अपने किए गए अनुसंधानों के निष्कर्षों तथा अतिकल्पना के कार्यों और संरचना पर प्रभाव डालने वाले सभी प्रकार के व्यवहारों पर किए गए अनुसंधानों से लिए गए पाठों को एकीकृत कर क्लिन्गर ने अतिकल्पना के सिद्धांत को प्रस्ताव रूप में प्रस्तुत किया । इनमें से कुछ प्रस्ताव नीचे दिए जा रहे हैं ।

अतिकल्पना के खण्ड संगठन

1. आंतरिक अनुभवों (अतिकल्पना सहित) को खंडों में विभक्त किया जा सकता है जिन्हें वस्तुगत दृष्टि से सांख्यिकीय विश्वसनीयता से पहचाना जा सकता है। एक खंड एक समजातीय कथानक विषय होता है। उसकी समजातीयता अन्य समीपस्थ खंडों की विषयवस्तु की समानता से अधिक होती है। समजातीय-विषयवस्तु के खंड कार्यात्मक रूप से संगत होते हैं।

2. अतिकल्पना में दो प्रकार के खंडों की क्रियाएं देखी गई हैं : यथा क्रिया-प्रसूत तथा उत्तरदाता। क्रियाप्रसूत खंड का प्रबंध उन निकले हुए खंडों से होता है जिनका नियंत्रण परिणामों से और निर्देशन प्रतिपुष्टि से होता है। इसी प्रकार उत्तरदाता खंड इच्छा से होते हैं जो पूर्व वृत्त घटनाओं से उत्पन्न होते हैं तथा वे प्रतिपुष्टि पर निर्भर नहीं होते हैं।
3. अतिकल्पना, व्यवहार के दोनों प्रकार के क्रमों की एक उत्तरोत्तर श्रृंखला विद्यमान है। अतिकल्पना स्थितियों की एक क्रमिक श्रृंखला होती है और फलस्वरूप संभवतः वह अनुक्रियाओं की एक श्रृंखला होती है।
4. अतिकल्पना, स्वप्न और प्रारम्भिक बाल्यावस्था के खेलों में उत्तरदाता खंडों के उत्कृष्ट रूप होते हैं।
5 जागृतावस्था और सुप्तावस्था दोनों में मनोवैज्ञानिक क्रिया निरन्तर होती रहती हैं।

खंडों का संघटन

6. विवावली सहित विचारण (प्रत्ययन) में अपवाही क्रियाएं निहित होती हैं और वे एक प्रकार की अनुक्रिया प्रक्रिया बनाती हैं। वैसे उसमें अन्य अनुक्रिया घटनाओं के गुण होते हैं।
7. अधिकांश समय अतिकल्पना और स्वप्नों में विवावली का अंश भी होता है।
8. अतिकल्पना खंडों के विचारात्मक पक्ष अनुक्रिया समूहों के भाग बनाते हैं और जिनकी शाखाएं शुद्ध कल्पनात्मक अनुक्रियाओं तक फैली हुई होती हैं जो प्रभाव अभिवृत्तियां और कभी-कभी अचेतन निदेशात्मक प्रभावों को स्पष्ट रूप से चेतनावस्था में सम्मिलित करने के लिए मानसिक रिकार्ड रखती हैं।
9. कुछ स्तरों पर अतिकल्पना खंडों का संगठन क्रमिक रूप में होता है।
10. किसी न किसी खंडात्मक स्तर पर अतिकल्पना के सभी खंड एकीकृत अनुक्रिया क्रम ही होते हैं। यदि कोई अनुक्रिया बार-बार सीख ली जाती है तो वह अनुक्रिया क्रम स्वीकृत हो जाता है तथा वह अन्य एकीकृत गति क्रियाओं के साथ-साथ हो सकती है।

खंडों का अनुक्रमण

11. अनुक्रियाकारी खंडों के विघटन तथा कथानक विषय से हटने के साथ-साथ पूर्ण अथवा अवशेषी सभी अभिमुखी प्रतिक्रियाएं तथा अन्य प्रभावी अनुक्रियाएं भी होती हैं।

12. अनुक्रिया का योगदान सृजनात्मक समस्या-समाधान के प्रति चार स्थितियों के कार्य के रूप में होता है : यथा

(क) समस्या समाधान करने वाले के अनुक्रिया भंडार में समाधान के तत्व तथा संबद्ध संज्ञानात्मक कौशलों का होना;

(ख) समस्या समाधानकर्ता के लिए समस्या का समाधान करने का प्रेरक मूल्य अथवा संवेगात्मक महत्व;

(ग) होने वाली अनुक्रियाकारी प्रक्रियाओं के लिए अवसरों का प्रावधान; तथा

(घ) समस्या समाधानकर्ता की अनुक्रियाकारी अनुभवों के प्रति सुग्राह्यता तथा उनमें विश्वास ।

अतिकल्पना के अभिप्रेरणात्मक पक्ष

13. किसी प्रेरणा को प्राप्त करते समय निदेशित व्यवहार प्रारम्भ करने के लिए प्रेरणा की आशा आवश्यक होती है।

14. अतिकल्पना-विषयवस्तु अभिप्रेरणात्मक व्यवस्थाओं को सहने की अप्रत्यक्ष तथा अविश्वसनीय सूचक होती हैं।

15. प्रेरणा की आशा अतिकल्पना विषय पर केवल तभी प्रभाव डालती है जब कि प्रेरणा प्राप्त करने के अवसर कुछ सीमा तक अनिश्चित होते हैं।

अन्तर्नोद स्तर पर अतिकल्पना के प्रभाव

16. वैसे अतिकल्पना अन्तर्नोद को कम करने में असफल होती है परन्तु अपने विषयआवर्ती स्वभाव के कारण अतिकल्पना क्रोध को कम कर सकती है तथा उन क्रियाओं की तुलना में जो लगातार क्रोध और दुश्चिन्ता का संकेत देती रहती हैं अपरिहार्य कष्टों की प्रत्याशयी दुश्चिन्ता को कम करती है।

बाह्य व्यवहार तथा अतिकल्पना

17. अतिकल्पना विषय-वस्तु के नमूनों तथा बाह्य व्यवहार की विषय-वस्तु के बीच एकचर संबंध सूक्ष्म होते हैं।

अतिकल्पना पर अन्य प्रभाव

18. जब कोई व्यक्ति किसी मॉडल की क्रियाओं को देखते समय किसी शक्तिशाली असंगत अवआत्मन् में विचारामग्न नहीं होता है तो मॉडल उद्दीपक विषय-व्यक्ति के पहले के स्थापित भंडार से एक ऐसा अवआत्मन् निकाल लेता है जो मॉडल की क्रियाओं से कथानक रूप में मेल खाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एटकिन्सन, जान डब्ल्यू (संपादक), 1958। मोटिव्स इन फैन्टेसी, एक्शन एन्ड सोसाइटी प्रिन्सटन, एन. जे. वैन नास्ट्रेंड।

2. बन्दूरा, एल्बर्ट, रौस, डोरोथी, तथा रौस, शैला ए 1963। 'विकेरियस रीइन्फोर्समेंट एन्ड इमिटेटिव लर्निंग' जर्नल आफ एबनौर्मल एन्ड सोशल साइकोलोजी 67।

3. बकोविट्ज, लियोनार्ड, 1964 'द इफैक्ट्स आफ अग्रेजिंग वायलेन्स, साइन्टिफिक अमेरिकन, 210, 35–41।

4. बस, आरनोल्ड एच. 1961 'दी साइकोलोजी ऑफ अग्रेशन' न्यूयार्क वाइली।

5. डैली, पी. दी फैन्टेसी गेम : हाउ मैन्स एन्ड विमेन्स फेंटेसीज़ अफैक्ट ओवर लाइव्ज़' स्टीन तथा डे न्यूयार्क, 1975।

6. ढ़ौंढियाल, एस. एन. 1964 'आर्ट एज ए प्रोजेक्टिव टैक्नीक फौर चिल्ड्रन' अप्रंकाशित शोध प्रबन्ध, राजस्थान विश्वविद्यालय. जयपुर, भारत।

7. फैशबैक, सैमूर (1935) 1958 'द ड्राइव रिड्यूसिंग फंकशन आफ फेंटेसी बिहेवियर' पृष्ठ 160–175 जान. डब्ल्यू एटकिन्सन (संपादक) मोटिव्स इन फैन्टेसी, एक्शन एन्ड सोसाइटी प्रिंसटन एन जे वैन नास्ट्रेन्ड।

8. फ्रायड, सिगमन्ड (1908) 1925 'द रिलेशन आफ द पायेट टु डे ड्रीमिंग खंड, 4 पृष्ठ 173–183 सिगमन्ड फ्रायड के संकलित शोध पत्रों में, लन्दन होगार्थ, 'डर डियर तथा डास फैन्टेजीरेन' में प्रथम बार प्रकाशित।

9. फ्रायड, सिगमन्ड (1911) 1959 'फारम्युलेशन आन द टू प्रिन्सिपल्स आफ मैन्टल फंकशनिंग, खंड 12 पृष्ठ 215–226 सिगमन्ड फ्राइड द स्टेन्डर्ड एडीशन आफ द कम्पलीट साइकोलोजिकल वर्क्स, लन्दन, होगार्थ।

10. गैट्स, ए. आई एल. एल. एजुकेशनल साइकोलोजी, तीसरा संस्करण मैकमिलन न्यूयार्क, 1948।

11. गार्डन, एच. एल. 'ए कम्पैरेटिव स्टडी आफ ड्रीम्स एन्ड रिसपोन्सेज टु द थीमैटिक अपरसैप्शन टैस्ट' ए नीड प्रैस विश्लेषण, जर्नल आफ पर्सनैलिटी 1953, 22, 234–254।

12. ग्रीन : 'द डेड्रीम' : ए स्टडी इन डैवलपमैंट, लन्दन विश्वविद्यालय, लन्दन 1923।

13. हर्ट एम (संपादक) रोशी साइन्स : रीडिंग्स इन थ्योरी एन्ड मैथड, द फ्री प्रैस, ग्लोन्को, न्यूयार्क, 1962।

14. होल्ट, रोबर्ट आर. 1964, इमेजरी : द रिटर्न आफ द आस्ट्रेसाइज्ड-अमेरिकन साइकोलोजिस्ट 19, 154–264।

15. हर्लोक, ई. बी. पर्सनेलिटी डैवलपमैन्ट मैकग्राहिल–न्यूयार्क, 1974।

16. आइजैक्स, एस. चाइल्डहुड एन्ड आफ्टर, सम एसेज एन्ड क्लिनीकल स्टडीज रुटलेज, 1948।

17. जैम्स डब्ल्यू. द प्रिंसिपल्स आफ साइकोलोजी खंड I (1890, डोवर, न्यूयार्क 1950।

18. क्लिन्गर, ई 'स्ट्रक्चर एन्ड फन्कशन्स ऑफ फेन्टेसी, वाइली, इन्टरसिकनेक, न्यूयार्क, 1974।

19. लोंग, सी. क्लेक्टेड पे पर्स आन द साइकोलोजी आफ फैन्टेसी, मोफ्टयार्ड, न्यूयार्क, 1921।

20. मैक्लीलैंड, डेविड सी. 1961 'द स्वीपिंग सोसाइटी, प्रिंसटन, एन. जे. वैन नौस्ट्रैन्ड।

21. मैकेलर, पीटर, 1957, एमेजिनेशन एंड थिंकिंग : ए साइकोलोजीकल एनेलिसिज़' लन्दन कोहेन तथा वैस्ट।

22. पेज, होरेए, ए 1957 स्टडीज़ इन फैन्टेन्सी : डे ड्रीमिंग फ्रीक्वेन्सी एन्ड रोर्शा स्कोरिंग कैटेगरीज' जर्नल आफ कन्सल्टिंग साइकोलोजी 21, 111–114 ।

23. पियाजे, जीन (1945) '1951 प्ले ड्रीम्स एन्ड इमिटेशन इन चाइल्डहुड' न्यूयार्क नोर्टन, लन्दन ; हीनेमन, फ्रैंच भाषा में प्रथम बार प्रकाशित।

24. रमन, महर्षि : 'हु एम आई' रमन महर्षि के संकलित शोध प्रबंधों से आर्थर आब्सबोर्न द्वारा संपादित तथा श्री रमना श्रमन तिरूवन्नमलाई, भारत द्वारा प्रकाशित, 1966, पृष्ठ 31–42 ।

25. रैपीर्ट, डेविड (संपादक तथा अनुवादक) 1956 आर्गेनाज़ेशन एण्ड पैथोलोजी आफ थोट सिलेक्टेड सोर्सेज़, आस्टिन रिग्स फाउन्डेशन मोनोग्राफ न. 1 न्यूयार्क कोलम्बिया विश्वविद्यालय प्रैस।

26. रिकर्स ओव्सयानकिना, मेरिया सी (संपादक) 1960 रोशार्क साइकोलोजी, न्यूयार्क, वाइली ।

27. सरसोन, एस. बी. 'ड्रीम्स एन्ड थैमेटिक एपरसैप्शन टैस्ट स्टोरीज' जर्नल आफ एबनौर्म ल एन्ड सोशल साइकोलॉजी, 1963–67, 464–479।

28. शरीफ एम. आर. 1959, 'एन अप्रोचमैन्ट टू द थ्योरी एन्ड मैजरमैन्ट आफ इन्ट्रोसेपेशन' पी. एच डी. शोध प्रबंध हार्वर्ड विश्वविद्यालय।

29. शंकराचार्य, : विवेक चूड़ामणि, 'क्लेकटेड वर्कस आफ रमन महर्षि' आर्थर औस्बोर्न द्वारा संपादित तथा श्री रमन श्रमन तिरुवन्नमलाई, तिरुवन्नमलाई, भारत द्वारा प्रकाशित, 1963, पृष्ठ 223–238।

30. शनमुगम टी. ई. 'कोवर्ट एन्ड ओवर्ट पर्सनेलिटीज' जर्नल आफ साइकोलोजिकल रिसर्चिज 1976 32–46 ए सर्वे आफ रिसर्च इन साइकोलोजी'

मे दी गई सूचना, इन्डियन काउन्सिल आफ सोशल साइन्स रिसच, नई दिल्ली: 1972।

31. शुलमैन एच. एस. 'कोन्युऐसीज आफ पर्सनैलिटी एक्स्प्रैशन इन सैल्फ कन्सैप्शन्स' द थीमैटिक ऐपरसैप्शन टैस्ट एन्ड ड्रीम्स, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध। वैस्टर्न रिजर्व विश्वविद्यालय, 1955।

32 सिंगर, जैरोम, एल. 1960 'द एक्सपीरिएन्स टाइप : सम विहेवियीरल कोरिलेट्स एन्ड थ्योरेटिकल इम्पलीकेशन्स पृ. 223–259। मेरिया सी रिकर्स –ओव्सियानकिली (संपादन) रोर्शा साइकोलोजी न्यूयार्क, वाइली।

33. सिंगर, जे. एल. एवं एन्टोबस, यू. एस. आई. मवमैन्ट्स डयूरिंग फैन्टेसीज आरकाइव्ज आफ जनरल साइकिएट्री, 1965, 12, 77–76।

34. सिंगर, जेरोम एल, 1966 ' डे ड्रीमंग : इन्ट्रोडक्शन टू द एक्सपैरीमैंटल स्टडी आफ इनर एक्सपीरियन्स, न्यूयार्क रेन्डम हाऊस।

35. स्टार्कर, एस, 'एसपैक्ट्स आफ इनर एक्सपीरियेन्स', आटोकाइनेसिस डे ड्रीमिंग, ड्रीम रीकोल एन्ड कौगनि टिवस्टाइल : पर्सेप्चुअल एंड मोटर स्किल्स, 1973–36। 633–673।

36. स्टार्कर, एस. 'डे ड्रीमिंग स्टाइल्स एन्ड नोक्टर्नल ड्रीमिंग', फर्दर आब्जरवेशन्स पर्सेप्चुअल एन्ड मोटर स्किल्स, अक्टूबर, 1977, बाक्स 7229 411–422।

37. टैलैन्ट, एम. साइकोलोजी आफ एडजस्टमैंट : 'अन्डरस्टेंडिंग आवरसैल्व्ज एन्ड अदर्स'। डी वैन नौस्ट्रैन्ड, न्यूयार्क, 1978।

38. अन्जर्सभा, ए जे, फैन्टेसी, क्रियेटिविटी, कन्फोंमिटी। ह्यूयमिनिटास, 1976 (फरवरी) खंड 2(1) 73–78 साइकोलोजिकल एबस्ट्रैक्ट्स में सूचीबद्ध खंड 59 जून, 1978 नं. 6, पृष्ठ 1306 अमेरिकन साइकोलोजिकल एसोसिएशन।

39. वैरेन्डोनैक, जै. 'द साइकोलोजी आफ डेड्रीम्स,' मैकमिलन, न्यूयार्क, 1921।

40. वर्नमैन, डी. एस. 'आन द औकरेन्स आफ इंसैस्ट फैंटेसीज़' साइको एनैलिटिक क्वार्टरली, 1977 (अप्रैल खंड 46) 2, 245–255 साइकोलोजिकल एबस्ट्रैक्ट्स में सूचीबद्ध खंड 59। मार्च, 1978 न. 3–अमेरिकन साइकोलोजिकल एसोसिएशन एब्स्ट्रैक्ट नं. 6074।

41. विन्डलबैन्ड, डब्ल्यू 'ए हिस्टरी आफ फिलोसोफी'–मैकमिलन लन्दन 1901 जैम्स एच टफ्ट्स द्वारा अनुवादित।

अभिवृत्ति परिवर्तन

व्यापक रूप से अभिवृत्ति परिवर्तन का विषय न केवल सामाजिक मनोविज्ञान के सिद्धांत तथा अनुसंधान का केंद्र बिन्दु है, बल्कि इसमें व्यक्तित्व, संस्कृति, राजनैतिक मामलों तथा उपयोगकर्ता की अधिमान्यता जैसे विषयों की विद्यार्थियों को समान रूप से प्रभावित करने वाली समस्याओं को भी सम्मिलित किया गया है। प्रचार तथा अनुनय प्रक्रियाओं द्वारा लोकमत को परिवर्तित कर देना अभिवृति परिवर्तन का ही विषय है, परन्तु इसके साथ-साथ पूर्वाग्रह का विकास अथवा इसको कम करना तथा बच्चे का अपनी संस्कृति के प्रति स्थायीभावों तथा मूल्यों पर अडिग रहने के लिए समाजीकरण भी अभिवृति परिवर्तन के विषय हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत परिचय की अवधि अथवा मनश्चिकित्सा के दौरान अंतर्वैयक्तिक भावनाओं तथा प्रत्याशाओं में सुधार भी अभिवृति परिवर्तन का विषय है।

विस्तार तथा संक्षिप्त इतिहास

अभिवृत्ति का संप्रत्यय विविध रूप से परिभाषित किया गया है। अत्यधिक प्रचलित रूप से इसका अर्थ व्यक्ति के उस स्वभाव से लिया जाता है जिसके अनुकूल एक मनोवैज्ञानिक विषय के संबंध में उसके विचार, भावनायें तथा कदाचित क्रियावृतियां संगठित तथा व्यवस्थित होती हैं। इस प्रकार अभिवृत्ति परिवर्तन में उन अवस्थाओं को सम्मिलित किया गया है जिसके अंतर्गत उपरोक्त स्वभाव पहले पहल विकसित होते हैं, तत्पश्चात व्यक्ति के अपने भौतिक, सामाजिक तथा सचना प्रदत्त परिवेश से संपर्क होने के परिणामस्वरूप उनमें सुधार होता रहता है। यह परिवर्तन सापेक्षतः सतों के सतही तथा विशिष्ट मामलों में तथा गहरे डूबे स्थायीभावों अथवा "भावाभिनिवेश" जो वस्तुतः व्यक्ति के तत्व माने जाते हैं, दोनों ही में दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त अभिवृति परिवर्तन में वे परिवर्तन भी सम्मिलित हैं जो अनुभव और परिपक्वकता की स्वाभाविक अवधि में तथा सप्रयत्न अनुनय अथवा प्रचार की सामान्य स्थिति में होते रहते हैं।

यद्यपि इस विषय का विस्तार अतिव्यापक है परन्तु संबंधित अनुसंधान अत्यधिक सीमित क्षेत्र में किए गए हैं। सन् 1920 तथा 1930 में जब अभिवृत्तियां सामाजिक मनोविज्ञान का आकर्षण केन्द्र बन गई थीं (आलपोर्ट 1935, मर्फी एट एल, 1937) तथा पेंसिल और कागज परीक्षणों द्वारा उनके माप की तकनीकें खोज निकाली गयीं, समाज मनोवैज्ञानिक एकमत होकर परिभाषित सामाजिक वस्तुओं तथा मामलों

(युद्ध, चर्च, सजातीय समूह) के प्रति अनुकूल अथवा प्रतिकूल अभिविन्यासों का अन्वेषण करने लगे। उन्होंने मनुष्य की गहनतम तथा अत्यधिक सनकवाली आसक्ति का अध्ययन तथा इसका संप्रत्ययीकरण व्यक्तित्व संबंधी अनुसंधान के विशेषज्ञों के लिए छोड़ दिया। प्रारंभिक अवधि में अभिवृत्तियों के प्रति दृष्टिकोण मुख्यतः वर्णनात्मक तथा सह संबंधात्मक ही था जिसमें उन परिस्थितियों पर बहुत कम ध्यान दिया गया जिनके अन्तर्गत अभिवृत्तियों का निर्माण और उनमें सुधार होता है। इसके अतिरिक्त अभिवृत्तियों के मनोविज्ञान को अधिक सामान्य व्याख्यात्मक सिद्धान्तों से संबद्ध करने का बहुत कम प्रयत्न किया गया।

सन् 1930 से 1940 की अवधि में चार तरह के विकासों से इस क्षेत्र की जटिलता में द्रुत परिवर्तन हुआ। अभिवृत्ति परिवर्तन की समस्यायें अधिक मुखर हो गयीं तथा पहली बार इस दावे को तर्कसंगत रूप से प्रस्तुत किया गया कि सामाजिक मनोविज्ञान ने अभिवृत्तियों के अध्ययन में अत्यधिक महत्वपूर्ण तथा उपयोगी विषय पाये हैं।

नमूना सर्वेक्षण तथा मतदान

सामाजिक मनोविज्ञान पर नमूना सर्वेक्षणों की प्रौद्योगिकी तथा सर्वेक्षण विश्लेषण-लोकमतदान का मुख्य रूप से प्रभाव पड़ा है। नये सर्वेक्षण अनुसंधान संस्थान ने, जो सामान्य जनता से व्यक्तिगत साक्षात्कारों तथा विश्लेषण की तकनीकों से लैस है, सरलता से सुलभ कलिज के विद्यार्थियों को दी गयी प्रारम्भिक प्रश्नावलियों के अध्ययन से छुटकारा पा लिया। जब बार-बार किये गये सर्वेक्षणों में एक ही प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं, मत परिवर्तन पर प्राप्त वृत्ति आंकड़े इस समस्या पर प्रकाश डालते हैं कि "घटनाएं तथा जनसंचार से सम्पर्क" किस प्रकार मतों को प्रभावित करते हैं। सर्वेक्षण डिजाइन तथा विश्लेषण के पैनल तकनीक के अन्वेषण से, जिसके अन्तर्गत एक ही व्यक्ति से बार-बार साक्षात्कार किये जाते हैं, जन समुदाय पर जनसंचार के पड़ने वाले प्रभावों को अनुसंधान का विषय माना जाने लगा। यह विधियां, विशेष रूप से मतदान व्यवहार का अध्ययन, अभिवृत्ति परिवर्तन के उचित परिणामों का पता लगाने में सहायक सिद्ध हुई।

लघु समूह अनुसंधान

कर्ट लेविन तथा उसके विद्यार्थियों (लेविन 1939-1947 फेस्टिंगर 1950) द्वारा प्रारम्भ किये गये लघु समूह गतिकी पर अनुसंधानों की परम्परा की दूसरी महत्वपूर्ण वृत्ति ने सामाजिक यथार्थताओं की प्रयोगात्मक जांच को प्रेरित किया। इसी

कारण किन्हीं समूहों में भाग लेने तथा उनके सदस्य होने के नाते व्यक्तियों की अभिवृतियों और व्यवहार पर पड़ने वाले सामाजिक प्रभावों का विधिवत अध्ययन करने के लिए संप्रत्ययात्मक उपस्कर तथा प्रयोगात्मक तकनीक उपलब्ध हो सकीं। ई. काटजे तथा लेज़रफेल्ड (1955) द्वारा सर्वेक्षण अनुसंधान तथा लघु समूह-अनुसंधान इन दोनों वृत्तियों के बीच सह संबंधों की जांच की गई।

मनोविश्लेषणात्मक निरूपण

इसी समय अमरीकी मनोवैज्ञानिकों के बीच मनोविश्लेषणात्मक संकल्पनायें अधिक लोकप्रिय होती जा रही थीं। उन्होंने व्यक्तित्व संबंधी अनुसंधान के दृष्टिकोण में क्रांति ला दी थी। प्रारंभिक रूप से हैरल्ड लॉसवेल द्वारा सुझाए गये मार्गों का अनुसरण करते हुए 'द अथोरीटेरियन परसोनेल्टी' के लेखकों ने गहनता से इस विषय-का वर्णन किया कि किस प्रकार अभिवृत्तियां गहरे स्थित द्वन्द्व के परिणामों से बचने के लिए अपनाये गये सुरक्षात्मक उपायों का अभिन्न अंग बन जाती हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में अभिवृत्ति निर्माण तथा परिवर्तन का मनोविज्ञान व्यक्तित्व गतिकी के अध्ययन का अभिन्न अंग बन गया।

संचार के प्रयोगात्मक अध्ययन

चौथा निर्माणकारी विकास कार्ल होवलैंड तथा उसके सहयोगियों द्वारा दूसरे विश्वयुद्ध तथा उसके पश्चात् की अवधि के दौरान अनुनय संचार के प्रभावों को नियंत्रित करने वाली अवस्थाओं के अध्ययन के लिए प्रयोगात्मक विधि की परियोजना थी। अपने प्रयोगों की संचार प्रक्रिया के व्यापक संप्रत्यय के अन्तर्गत नियोजित करते हुए इन अन्वेषणकर्ताओं ने संचार के स्रोत तथा विषयवस्तु तथा जन समुदाय के अनेक प्रभावों की पहचान करने के लिए सावधानी से तैयार किये गये प्रयोगों के बल का प्रदर्शन किया।

शताब्दी के मध्य तक इन विकासों ने नियंत्रित प्रयोग नमूना सर्वेक्षण और पैनल की सहसंबंधात्मक विधियों द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन को न केवल एक सक्रिय अन्वेषण का क्षेत्र ही बनाया बल्कि एक ऐसा व्यापक क्षेत्र भी तैयार किया जिसमें सामान्य और सामाजिक मनोविज्ञान के सैद्धांतिक उपागमों का विस्तार और उनका प्रयोग किया जा सके। परिवर्तन से संबंधिति प्रागुक्तिपरक संकल्पनाओं पर फोकस करने पर अब ये सिद्धान्त अभिवृत्ति अनुसंधान के अधिक संगत वर्णनात्मक पक्ष बन गये हैं जबकि पहले ऐसा नहीं था।

अभिवृत्ति परिवर्तन के मुख्य सिद्धान्तों की जांच करने से पहले अभिवृत्तियों के उद्गम और विकास के तात्कालीन संप्रत्ययों की समीक्षा करना अधिक उचित होगा।

अभिवृत्तियों का निर्माण और विकास

अपने प्रारंभिक प्रभावी निरूपण में ऑलपोर्ट ने अभिवृत्तियों के निर्माण के लिए चार अवस्थाओं का वर्णन किया है : अनेक विशिष्ट प्रतिक्रियाओं का एक संगठित संरचना के अन्तर्गत समाकलन, आद्य से अधिक विशिष्ट क्रिया प्रतिरूपों तथा संप्रत्ययात्मक तंत्रों का विभेदन, उपागम और विनिवर्तन की सामान्य अभिवृत्तियां, अभिघात जिसमें मानसिक क्षेत्र का एक अनिवार्य संगठन होता है और इसके पीछे एक "तीव्र संवेगात्मक अनुभव" होता है, माता-पिता, अध्यापकों अथवा सहपाठियों के अनुकरण द्वारा अभिवृत्तियों का निर्माण। इन अवस्थाओं का विशेष अभिवृत्तियों के विकास के वर्णन में सरलता से प्रयोग किया जा सकता है परन्तु यह स्पष्ट है कि ये अवस्थायें व्याख्यात्मक होने के स्थान पर वर्णनात्मक अधिक हैं। न तो इन्हें विधिवत रूप से समन्वित किया जा सकता है और न ही इनमें आपसी नम्यता है। ये अवस्थायें अभिवृत्तिक-सीखने के विधि पक्षों पर विविध रूप से बल देती हैं जैसे उनकी मंद गति अथवा आकस्मिकता, सीखने के अनुभव की संवेगात्मक तीव्रता तथा सूचना का आधार जिन पर निर्भर होने पर अभिवृत्तियों का निर्माण होता है।

अभिवृत्तियों को सामान्य अवस्था में अर्जित व्यवहारात्मक स्वभाव का विशेष मामला मानते हुए कैम्बवैल (1963) ने सूचना (जानकारी) प्राप्त करने के आधार से संबंधित अध्ययन किया तथा उस सूचना (जानकारी) को प्राप्त करने के निम्न छह विविध तरीकों का प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिन पर अर्जित व्यवहारात्मक स्वभाव निर्भर रहते हैं जैसे प्रयत्न और भूल, सामान्य प्रत्यक्ष ज्ञान, अन्य व्यक्तियों के अन्वेषणों के परिणामोंका प्रत्यक्ष ज्ञान, व्यवहार से संबंधित शाब्दिक शिक्षण तथा विषयवस्तु की विशेषताओं के विषय में शाब्दिक शिक्षण। यद्यपि इनमें क्षमता की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है तथापि कैम्पबैल ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि उपरोक्त विभिन्न विधियों द्वारा अर्जित स्वभाव मनोवैज्ञानिक रूप से समतुल्य होते हैं। अनेक विधियों के मेल से अधिक शक्तिशाली स्वभाव उत्पन्न होते हैं तथापि विविध विधियों की समतुल्यता के ठोस प्रमाण अभी भी उपलब्ध नहीं हैं।

अभिवृत्तियों को अर्जित करने की विधियों तथा प्रक्रिया का सैद्धांतिकरण समकालिक अनुदैर्ध्य पर आधारित अभिवृत्तियों के विकास के व्यापक नैसर्गिक इतिहास पर निर्भर होना चाहिए। ऐसे नैसर्गिक इतिहास पर आवश्यक अनुसंधान अधिकांशतः

अभी शेष हैं। एक ही व्यक्ति की जीवनअवधि में अभिवृत्ति संबंधी होने वाले विकास तथा परिवतन का पता लगाने वाली दीघकालिक अनुदैर्ध्य खोजों की भभी कमी है। न्यूकौम ने ऐसे दो लघुकालिक अनुदैर्ध्य अध्ययनों का योगदान किया है : पहले में (1943) विद्यार्थियों के महाविद्यालयी वर्षों में इनकी उदार-रूढ़िवादी अभिवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन तथा दूसरे में (1961) महाविद्यालय के एक समूह में विशिष्ट कारण से एकत्रित सदस्यों के बीच अंतवैयक्तिक अभिवृत्तियों के विकास और परिवर्तन से संबंधित अन्वेषण किया गया है। प्रतिनिधानात्मक अनुसंधान ने, जिसमे विभिन्न आयु-समूहों की अभिवृत्तियों की तुलना की जाती है, राजनैतिक अभिवृत्तियों (हाइमैन 1959) पर थोड़ा बहुत ध्यान देते हुए अधिकतर नृजातीय पूर्वाग्रह (ऑलपार्ट 1954) के क्षेत्र पर ही फोकस किया है।

इन दोनों क्षेत्रों में ऑलपोर्ट की बाल्यावस्था की अवधि में अभिवृत्ति विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में विभेदन की संकल्पना को समर्थन प्रदान करने वाले प्रमाण उपलब्ध हैं। बाल्यावस्था में पूर्वाग्रह की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति में बाहर के समूह तथा उसके चिह्न की अस्पष्ट अस्वीकृति प्रकट होती है, केवल बाद में ही पूर्वाग्रह की सांस्कृतिक रूप से निर्धारित विषयवस्तु का विस्तार होता है। विस्तृत प्रमाण यह सुझाते हैं कि बढ़ती हुई परिपक्वता से अभिवृत्तियां इस अर्थ में उच्च समाकलित होतीं कि उनमें अधिक आंतरिक संगता प्रदर्शित होती है। किन्तु अभिवृत्तियों के संगठन में आयु वृतियों के कारण विविध विषयों, विभिन्न सामाजिक तथा सांस्कृतिक समूहों का अध्ययन अनिवार्य रूप से अपेक्षित है।

अभिवृत्ति परिवर्तन के सैद्धांतिक उपागम

यद्यपि अभिवृत्ति के विकास का नैसर्गिक इतिहास लिखा जाना अधिकांशत शेष है परन्तु अभिवृत्ति परिवर्तन की अंतर्निहित प्रक्रियायें सक्रिय प्रयोगात्मक जांच का विषय बन चुकी हैं। अंशत: यह जांच अभिवृत्तियों को प्रभावित करने वाल कारकों के विषय में आनुभविक सामान्यीकरण के निरूपण तथा परिशुद्धीकरण की ओर निर्देशित की गई हैं तथापि मुख्यत: यह मनोविज्ञान के अन्य क्षेत्रों से लिये गये सैद्धांतिक अभिविन्यासों से निर्देशित हैं।

यद्यपि इस संभावना को दूर नहीं किया जा सकता कि अभिवृत्तियां जन्मजात होती हैं परन्तु इनके निर्माण तथा विकास में सीखने के मुख्य योगदान पर संदेह नहीं किया जा सकता। सीखने के सिद्धान्तों का अभिवृत्ति परिवर्तन की अवस्थाओं पर पड़ने वाले प्रभावों के कारण समुपयोजन किया गया है। अभिवृत्तियों में सचना-जांच के परिणाम ही निहित हैं और बदले में अभिवृत्तियाँ व्यक्ति के अपने जीवन के विविध पक्षों को समझने तथा निर्णय लेने को प्रभावित करती हैं। इसलिए संज्ञान प्रक्रियाओं

के सिद्धान्त अभिवृत्ति परिवर्तन के विषय में संप्रत्यय के निर्माण का दूसरा स्रोत है। मनोवैज्ञानिक वस्तुओं के प्रति अभिवृत्तियों को एक संगठित स्वभाव अथवा स्ववृत्तियों के रूप में समझा जाना व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण भाग है। जिस सीमा तक व्यक्तित्व में एक गत्यात्मक तंत्र के विशेष गुण विद्यमान हैं व्यक्तित्व के समायोजनों तथा व्यवहार में अभिवृत्तियों द्वारा की जाने वाली भूमिका के प्रभावाधीन व्यक्ति की अभिवृत्तियों में विकास और परिवर्तन होना चाहिए। इस प्रकार अभिवृत्ति परिवर्तन के सैद्धांतिक अभिविन्यासों के तीसरे समूह का मूल व्यक्तित्व के सिद्धांत में पाया गया है।

चूंकि अभिवृत्ति परिवर्तन के अध्ययन के सैद्धांतिक अभिविन्यासों के मुख्य प्रकारों से विविध प्रश्न उठते हैं तथा उनका संबंध विभिन्न चरों से होता है, उन्हें पारस्परिक व्यावर्तक अथवा गंभीर रूप से प्रतिस्पर्धी नहीं माना जा सकता है। अभिवृत्ति परिवर्तन के व्यापक दृष्टिकोण में सभी सैद्धांतिक अभिविन्यासों का एकीकरण सम्मिलित है। सैद्धांतिक रूप से तात्कालिक अनुसंधान अभिवृत्ति परिवर्तन की क्रियाओं के उत्तरोत्तर सक्षम तथा आकारबद्ध मॉडलों में प्रगति कर रहे हैं।

सीखने के सिद्धांत

यद्यपि अभिवृत्ति परिवर्तन का अध्ययन अभी हाल में अमरीकी मनोविज्ञान में विकसित सीखने के सिद्धांतों का मुख्य प्रमाणक स्थान नहीं है, सीखने के सिद्धांत के प्रत्येक मुख्य चर का इस अध्ययन में प्रयोग किया गया है। इस प्रकार स्किनर (1957) तथा उसके सहयोगियों के लिए जिन्होंने अभिवृत्ति के स्वभाव संबंधी संप्रत्यय का संबंध प्रकट शाब्दिक व्यवहार से स्थापित किया, अभिवृत्ति परिवर्तन पुनर्बलन के नियंत्रण के अंतर्गत शाब्दिक व्यवहार को आकार देने का विषय बन गया। डूब (1941) द्वारा क्लार्क हल के सीखने के सिद्धांत का प्रयोग अभिवृत्ति के मनोविज्ञान में किया गया। पुनर्बलन सिद्धांत के पूर्वकथन के समर्थन में यह आनुभविक प्रमाण उपलब्ध है कि जब व्यक्तियों की निष्पत्ति को पुरस्कृत किया जाता है तब वे उन अभिवृत्तिक स्थितियों को अपना बना लेते हैं जिन्हें प्रयोग की स्थिति में उन्हें सार्वजनिक रूप से अपनाने के लिए कहा जाता है। क्लासिकीय पैवलोवियन अनुकूलन की प्रक्रियाओं द्वारा भी अभिवृत्तियों की स्थापना को दर्शाया गया है।

अभिवृत्तियों को सीखने के सिद्धांतों के अनुसार स्थापित तथा संशोधित किया जा सकता है। इसका प्रदर्शन अनुसंधान में प्रगति की ओर नहीं ले जाता

अभिवृत्ति परिवर्तन को समझने में सीखने के सिद्धांत का महत्वपूर्ण योगदान उन अन्वेषणकर्ताओं द्वारा किया गया है जिन्होंने इसके औचित्य को स्वीकार किया और उत्तेजना–प्रतिक्रिया विश्लेषण, पुनर्बलन, सामान्यीकरण तथा द्वंद्व को आनुभाविक रूप से उत्पन्न अनुनय संचार तथा अभिवृत्ति परिवर्तन की समस्याओं पर प्रयोग किया है। कार्ल होवलैंड के नेतृत्व में किये गये येल अध्ययन के उपागम की यही विशेषता थी। इस प्रकार प्रभावी संचार में भय उत्पन्न करने वाली अपीलों के प्रभावों के एक अध्ययन में अधिक तीव्र चेतावनी वाली अपीलों के कम प्रभावी होने की व्याख्या उस समय उत्पन्न दुश्चिंता की अवस्था को कम करने के लिए प्रतिरोधी प्रतिक्रियाओं को सीखने के रूप में की गई। इसमें सीखने के सिद्धांत के किसी विशिष्टि परिणाम का परीक्षण निहित नहीं है। सीखने के सिद्धांत की श्रेणियाँ केवल आनुभविक समस्याओं की सीमा को निर्धारित करने का कार्य करती हैं और अनुवर्ती अन्वेषण को निर्देशित करने वाली व्याख्या की रूपरेखा का सुझाव देती है।

संज्ञानात्मक उपागम

सन् 1930 से 1950 की अवधि के दौरान अमरीकी मनोविज्ञान के सैद्धांतिक विवादों ने अमरीकी व्यवहारवाद के उत्तेजना-प्रतिक्रिया द्वारा सीखने के सिद्धांतों के विरोध में गैस्टालट मनोविज्ञान से व्युत्पन्न संज्ञात्मक अभिविन्यास को हीन तथा दया दृष्टि से देखा। यह विवाद अभिवृत्ति परिवर्तन के सामाजिक मनोविज्ञान में भी चले आये। लोग उन वस्तुओं जैसे प्रतिष्ठा के चिह्न अथवा साहित्यिक लेखांशों का उच्च मूल्यांकन उनके उच्च मूल्य तथा प्रतिष्ठित स्रोत के कारण करते हैं। उन वस्तुओं के प्रति उनका मूल्यांकन निम्न होता है जो उन स्रोतों से उत्पन्न होती हैं जिनके प्रति उनकी वर्तमान अभिवृत्ति कम अनुकूलनीय होती है। क्या स्रोतों के इस प्रभाव की व्याख्या अनिवार्यता सहचारी संदर्भों में ही करनी चाहिए जिसमें स्रोत से उत्पन्न सकारात्मक अथवा नकारात्मक प्रभाव क्लासिकीय अनुकूलन के मॉडल पर दिये जाने वाले संदेश पर अडिग रहते हैं अथवा जैसा कि ऐश (1952) ने गैस्टाल्ट–अभिविन्यास से मुखर होकर यह तर्क दिया कि गुणा-रोपण से अर्थ को नया संदर्भ दिया जा सकता है जो संज्ञानात्मक विषयवस्तु में परिवर्तन ला देता है, जिसके विषय में परिवर्तित गुण-दोष निर्धारक निर्णय तथा संलग्न प्रभाव उचित प्रतीत होते हैं।

इस विवाद में दो मामले निहित हैं। पहले के अनुसार अभिवृत्ति परिवर्तन में भावात्मक कारकों की तुलना में संज्ञानात्मक कारकों को प्राथमिकता प्रदान की गई है। क्या लोग एक वस्तु के प्रति अपनी भावनाओं में इसलिए परिवर्तन करते हैं कि वे उसको दूसरी दृष्टि से देखने लगे हैं अथवा क्या वे उस वस्तु के विषय में अपने

विश्वास इसलिए परिवर्तित करते हैं कि पहले से स्थित भावनाओं में उन्हें समा सकें। अब इस बात का प्रमाण स्पष्ट है कि दोनों ही प्रक्रियाएँ घटित होती हैं, विश्वासों (धारणाओं) तथा भावनाओं में तालमेल बिठाने की वृत्ति सबसे मुख्य विषय है (रोजन वर्ग 1960)। दूसरा मामला भी वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पुराना है : क्या प्रभाव की प्रक्रियाओं की व्याख्या सहचारी अथवा अर्थपूर्ण संदर्भों में की जा सकती है? सहचारी सिद्धांत की तात्कालिक व्याख्या में उत्तेजना और प्रतिक्रिया के बीच दखल देने वाली केन्द्रीय मध्यस्थ प्रक्रियाओं पर बल दिये जाने से पुराने संज्ञानात्मक सिद्धांतों से इसका लोप होने लगा है। इन विवादों का जोश अब कम हो गया है क्योंकि सिद्धांतवादी उत्तेजना-प्रतिक्रिया अथवा संज्ञान से संबंधित शब्दावली से अधिकाधिक परिचित होते जा रहे हैं तथा सहजता का अनुभव करने लगे हैं। अब वे अपने मतभेदों को शब्दावली-पसंद तथा संप्रत्यात्मक नीति के मामले ही समझते हैं। उन्हें सत्य बनाम असत्य का प्रश्न कम समझते हैं (कैम्बैल 1963)।

अभिवृत्ति परिवर्तन का प्राचीन संज्ञानात्मक उपागम अब अपना वह प्रभाव छोड़ चुका है जिसके कारण संज्ञानात्मक सिद्धांत व्यवहारवादी मनोविज्ञान की तुलना में अत्यंत संकीर्ण पद्धतिबद्ध स्थिति में रहकर भी जी सका। अब पद्धति निर्माण के स्थान पर अभिवृत्ति परिवर्तन के विशेष पक्षों के स्पष्टीकरण पर जोर दिया जाने लगा। अब यहां एक छोटे से विषय पर निर्णय मनोविज्ञान का प्रयोग किया जाता है। अब मुख्य विषय अभिवृत्ति परिवर्तन में निहित संज्ञानात्मक संगता अथवा संतुलन ही है।

निर्णयात्मक प्रक्रियायें तथा अभिवृत्ति परिवर्तन

प्रागुक्तिक स्वभावों की तरह अभिवृत्तियों को भी निर्णय द्वारा विधिवत् रूप से मापा जाता है : मत के मानक कथनों से सहमति अथवा असहमति। अधिकांश व्यवहार जो अभिवत्तियों के कारण होता है निर्णय के और अधिक कार्यों से नियंत्रित होता है जिसमें एक मामले अथवा वस्तु को मूल्यांकन के ढांचे में रख दिया जाता है और उसे एक वर्ग नियत कर दिया जाता है। इसलिए निर्णय के सामान्य मनोविज्ञान से लिये गये संप्रत्ययों तथा सिद्धांतों को अभिवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालना चाहिए। शेरीफ तथा होवलैंड (1961) तथा शेरीफ एट एल (1965) ने इस पुनर्मैत्री को स्थापित करने के लिए सफल प्रयत्न प्रारंभ किए हैं।

प्रभावी संचार के संदर्भ में प्रयोज्य रूप में उनके चिंतन को निम्नलिखित रूप से सरलीकृत किया जा सकता है : विवादास्पद मामले पर व्यक्ति की अभिवृत्ति का समन्वय, विभेदक मत अवस्थाओं, जो उसे स्वीकार्य प्रतीत होती हैं, के परास में किया जा सकता है। व्यक्ति का स्वीकृति शैथिल्य संलग्न अस्वीकृति शैथिल्य से उस समय विशेष रूप से कम होगा जब व्यक्ति का स्व इस मामले से अधिकाधिक जुड़ा होगा अथवा जब उसका अहम उग्र होता है। किसी स्थिति को समर्थन देने वाले अनुनयी संचार के प्रतिउत्तर में वह इसको अनुकूलन क्षमता के व्यक्तिनिष्ठ माप पर रखता है। ग्रहणकर्ता पर अनुनयी संचार के प्रभाव ग्रहणकर्ता की पृष्ठभूमि तथा उसके निर्णय में स्थित संचार द्वारा समर्थित स्थिति के बीच अंतर पर अधिकतम निर्भर है। दो संचारों की स्थितियों में यह वस्तुनिष्ठ अंतर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप से देखे जाते हैं जो उनके निर्णय के मापों के प्रकार पर निर्भर होता है और यह निर्णय-माप स्थिति से व्यक्तियों के परिचित होने तथा उनकी अपनी स्थितियों का उग्रता तक पहुंचने आदि कारकों से निर्धारित होता है। अधिकतम अनुनयी प्रयत्न तभी प्रत्याशित हैं जब संचार द्वारा समर्थित अनुकूलनीय स्थिति ग्रहणकर्ता की स्वीकृति के शैथिल्य की सीमा के पास पड़ती है, इन अवस्थाओं के अंतर्गत ग्रहणकर्ता अपनी स्थिति से संचार के निर्णनित अंतर को कम कर सकता है (आत्मसात का प्रभाव) और संचार के प्रभाव को ग्रहण करने के लिए अपने आप को स्वतंत्र रखता है। जब संचार की स्थिति व्यक्ति के अस्वीकृति शैथिल्य के अंतर्गत होती है वह अपनी पृष्ठभूमि से संचार की निर्णीत दूरी को बढ़ा-चढ़ा कर बताने लगता है (विषयता प्रभाव) और संचार के प्रभाव को रोकने का प्रयत्न करता है।

इस संक्षिप्त विवरण से यह सुझाव प्राप्त होता है कि निर्णय के मनोविज्ञान के संदर्भ में अभिवृत्ति संबंधी प्रक्रियाओं के पुनःसंप्रत्ययीकरण की संभावना है। वर्तमान में इस संभावना को पूरा किया जाना है। सैद्धांतिक अस्पष्टता के इस मुख्य क्षेत्र का स्पष्टीकरण शेष है तथा अभी तक प्राप्त आंकड़े पूर्ण रूप से तर्कसंगत नहीं हैं।

हेलन के व्यनुकूल स्तर का सिद्धांत निर्णय संबंधी प्रक्रियाओं के विकल्पी संप्रत्ययीकरण का प्रतिनिधित्व करता है जो विस्तृत मनोभौतिकी अनुसंधान में पाया गया है। सैद्धांतिक रूप से इसका प्रयोग अभिवृत्ति परिवर्तन के विश्लेषण में किया जाना चाहिए। हेलन और उसके सहकर्मियों (1964) द्वारा इसकी प्रयोज्यता अधिक व्यापक नहीं है और निर्णय की मूलभूत प्रक्रियाओं के साथ संप्रत्ययात्मक संपर्क द्वारा अभिवृत्ति में परिवर्तन लाने में इसका बहुत कम योगदान है। यह कहा जा सकता है कि अभिवृत्ति की अभिव्यक्ति प्रस्तुत उद्दीपन

सामाजिक संदर्भ तथा उसके दबाव ("पृष्ठभूमि कारक") तथा व्यक्तित्व ("अवशिष्ट कारकों") का संयुक्त कार्य है--यह नया सिद्धांत नहीं है।

संगति अथवा संतुलन सिद्धान्त

1950 के मध्य से अभिवृत्ति परिवर्तन के अध्ययन के अत्यधिक सक्रिय पक्षों ने उन सिद्धांतों पर फोकस किया जो व्यक्ति के विश्वासों को संगति की ओर ले जाने वाली प्राक्कल्पित प्रवृत्तियों तथा अभिवृत्तियों और आने वाली सूचनाओं, जिसका सामना उसे करना पड़ता है, के आपसी क्रियाकलापों के निरूपण द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की गति को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। मनोवैज्ञानिक संगतता की ओर झुकाव की वृत्ति का विचार पुराना है। तात्कालिक अवधान में जो नया इसे प्राप्त हुआ है वह उन परिणामों की परीक्षा करने के लिए सैद्धांतिक विषयानुसरण तथा प्रयोगात्मक पटुता का मेल है जो प्रारंभिक सामान्य ज्ञान से परे है। ये सिद्धांत विस्तार तथा महत्वाकांक्षा में अत्यधिक भिन्नता रखते हैं परंतु इनमें से कोई भी अभिवृत्ति परिवर्तन का सामान्य विवरण प्रस्तुत नहीं करता।

हैडर का संतुलन

घटना विज्ञान की ओर उन्मुख सैद्धांतवादी हैडर (1964) ने एक अनुभवी व्यक्ति 'पी' द्वारा एक अन्य व्यक्ति 'ओ' तथा अभिवृत्तिक विषय 'एक्स' के साथ विशिष्ट संबंधों को बनाते समय व्यक्ति के संज्ञानात्मक क्षेत्र में संतुलन तथा 'असंतुलन' की अवस्थाओं को पहचानने की क्रिया में निहित ऊपर से अत्यधिक सीमित लगने वाली समस्या के उपचार के लिए संगति की ओर ले जाने वाली वृत्तियों पर तात्कालिक समय में बल दिये जाने को प्रेरित किया। दो प्रकार के संबंधों पर विचार किया गया--पसंदगी तथा नापसंदगी का संवेगात्मक (अभिवृत्ति संबंधी) संबंध तथा विशिष्ट निकट रूप में व्यक्तियों अथवा वस्तुओं को एक दूसरे का होते हुए देखने में निहित यूनिट संबंध। दोनों तरह के संबंध सकारात्मक अथवा नकारात्मक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं (संबंधों की मात्रा विचारणीय नहीं है)। पी ओ एक्स त्रिक में संबंध संतुलित तब होते हैं जब यह तीनों संबंध सकारात्मक होते हैं अथवा दो नकारात्मक और एक सकारात्मक होता है। असंतुलन तब होता है जब दो संबंध सकारात्मक और एक नकारात्मक होता है।

हैडर यहां पर त्रिक के असंतुलन का उदाहरण इस प्रकार देता है--पी ओ की पूजा करता है (पसंद, सकारात्मक), जो झूठ बोलता है (ओ तथा एक्स के बीच सकारात्मक यूनिट) पी झूठ बोलने को ना पसंद करता है (पी तथा

एक्स के बीच नापसंदगी का नकारात्मक संबंध है)। जहां पी ओ को नापसंद करता है त्रिक में संतुलन हो जाता है। अन्य मार्ग जिनके द्वारा पी संतुलन पुनः स्थापित कर सकता है वह है पी और एक्स के बीच यूनिट संबंध तोड़ देना (झूठ बोलना ओ के लिए विशेष बात नहीं है) अथवा उस संज्ञानात्मक विभेदन को जो 'ओ' के झूठ बोलने वाले पक्ष (नापसंद) को शेष 'ओ' (पसंद किये जाने वाले) से अलग करता है, सामने लाकर 'ओ' की अनुभवी एकता को भंग करना—अब दोनों विभेदक पक्ष संतुलित त्रिक में आ जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार संतुलित अवस्थाएं स्थिर और असंतुलित अवस्थायें अस्थिर होती हैं। हैडर ने नयी सूचना को रजिस्टर्ड करके संतुलन के बिगड़ जाने पर उसे पुनः स्थापित करने की सामान्य वृत्ति की प्राक्कल्पना की, परन्तु उसका निरूपण केवल प्रज्ञात्मक तथा गुणात्मक है जिसमें जिन मार्गों द्वारा संतुलन प्राप्त किया जा सकता है उनके पूर्वानुमान का कोई आधार नहीं है।

न्यूकोम्ब ' का सिद्धान्त

हैडर जिन संबंधों का उल्लेख करता है वह अनुभव प्राप्त करने वाले विषय 'पी' के संज्ञात्मक क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। न्यूकोम्ब (1961) जो हैडर की तरह अभिवृत्तियों तथा अंतर्वैयक्तिक आकर्षणों के बीच सहसंबंधों में रुचि रखता है, उन परिस्थितियों का संशोधित रूप प्रस्तुत करता है जिनके अंतर्गत पी–ओ–एक्स संबंध व्यक्तिनिष्ठ रूप से संतुलित अथवा असंतुलित होते हैं। व्यक्तियों के बीच अपारस्परिक आकर्षणों की अपेक्षा पारस्परिक आकर्षण अधिक प्रतिफलित होता है तथा 'ओ' की 'एक्स' के प्रति अभिवृत्तियों का यथार्थ प्रत्यक्षज्ञान अयथार्थ प्रत्यक्षज्ञान की तुलना में लम्बे समय तक प्रत्येक 'पी' के लिए अधिक प्रतिफलित होगा, इन अतिरिक्त अनुमानों के आधार पर न्यूकोम्ब यह पूर्वानुमान कर सका कि स्थापित सामाजिक समूहों में जैसे ही अंतर्वैयक्तिक संबंध स्थिर होते हैं वे वस्तुनिष्ठ संतुलन की अवस्थाओं के सन्निकट होते हैं। उदाहरण के लिए महत्वपूर्ण मामलों पर मतैक्य रखने वाले तथा अन्य व्यक्तियों के विषय में समान भावनाओं वाले व्यक्ति एक दूसरे को पसंद करने लगते हैं। विशेष रूप से बुलाये गये विद्यार्थी जीवंत-समूहों में न्यूकोम्ब द्वारा विद्यार्थियों में आपसी जानपहचान बनाने की प्रक्रिया का अध्ययन प्रारंभ से ही व्यक्तिनिष्ठ संतुलन की ओर तीव्र वृत्ति का प्रमाण प्रस्तुत करता है। इससे यह प्रकट होता है कि समय के साथ वस्तुनिष्ठ संतुलन की ओर उत्तरोत्तर तीव्र वृत्तियां विकसित होती रहती हैं। इस प्रकार न्यूकोम्ब ने हैडर के संतुलन सिद्धांत को दृश्यघटना विज्ञान के निजी संसार से अंतर्वैयक्तिक संबंधों के वस्तुनिष्ठ संसार तक विस्तृत किया।

संज्ञानात्मक संगति का सिद्धान्त

एक तात्कालिक उत्प्रेरक उद्यम में रोजनबर्ग तथा अबलसन (1960) न रीतिबद्धता की पहल की ओर संतुलन के सिद्धांत को पी-ओ-एक्स के सीमित विस्तार में संवेगात्मक रूप से महत्वपूर्ण मामले के विषय में संज्ञानों के भीतर तथा उनके बीच संगति की अधिक सामान्य अवस्थाओं तक विस्तृत किया।

रोजनबर्ग तथा अबेलसन ने संज्ञानात्मक संरचना में असंतुलन के प्रति प्रतिक्रियाओं की ऐसी सोपानिकी प्रस्तावित की है कि असंतुलन की स्थिति इससे समाप्त की जा सकती है तथा इस सोपानिकी में संज्ञानात्मक तत्वों के संबंधों और संकेतों में न्यूनतम परिवर्तन निहित होते हैं। व्यक्ति किस प्रकार संज्ञानात्मक असंगतियों को दूर कर सकता है इसको निर्धारित करने के लिए असंतुलन को कम करने की वृत्ति ही एक मात्र कारक नहीं है। संगति के लिए प्रयत्न करते रहने से स्वतंत्र व्यक्ति में उन समाधानों को अधिमान्यता देने की प्रवृत्ति भी होती है जो उसको संभाव्य सुखदायक लब्धि की अधिकतम सीमा तक पहुंचा देने में सहायक होती है।

इस मॉडल से संबंधित अनुसंधान में परीक्षण की आवश्यकता है तथा इसी रूप में बने रहने पर यह मॉडल निस्संदेह बहुत कम समय तक जीवित रह सकता है।

फेस्टिंगर का संज्ञानात्मक विसंगति सिद्धांत

संगति सिद्धांत अब तक जितने भी रूप में प्रकट हुआ है, उसमें से फेस्टिंगर के संज्ञानात्मक विसंगति सिद्धांत ने 1950 की बाद की अवधि तथा 1960 के प्रारंभ में (फेस्टिंगर 1957) अत्यधिक सक्रिय अन्वेषणों को आकर्षित किया। कोई भी दो संज्ञानात्मक तत्व---धारणायें अथवा अल्पज्ञान---संगत भी हो सकते हैं और विसंगत भी अथवा एक दूसरे से असंबद्ध भी हो सकते हैं। विसंगति तब होती है जब एक तत्व मनोवैज्ञानिक रूप से दूसरे के विरोध में होता है। एक व्यक्ति द्वारा अनुभव की गयी संगति की कुल मात्रा विसंगत संबंधों में तत्वों के महत्व तथा संबंधों के समानुपात का फल है। विसंगति के उभर कर आने पर व्यक्ति में उसको कम करने के लिए प्रयत्न करने की वृत्ति होती है : विसंगति की अवस्थाओं में अभिप्रेरणात्मक गुण होते हैं। विसंगति को निम्न तीन तरीकों से कम किया जा सकता है : विसंगत संबंधों में निहित एक या अधिक तत्वों के परिवर्तन द्वारा, पहले से स्थित संज्ञानों से संगति रखने वाले नये संज्ञानात्मक

तत्वों को जोड़ देने से तथा विसंगत तत्वों के महत्व को कम कर देने के द्वारा। संज्ञानों को वास्तविकता के समीप लाने की सामान्य वृत्ति धारण कर ली जाती है।

यद्यपि यह संक्षिप्त कथन एक सामान्य संगति सिद्धांत जैसा जान पड़ता है, फेस्टिंगर तथा उसके अनुगामियों द्वारा किये गये प्रयोगात्मकता के पटु कार्यक्रम मुख्यत: संगति अथवा असंगति के सीमित क्षेत्र से संबंधित हैं---व्यक्ति ने जो कुछ किया है उसका संज्ञान तथा जो कुछ नहीं किया है उसके कारण का बोध। विशेष मामले उस समय सामने आते हैं जब व्यक्ति कोई निर्णय लेता है अथवा जब उसको अरुचिकर अनुरोध को मानना पड़ता है। पहले मामले में निर्णय के बाद निर्णय के ज्ञान (बोध) तथा कार्य के विकल्पी मार्ग, जिसको अस्वीकृत किया गया है, के समर्थित कारणों के ज्ञान के बीच विसंगति उत्पन्न की जाती है। ऐसी विसंगति को कम करने का प्रयत्न व्यक्ति को स्वयं लिए गये निर्णय के लिए ज्ञान एकत्रित करने अथवा उसके सामाजिक समर्थन खोजने के लिए प्रेरित करता है।

दूसरे मामले में अर्थात् "बाधित अनुपालन में" व्यक्ति द्वारा उस कार्य के बोध जिसके लिए वह प्रतिबद्ध है तथा उन कारणों के संज्ञान, जिनकी वजह से वह उस कार्य का पालन नहीं करना चाहता था, के बीच विसंगति निहित है। विसंगति कम करने का एक तरीका यह है कि वह अपनी निजी वृत्ति अथवा अभिमान्यता को अनुपालनीय व्यवहार की दिशा में परिवर्तित कर ले। यहां पर कुछ 'अप्रकट अथवा अप्रत्यक्ष' पूर्वानुमानों का आधार मिलता है जिसकी पुष्टि से फेस्टिंगर अपने सिद्धांत के लिए तीव्र समर्थन का दावा करता है। इस प्रकार यदि एक व्यक्ति को अपने मत के विपरीत किन्हीं और मतों को प्रकट करने के लिए रिश्वत अथवा उत्प्रेरणा अथवा प्रलोभन दिया जाता है, ऐसी स्थिति में प्रलोभन अथवा उत्प्रेरणा जितनी ही कमजोर होगी उतनी ही व्यक्ति में अपने निजी मतों को उस दिशा में परिवर्तन करने की संभावना होती है जिसमें उसकी संगति उन विचारों की अभिव्यक्ति से हो सके जिसके लिए उसे प्रलोभन अथवा उत्प्रेरणा दी गयी है। अनुपालन के लिए सकारात्मक अथवा नकारात्मक उत्प्रेरणा पर्याप्त होनी चाहिए। उत्प्रेरणा जितनी अधिक होती है अनुपालन के आधार उतने ही असमानुपाती होते जाते हैं और इसीलिए विसंगति जितनी कम होती है, इसको और अधिक कम करने के लिए अभिवृत्ति परिवर्तन के लिए अभिप्रेरणा भी कम होती जाती है।

स्पष्टत: इस सिद्धांत की प्रत्यक्ष सामान्यता तथा इसका परीक्षण करने वाले विशेष प्रकार के प्रयोगों में व्यापक असंगतता है। ब्रेहम तथा कोहन (1962) ने विसंगति सिद्धांत के साक्ष्य पर अपनी विस्तृत समीक्षा में यह स्पष्ट करते हुए

अंशतः इस अंतराल को कम करने का प्रत्यन्न किया है जहां। अन्य सिद्धांतों का मुख्य संबंध व्यवहार के पूर्ववृत्त से है वहां विसंगति सिद्धांत अंशतः व्यवहार के परिणामों से संबंधित है। उन्होंने यह भी बताया कि विशिष्टि संज्ञानात्मक तत्वों की मनोवैज्ञानिक अंतःसंबद्धता अथवा विसंगति की स्थिति को निर्धारित करने से पहले प्रतिबद्धता (वचनबद्धता) आवश्यक है। उन्होंने यह बताने के लिए सिद्धांत के मूल अभिकथन को पुनः निरूपित किया कि एक व्यक्ति प्रतिबद्धता का औचित्य सिद्ध करने के लिए इस सीमा तक प्रयत्न करेगा कि उस प्रतिबद्धता के साथ सूचना विसंगति की स्थिति उत्पन्न हो जाती है (ब्रेहम तथा कोहन 1962)—यह एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक कथन है, परंतु विस्तार में फेस्टिंगर की मूल प्रतिज्ञप्तियों से अत्यधिक सीमित है।

फेस्टिंगर के सिद्धांत ने अभी हाल में इस क्षेत्र में व्यापक अनुसंधानों को प्रेरित किया है और इनमें से अनेक अनुसंधानों ने इस सिद्धांत की पुष्टि भी की है परन्तु इसके बावजूद भी सिद्धांत की स्थिति स्पष्ट नहीं हो पायी है। प्रयोगों ने विकल्पी व्याख्याओं के द्वार खोले हैं। विसंगति उत्पन्न होने की पूर्व शर्त के रूप में प्रतिबद्धता पर किये गये प्रयोगों की आलोचनात्मक रूप से जांच नहीं की गई है और अब यह आवश्यक भी हो सकता है। काफी हद तक प्रयोगात्मक पद्धता सैद्धांतिक सुव्यवस्था का विकल्प हो गयी है। परन्तु सिद्धांत इस विषय में कुछ नहीं बता पाया है कि व्यक्ति विसंगति को कम करने के लिए कौन से संभव तरीके अपनाये। विसंगति सिद्धांत पर आधारित पूर्वकथन के विरोध में सीखने के पुनर्बलन तथा द्वंद्व सिद्धांत द्वारा दिये गये पूर्व कथन दया के पात्र हैं, परन्तु जैसा कि अभी हाल के अध्ययनों में प्रकट हुआ है कि प्राप्त परिणाम विसंगति सिद्धांत का समर्थन नहीं करते। यह कहा जा सकता है कि लम्बी अवधि में विसंगति सिद्धांत व्यक्ति की अभिवृत्तियों पर पड़ने वाले व्यवहार के विशेष विरोधाभासी प्रतिपुष्टि प्रभावों का अर्थ निकालने में सहायक हो सकता है, परन्तु अभिवृत्तियों के निर्माण तथा व्यवहार के मार्गदर्शन को नियंत्रित करने वाले मुख्य विषयों के बारे में इस सिद्धांत में बहुत कम बताया गया है अथवा इन विषयों को अधिक व्यापक सिद्धांत में सम्मिलित किया जा सकता है। विरोधाभासी "अस्पष्ट पूर्वकथन (भविष्य कथन)" का प्रलोभन मुख्य विषय से ध्यान को हटा सकता है परन्तु इसका निरूपण तथा विशिष्टीकरण करने की आवश्यकता है।

व्यक्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित उपागम

सीखने के सिद्धांतों का स्रोत निम्न स्तर के प्राणिओं तथा कालिज के नये विद्यार्थियों पर किए गए जटिल प्रयोगों में पाया गया, निर्णयात्मक सिद्धांत में

अभी तक मनोभौतिकीय प्रयोगशाला के चिह्न शेष हैं। अन्य संज्ञानात्मक सिद्धांतों ने अपने माडल प्रत्यक्षज्ञानात्मक प्रक्रियाओं पर किए गए जटिल अनुसंधानों में पाये परन्तु व्यक्तित्व सिद्धांत ने अपना उद्गम निदानशाला तथा परामर्श कक्ष में पाया। इस विषय से संबंधित परिवेश बिल्कुल भिन्न है। कठोरता और परिशुद्धता को मानवीय अनुभव और समस्याओं के औचित्य के पक्ष में त्याग दिया गया है। क्या यह लाभ होने वाली हानि के औचित्य को सिद्ध कर सकेगा, यह मामले आधुनिक मनोविज्ञान को विभाजित करता है।

मनोविश्लेषण

व्यक्तित्व संबंधी सिद्धांतों में मनोविश्लेषण में ही नैदानिक मूल के विशेष गुण तथा अवगुण तीव्रता से दिखाई देते हैं। एक सत्यवादी व्यक्तित्व (अबोरनो एट एल 1950) में पूर्वाग्राही अभिवृत्तियों के स्रोतों का अध्ययन करने के लिए एक सामान्य मनोविश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य को सामने लाया गया। समृद्ध, प्रभावी, परंतु तकनीकी रूप से असमृद्ध इस अध्ययन में पूर्वाग्राही व्यक्ति अपनी कठोर तथा विचित्र रक्षात्मक मुद्रा (भंगिमा) को बनाये रखने के लिए, कमजोर को अस्वीकृत कर बलशाली तादात्मीकरण द्वारा अपने सम्मान को गौरवमय बनाने के लिए तथा स्पष्ट विकल्पों वाले संसार से, ऐसा संसार जिसमें पारंपरिक सम्मान के सुरक्षित क्षेत्र अज्ञात खतरों तथा षडयंत्रों से घिरे रहते हैं, नैतिक रूप से व्यवहार करते हुए अपने अस्वीकार्य आवेगों को नियंत्रण में रखने तथा अपनी अनिश्चितताओं को दूर करने के लिए अपनी अभिवृत्तियों का उपयोग करता है। यह अध्ययन प्रत्यक्ष रूप से अभिवृत्ति परिवर्तन से संबंधित नहीं है, परंतु इसके निहितार्थ स्पष्ट थे; पूर्वाग्राही अभिवृत्तियां इस सीमा तक गहरी पैठ गई हैं कि तार्किक अनुनय से इनमें परिवर्तन होने की बहुत कम संभावना है। पूर्वाग्रह की अभिव्यक्ति दृढ़ सत्ता द्वारा नियंत्रित की जा सकती है, इसकी गतिशील जड़ें कदाचित मनोचिकित्सा द्वारा काटी जाती हैं तथा पूर्वाग्रह के अवसर बालक के उचित लालन-पालन द्वारा दूर किये जा सकते हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यद्यपि तार्किक अभिवृत्तियों के विषय में केवल यह एक पार्श्व चित्र है।

सीखने के सिद्धांत की तरह मनोविश्लेषण सिद्धांत अभिवृत्ति परिवर्तन के उन अन्वेषणकर्ताओं के लिए संप्रत्यय-वर्ग तथा प्राक्कल्पनायें प्रस्तुत करता है, जिनके मुख्य अनुसंधान निर्देश अध्ययन करने वाले विषय से उत्पन्न हुए हैं। ऐसे प्रभाव जेनिस (1959) के कार्य में विशेष रूप से स्पष्ट दिखाई देते हैं, जिनके द्वारा किये गये निर्णयात्मक द्वंद्वों का उपचार फेस्टिंगर के लिए मुख्य विकल्प का प्रतिनिधित्व करता है।

स्व-सिद्धांत—स्व, स्व-बिंब तथा पहचान पर बल देने वाले व्यक्तित्व के उपागमों ने अभिवृत्ति परिवर्तन के औपचारिक सिद्धांतों को उभर कर आने के अवसर प्रदान नहीं किये । अभिवृत्तियों में परिवर्तन को रोकने के लिए आत्म-अंतर्भाविता (शैरिफ तथा कैंटिल) जैसे शब्द के विस्तृत तथा अनियंत्रित प्रयोग से ऐसे सिद्धांतों का विकास हो सकता है । रोकेफ (1969) द्वारा विश्वासों के सिद्धांतों पर किया गया कार्य भी उपरोक्त सिद्धांतों के विकास के सुझाव प्रस्तुत करता है, जिसमें वह स्व और संसार के विषय में आदिम 'विश्वासों (धारणाओं) के एक केन्द्रीय क्षेत्र की तुलना व्यक्ति द्वारा सत्ता के विषय में प्राप्त विविध प्रकार के विश्वासों वाले एक परिधीय क्षेत्र से करता है । चीनी साम्यवादियों (लिफ्टन 1961 शचेन एट एल 1961) द्वारा प्रचालित तथा कथित बलात् मत परिवर्तन अथवा विचारों के सुधार में तीव्र बलात् अनुनय अवस्थाओं के अंतर्गत अभिवृत्ति परिवर्तन के वृत्तांत प्रत्यक्ष रूप से अधिक उचित जान पड़ते हैं । उन मामलों में जहां गहरी पैठी धारणायें (विश्वास) मौलिक रूप से उखड़ने लगी थीं तथा अभिवृत्तियों में सापेक्षतः अत्यधिक परिवर्तन हो गये थे, वहां "मृत्यु तथा पुनः जन्म" के संदर्भ का उपयोग किया गया था । उन अभिवृत्तियों को, जो स्व की केन्द्रीय भाग बन गई थीं गहरी पैठने न देने के लिए पहचान के बोध पर आक्रमण किया जाता है तथा अपराध भावना का उद्बोधन, आत्म स्वीकृति तथा प्रायश्चित किये जाते हैं । एक युवक अंजान व्यक्ति को साधु में (हरिक्सन 1958) अथवा एक सिपाही को अधिकारी में (स्मिथ 1949) परिवर्तित करने के लिए समान प्रक्रियाओं का वर्णन किया गया है । इन वर्णनों में दी गई घटना में मानवीय सशक्तता तथा प्रत्यक्ष महत्व इस बात पर संदेह उत्पन्न करते हैं कि अभिवृत्ति परिवर्तन के सिद्धांत में संबंधित विषयों का बंद क्षेत्र में रहने तथा प्रयोगशाला के मंद दबावों के कारण कितना सुधार हो सकता है । स्व-निर्मित जीवन पैटर्न तथा मनश्चिकित्सा द्वारा अभिवृत्ति परिवर्तन की प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण समानताएं हैं ।

अभिवृत्ति परिवर्तन में प्रयोजनबद्ध उपागम

अभिवृत्ति विकास और परिवर्तन के तात्कालिक उपागमों के समूह व्यक्तित्व के एक एकल सिद्धांत से बंध कर रह जाने के स्थान पर व्यक्तित्व को एक आनुभविक तंत्र के रूप में मानने की ओर न्यूनाधिक रूप से अभिमुखी है । इस अनुमान पर कि अभिवृत्तियों के अभिप्रेरणात्मक आधार के ज्ञान द्वारा उन परिस्थितियों का पता चलना चाहिए जिनके अंतर्गत परिवर्तन की आशा की जा सकती है, प्रयोजनबद्ध उपागम उन कार्यों का सापेक्षतः विस्तृत लेखा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं जो व्यक्ति के मत तथा अभिवृत्तियों द्वारा उसके व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होते है । प्रयोजनपरक दृष्टिकोण के अनुसार अनुनयी प्रयत्न साधारण तथा जिन तीव्र

प्रतिधारण का कुछ मात्रा तक स्थित होना व्यापक रूप से माना गया है तथा इसने तात्कालीन वर्षों में इस संबंध में अनुसंधान करने की जिज्ञासा को जन्म दिया है।

चयनात्मक उन्मुखता की तरह इस प्रकार का उपचेतन प्रतिधारण व्यक्ति-समुदाय के सदस्यों के वर्तमान स्थित विचारों का पुनर्बलन करता है तथा व्यक्ति में परिवर्तन की संभावना को कम करता है।

(ग) चयनात्मक प्रत्यक्षज्ञान

जन-समुदाय के सदस्य का अंतिम शरण स्थान चयनात्मक प्रत्यक्षज्ञान है अथवा वस्तु के अनुकूल न होते हुए भी अपनी पूर्ववृत्तियों के कारण उसको अनुकूल समझने की प्रवृत्ति है। यद्यपि ऐसा अनानुकूल संचार के प्रति उन्मुख होने के समय तथा उसके बाद की अवधि में होता है, इसे चयनात्मक प्रतिधारण से अलग करना संभव नहीं है। अनानुकूल संचार का सामना होने पर और उसे स्मरण रखते हुए भी जनसमुदाय उस संचार की विषयवस्तु को इस प्रकार विकृत कर देते हैं जिससे कि वह इसे अपने विचारों में स्थान दे सके तथा इसका समर्थन कर सके। उदाहरण के लिए जातीय सहिष्णुता को विकसित करने वाले संचार को पूर्वाग्रह से पीड़ित व्यक्ति जातीय असमानता का पुष्टिकरण समझते हैं (कोलम्बिया विश्वविद्यालय 1946, कूपर तथा जहोदा 1947)। "हमारा नगर सभी जातियों के सहयोग से आगे बढ़ रहा है" जैसे नारे वाले पोस्टरों में पूर्वाग्राही व्यक्ति अपने इस मत की पुष्टि पाते हैं कि अल्पसंख्यक समूह के सदस्यों को बहुसंख्यक समूह के सदस्यों को आरामदायक जीवन व्यतीत करने के लिए निम्न स्तर के काम करने पड़ते हैं। इस प्रकार चयनात्मक प्रत्यक्षज्ञान, चयनात्मक उन्मुखता तथा चयनात्मक प्रतिधारण की तरह एक अन्य घटना है जो जनसंचार के प्रभावों की मध्यस्था पुनर्बलन की दिशा में करती है।

2. **समूह मानक का प्रभाव**--समाज मनोवैज्ञानिकों ने बार-बार इस बात का निरूपण किया है कि समूह मानक उन व्यक्तियों की अभिवृत्तियों तथा मतों पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं जो विशेष समूह के सदस्य बनना चाहते हैं।

संक्षेप में समूहों में सदस्यता अनेक अभिवृत्तियों के स्थिरक तथा कई मामलों में मत परिवर्तन के लिए साधक का कार्य करती है। औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों ही प्रकार के समूह विशिष्ट मामलों के संदर्भ में मूल्यों, अभिवृत्तियों तथा मतों की एकता रखते हैं अथवा उन्हें विकसित करते हैं। अनुनयी जनसंचार का, जो समूह के लिए अपरिचित स्थिति में होते हैं, वैयक्तिक सदस्य द्वारा विरोध किया जाना संभव है। ऐसा केवल इसलिए नहीं है कि वे उसकी पूर्ववृत्ति से संघर्ष में होते हैं बल्कि इसलिए भी कि मत परिवर्तन से वह समूह में अपनी अच्छी स्थिति से होने वाले मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक लाभों से वंचित रह जायेगा। अन्य समूह-सदस्यों से संबंधित

ऐसे सब कारकों का वर्णन यहां उचित न होगा । अत्यधिक मूलभूत तथा महत्वपूर्ण कारक इस प्रकार हैं-- जन समुदाय की पूर्वाभिवृत्तियां तथा उनके द्वारा अपनायी गई विशेष चयनात्मक प्रक्रियाएं, समूह मानकों का प्रभाव, दो ओर जाने वाली प्रक्रिया की संक्रिया जसे व्यक्तिगत प्रभाव तथा मतनेतृत्व तथा मुक्त उद्यम समाज में जनमाध्यम की स्थिति ।

1. पूर्वाभिवृत्तियां तथा चयनात्मक प्रक्रियाएं

"पूर्वाभिवृत्तियां" शब्द का प्रयोग यहां किसी ओर झुकाव की वृत्ति के रूप में किया गया है । पूर्वाभिवृत्ति को अधिक उपयुक्त रूप से "अभिवृत्ति" विन्यास कहा जा सकता है जो जनसमुदाय में पूर्व स्थित होता है । इस प्रकार व्यक्ति किसी एक दल को मत देने, किसी शास्त्रीय संगीत का आनन्द उठाने अथवा हिंसा के कार्य करने की ओर उन्मुख होता है । जनसंचार इन्हीं पूर्वाभिवृत्तियों के कुछ अंश का पुनर्वलन करता है । जनसंचार नीचे दी गई चयनात्मक प्रक्रियाओं द्वारा कार्य करते हुए एक अंशदायी एजेंट के रूप में प्रभावी होता है ।

(क) चयनात्मक उन्मुखता

अनुसंधानों से यह बार-बार प्रकट हुआ है कि व्यक्ति उसी जनसामग्री के प्रति उन्मुख होते हैं जो उनकी वर्तमान स्थित अभिवृत्तियों अथवा रुचियों के अनुकूल होती है और विरोधी अभिवृत्तियों अथवा अपने रुचियों के क्षेत्र से बाहर के संचार की उपेक्षा करते है । उदाहरण के लिए जो व्यक्ति शास्त्रीय संगीत पसंद नहीं करते वे शास्त्रीय संगीत के प्रसारण से दूर रहते हैं तथा अपनी वर्तमान अभिरुचियों क अनुकूल संगीत की तुलना में इसकी उपेक्षा करते हैं । जनसमुदाय माध्यम को एक बड़े बाजार की तरह प्रयोग करता है, वह उन्हीं वस्तुओं को चुनता है जिन्हें वह पसंद करता है और अनचाही तथा अपरिचित वस्तुओं को नहीं खरीदता । चयनात्मक उन्मुखता की प्रक्रिया इस प्रकार पहले से भरे पेट के पोषण की प्रक्रिया है तथा खाद्य से संबंधित पसंद का पुनर्वलन है । व्यवहार तथा अभिवृत्ति ही वे कारण हैं जिनकी वजह से जन संचार परिवर्तन लाने वाले प्रभाव के स्थान पर पुनर्वलन का कार्य करता है ।

(ख) चयनात्मक प्रतिधारण

जन समुदाय में अपनी अभिरुचियों के अनानुकूल सामग्री को अनुकूल सामग्री की तुलना में ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं होती और वे ऐसी सामग्री को तुरंत भूल जाने की ओर प्रवत्त होते हैं । इस प्रक्रिया को चयनात्मक प्रतिधारण कहते हैं । चयनात्मक

विरोधों का सामना करते हैं वह इस तथ्य को प्रस्तुत करते हैं कि व्यक्ति अल्प संभाव्य परिवर्तन के साथ अपनी अभिवृत्तियों को बनाये रखने में अत्यधिक रुचि रखते हे ।

गहन नैदानिक अध्ययन के आधार पर स्मिथ, ब्रूनर तथा वाहिट (1956) ने अभिवृत्तियों तथा मतों के कार्यों के तीन व्यापक वर्गीकरण प्रस्तुत किये है : (1) वस्तु मूल्यांकन, (2) सामाजिक समंजन, तथा (3) वाह्यीकरण ।

1. वस्तु मूल्यांकन

इस वर्ग में वाह्य संसार से व्यक्ति के उद्देश्यों, लक्ष्यों, मूल्यों तथा रुचियों के संबंध का निरीक्षण और मूल्यांकन निहित है, इससे चयनात्मक प्रकटीकरण तथा ज्ञान पर ध्यान आकर्षित होता है । आने वाली सूचना (ज्ञान) को जिस मूल्यांकित वर्ग में रखा जा सकता है, इसकी व्यवस्था व्यक्ति के वर्तमान स्थित विश्वासों तथा मतों के संग्रह की क्रिया को सरल बना देती है । जब वस्तु मूल्यांकन का एकाधिकार होता है, व्यक्ति की अपनी रुचियों तथा उद्यमों में वास्तविकता के कारणों का पुनः मूल्यांकन करने के लिए प्रेरित करने वाली सूचना के तर्कसंगत प्रस्तुतीकरण के प्रति-उत्तर में अभिवृत्तियों को नम्य होना चाहिए । यद्यपि इस मामले में कुछ विरोध का सामना करना पड़ता है क्योंकि सापेक्षतः ही स्थिर वर्ग अत्यंत अस्थिर संसार का प्रभावी रूप से सामना करने के लिए व्यक्ति द्वारा किये गये समन्वय की क्रिया में लाभदायक सिद्ध होते हैं ।

2. सामाजिक समंजन

अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से संबंधों को सरल बनाने, समाप्त कर देने अथवा केवल उन्हें बनाये रखने में व्यक्ति के मतों की भूमिका को सामाजिक समंजन कहा गया है । चूंकि अभिवृत्तियां अभिप्रेरित अस्वीकृति और साथ ही स्वीकृत अभिप्रेरणा के प्रतिउत्तर में व्यवस्थित हो सकती हैं, 'स्व-अन्य संबंधों की मध्यस्था' इस समंजन के लिए अधिक उचित शब्द है । वस्तु-मूल्यांकन, जिसमें भाव संबंधी वस्तु के विषय में ज्ञान या आगत एक कठिन फार्मेट तथा परिवर्तन का स्त्रोत है, के विरोध में यहां सामरिक सूचना इस विषय में प्राप्त की जाती है कि अन्य व्यक्ति उस वस्तु के प्रति क्या धारणा रखते हैं ? यह सूचना व्यक्ति को अन्यों के साथ अपने आप को संबद्ध तथा तादात्म्य करने अथवा उससे दूर रहने तथा अन्य विरोध करने को अभिप्रेरित करती है ।

3. वाह्यीकरण

कार्यों की अंतिम श्रेणी में, जिन्हें व्यापक रूप से वाह्यीकरण तथा अहमरक्षा में बांटा गया है, वाह्य वस्तु अथवा घटना का प्रतिउत्तर इस प्रकार निहित है कि वह

(प्रतिउत्तर) व्यक्ति की न सुलझने वाली आंतरिक समस्याओं से प्रभावित होता है। बाह्य तथ्यों के प्रति अपनाई गई अभिवृत्ति आंतरिक संघर्ष में अपनाई गई अप्रकट अभिवृत्तियों के स्थान पर अभिव्यक्त प्रतीक है। अन्यों की अपेक्षा इस कार्य पर मनोविश्लेषण ने बल दिया है तथा यही वह कार्य है जिस पर सत्ता प्राप्त व्यक्तित्व में बहुत जोर दिया जाता है। इस प्रकार से अभिप्रेरित अभिवृत्तियां विधिवत रूप से प्रस्तुत सूचना से प्रभावित नहीं होतीं, परन्तु दुश्चिंता उत्पन्न करने वाले पुनः आश्वासनों, स्व-अंतदृष्टि में किये गये परिवर्तनों अथवा मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा में अनावृत्त प्रक्रियाओं के प्रति प्रतिक्रियाएं करती हैं।

कॉटज ने भी निकट के संबंध वाला चार कार्यों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है और अभिवृत्ति परिवर्तन की स्थितियां उत्पन्न करने के लिए प्रत्येक वर्गीकरण को प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया है।

ऐसे प्रयोजनबद्ध वर्गीकरण को सत्य अथवा असत्य सिद्धांत न मानकर अन्वेषणात्मक सुविधा की व्युक्तियां ही मानना चाहिए। परन्तु अभिवृत्ति परिवर्तन की प्राक्कल्पनाओं, जिनका वे दावा प्रस्तुत करते हैं, का परीक्षण आनुभाविक अनुसंधान में किया जाता है। यहां अभिवृत्तियों के अध्ययन में अंतर्निहित समस्याएं अभिप्रेरणा के मूल्यांकन से संबंधित समस्याओं से मिलकर स्पष्ट परिणामों तक पहुंचने में कठिनाई उत्पन्न करती है।

जनसंचार तथा अभिवृत्ति परिवर्तन

इस तथ्य का बार-बार निरूपण किया गया है कि जनसंचार का अधिकतम सामान्य प्रभाव व्यक्ति समुदाय की पूर्व स्थित अभिरुचियों, अभिवृत्तियों तथा व्यवहार का पुनर्बलन और इसका न्यूनतम सामान्य प्रभाव व्यक्ति समुदाय को अभिवृत्तियों तथा व्यवहार में परिवर्तन है। इसके अतिरिक्त जनसंचार से कुछ अभिवृत्तियों की तीव्रता में संशोधन हो जाता है परंतु उनकी दिशा अपरिवर्तित रहती है।

बाद के अनुसंधान प्रभावों की पहचान से आगे बढ़ गए हैं और ये प्रभाव क्यों और कैसे होते हैं इसका वर्णन करते हैं। इन प्रक्रियाओं के अध्ययन का मुख्य तथ्य यह है कि जनसंचार अपने जन समुदाय पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभावी कम ही होता है और वह संभाव्य प्रभावों की मध्यस्था करने वाले अन्य कारकों की सीमा में ही कार्य करता है। मध्यस्था करने वाले ये कारक जनसंचार को पुनर्बलन का एक मात्र साधन बनाने के स्थान पर उसे एक एजेंट बनाते है।

मामलों पर की गई परिचर्चा व्यक्ति की मौलिक अभिवृत्तियों तथा अनानुकूलन संचार के प्रति उसके विरोध को पुनर्बलित करती है। ऐसी चर्चाएं 'पुनश्चर्या' का कार्य करती हैं। मानकों को अधिक उजागर कर यह परिचर्चायें अभिज्ञ अस्थिर व्यक्तियों को रूढ़िवादिता पर वापिस ले आती हैं (मैक्वी 1954)।

तकसंगत रूप से यह उचित प्रतीत होता है कि इन वृत्तियों की शक्ति समूह के मामले की प्रमुखता तथा जिस मात्रा तक उसके सदस्य अपनी सदस्यता को महत्व देते हैं, दोनों से ही सहसंबंधित है। तथापि उपयुक्त अनुसंधान से यह प्रकट होता है कि सदा ही ऐसी स्थिति नहीं है। उदाहरण के लिए ऐसे प्रयोग भी हुए है जिनमें एक समूह तथा एक मामले के संदर्भ में सहसंबंध पाये गये परंतु संभवतः समान प्रमुखता वाले एक अन्य मामले के संबंध में अथवा एक समान समूह के सदस्यों के संदर्भ में भी सहसंबंध का प्रकट होना असफल रहा (केले 1955 : केले तथा बोलकार्ट 1952)। यह असंगतता अभी तक स्पष्ट अथवा दूर नहीं हो पायी है।

3. **संचार का दो चरण में प्रभाव**—व्यक्तिगत प्रभाव, अंतवर्यक्तिक प्रभाव, संचार का दो चरण में प्रभाव तथा मत नेतृत्व जैसे दृग्विषय जनसंचार के प्रभाव के अंतर्गत आते हैं। इस दृग्विषय का महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि अभिवृत्ति तथा व्यवहार के विविध क्षेत्रों में निर्णय के संदर्भ में व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से उतना ही तीव्रता से प्रभावित होता है जितना जनसंचार से। "अन्य व्यक्ति" मत बनाने वाला नेता, संरक्षक, प्रभावशाली व्यक्तित्व, अग्रणी, नवप्रवर्तक तथा रुचि निर्माणकर्त्ता हो सकता है। ये व्यक्ति सामान्यतः नेतृत्व की औपचारिक स्थिति प्राप्त करने वाले नहीं होते और न ही ये राजनैतिक स्थिति प्राप्त अध्यापक, उपदेशकर्त्ता अथवा संभ्रांत वर्ग के व्यक्ति होते हैं। उनकी मुख्य जनांकिकीय विशेषता यह है कि उनकी कोई उत्कृष्ट जनांकिकीय विशेषता नहीं होती। साधारणतः ये वे व्यक्ति होते हैं जो चेतन अथवा अचेतन रूप से अपने समान व्यक्तियों की अभिवृत्तियों तथा मतों को प्रभावित करते हैं। इनके अनुगामी थोड़े ही व्यक्ति होते हैं, इनका प्रभाव अनौपचारिक रूप से उपस्थित व्यक्तियों पर प्रवचनों द्वारा होता है और ऐसा प्रभाव प्रयोजनहीन अथवा प्रयोजनबद्ध दोनों ही हो सकता है तथा उनका नेतृत्व सीमित क्षेत्र तक होता है। सार्वजनिक मामलों के संदर्भ में मत बनाने वाला नेता सौंदर्यपरक अथवा फैशन संबंधी मामलों में मत बनाने वाला नेता नहीं होता।

जहां मत बनाने वाले नेता होते हैं वहां यह देखा गया है कि वे जनसंचार से अत्यधिक जुड़े रहते हैं। इस प्रकार मत बनाने वाले नेता साधारणतः अपने अनुगामियों की तुलना में सामयिक रूप से उपयुक्त जनसंचार का सामना अधिक करते हैं और प्राप्त

ज्ञान (सूचना) को अपने अनुयायिओं में बांट भी सकते है और नहीं भी। मत बनाने वाला नेता अपने मतों का प्रचार जनसंचार द्वारा करता है तथा वह अपने अनुयायिओं को दिये हुए विषय में वस्तुतः जनसंचार का क्या अर्थ है इस विषय की व्याख्या बताता है। आवश्यक मुद्दा यह है कि जहां व्यक्तिगत प्रभाव स्थित होता है वह प्रायः जनसंचार के प्रभावों की मध्यस्था करता है। संक्षप में प्रारंभिक अनुसंधान का तात्कालिक पुनः मूल्यांकन यह बताता है कि मत बनाने वाले नतृत्व अथवा अंतर्वैयक्तिक प्रभाव कदाचित परिवर्तन के हित में कार्य करने की अपेक्षा स्थिरता तथा पुनर्बलन की दिशा में कार्य करते हैं।

4. **मुक्त उद्यम समाज में जनमाध्यम**—मुक्त, प्रतियोगी अर्थव्यवस्था में लाभ बनाने वाले उद्योगों के रूप में कार्य करने वाले जनमाध्यम को विशाल तथा उच्च समुदाय को संतुष्ट करना होता है। यद्यपि माध्यम के कुछ भाग विशेष रूप से समाचार, वृत्तवर्णन, वृत्तचित्र तथा अन्य सूचनाप्रद कार्यक्रम उच्च विवादास्पद कार्यक्रमों से संबंधित होते है, इसका मुख्य भाग मनोरंजन से जुड़ा रहता है। ये मनोरंजन कार्यक्रम साधारणत : विवादास्पद मामले से दूर रहने का प्रयत्न करते हैं तथा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जन समुदाय द्वारा स्वीकृत विश्वासों और मूल्यों को प्रतिबिंबित करते हैं। माध्यम स्वयं भी ऐसे विश्वासों और मूल्यों को पुनर्बलित करता है। यह उन माध्यमों जैसे टेलीविज़न आदि द्वारा अपनाये जाने वाला मार्ग है जिनके निवेश और उत्पादन दोनों ही उच्च होते हैं। लघु बजट वाले माध्यम जैसे विशिष्ट पत्रिका अथवा वैयक्तिक रेडियो स्टेशन चुने हुए तथा लघु जन समुदाय के लिए ही होते है परंतु राष्ट्रीय टेलीविज़न विस्तार केंद्र ऐसा नहीं कर सकते और आर्थिक रूप से लाभ प्राप्त करने वाले साधन के रूप में कार्य करते हैं। इसको अन्यथा इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है कि संचार, जो लाभ उन्मुखी होता है उसे मुख्यतः जन रुचियों की ओर निर्देशित होना चाहिए तथा जन मूल्यों को प्रतिबिंबित करना चाहिए। जब जनमाध्यम ऐसा नहीं करता इसे जन माध्यम नहीं कहा जा सकता।

भारत में अभिवृत्ति परिवर्तन पर किया गया कार्य

अभिवृत्ति का संप्रत्यय कदाचित सामाजिक मनोविज्ञान में अत्यधिक विस्तृत चर्चा का विषय है। ये अभिवृत्तियां इतनी प्रचलित और सार्वभौमिक हैं जैसे भूख और प्यास। चूंकि यह निर्धारक वृत्ति है, इसका प्रत्यक्ष रूप से प्रेक्षण नहीं किया जा सकता बल्कि प्रतिउत्तरों तथा समाजीकरण से ही इनका पता लगाया जा सकता है। सामाजिक परिवेश में वस्तुओं, व्यक्तियों, विचारों, मूल्यों अथवा स्थितियों के प्रतिक्रिया करने की पूर्व स्वीकृति को अभिवृत्ति कहा जा सकता है और इन्हें सामाजिक स्थितियों में ही अर्जित किया जा सकता है। इस विषय पर भारतीय विशेषज्ञों द्वारा प्रयोग किये गये हैं जिनमें से कछ प्रयोगों का विवरण दिया जा रहा है।

अन्वेषण के लिए तर्क

भारत में अनुसंधानकर्ताओं ने निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए अनुसंधान कार्य अपने हाथ में लिया है :

(i) क्या असंगत संज्ञानात्मक तंत्र वाले व्यक्ति संगत संज्ञानात्मक तंत्र वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अपनी अभिवृत्ति में सरलता से परिवर्तन ले आते हैं ?

(ii) क्या जटिल संज्ञानात्मक संरचना वाले व्यक्ति सरल संज्ञानात्मक संरचना वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सरलता से अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन ले आते हैं ?

(iii) क्या नम्य व्यक्ति अनम्य अथवा रुढ़िवादी व्यक्ति की तुलना में अपनी अभिवृत्तियों में सरलता से परिवर्तन कर लेते हैं ?

हमें यह पता है कि असंगत संज्ञानात्मक तंत्र वाले व्यक्ति उस परिवर्तन को सरलता से स्वीकार कर लेते हैं जो उनके विचारों में तारतम्य लाता है। संज्ञानात्मक रूप से जटिल अथवा व्यापक संरचना संज्ञानात्मक रूप से सरल अथवा सीमित संरचना की तुलना में परिवर्तन की ओर अधिक प्रवृत्त होती है। इसके अतिरिक्त अनम्य अथवा रुढ़िवादी व्यक्ति नम्य अथवा अरुढ़िवादी व्यक्तियों की अपेक्षा परिवर्तन की ओर अधिक प्रवृत्त नहीं होते हैं। इसी प्रकार के अन्य सहायक मामले इस विषय में किये गये अनुसंधान में उठाये गये हैं। अन्य सहायक मामले इस प्रकार हैं :

1. रूढ़िवाद तथा आमूल परिवर्तनवाद के बीच संबंध तथा मिश्रित विवाहों के प्रति अभिवृत्ति ।

2. क्या अनुनयता पर लिंग का प्रभाव पड़ता है ?

3. मौलिक अभिवृत्ति तथा अनुनय संचार द्वारा होने वाले अभिवृत्ति परिवर्तन की मात्रा में क्या संबंध है ?

नमूना

अन्वेषणकर्ता ने सामूहिक नमूनों का अध्ययन किया। उसके विषय कालिज के विद्यार्थी ही थे। 24 कालिज विश्वविद्यालय से संबंधित थे और छह यादृच्छिक नमूनों के आधार पर चुने गये। नमूना सर्वेक्षण में 17–25 वर्ष की आयु की लड़कियों तथा लड़कों को रखा गया ।

माप के उपकरण

माप के लिए निम्नलिखित उपकरणों का प्रयोग किया गया :–

(1) **आमूल परिवर्तनवाद––रूढ़िवादी स्केल** सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक इन चारों महत्वपूर्ण मामलों के विषय में अभिवृत्तियों का माप करने वाले इस स्केल का विकास लिकर्ट द्वारा निर्धारित आठ चरणों पर किया गया तथा 120 एकांश वाली प्रश्नावलियां तैयार की गईं। प्रारंभिक प्रयत्नों के पश्चात् 25 प्रतिशत उच्चतम तथा 25 प्रतिशत निम्नतम प्राप्तांक एकांश विश्लेषण के लिये चुने गये। प्रत्येक एकांश के लिए माप मूल्य अंतर की गणना के पश्चात् असंगत एकांशों को निकाल दिया गया। क्या एक विशिष्ट प्रश्न दोनों समूहों में उच्चतम अंतर कर पाता है इसे जानने के लिए सभी एकांशों के टी-मूल्य की गणना की गई। इस मापनी का वैधता गुणांक 0.67 तथा विभवतार्थ विश्वासनीयता 0.89 है।

30 एकांशों वाली एक मिश्रित विवाह-मापनी भी तैयार की गई और उपरोक्त मापनी के अंतिम संचालन के समय लागू की गई। इस मापनी की विभवतार्थ विश्वसनीयता 0.95 तथा वैधता गुणांक 0.60 था।

(2) **संज्ञानात्मक जटिलता के माप के लिए मिलटन रोकेच का संकीर्णता परीक्षण**––इस परीक्षण को संज्ञानात्मक जटिलता के माप के लिए अपनाया गया था। इस एन एम मापनी (संकीर्णता मापनी) का प्रयोग 320 पूर्व स्नातक तथा स्नातकोत्तर विद्यार्थियों का अंतिम परीक्षण करते समय किया गया था। अन्वेषणकर्ता ने रोकेच एन एम परीक्षण का संचालन किया और निम्न दस संप्रत्ययों यथा बौद्ध धर्म, पूंजीवाद, ईसाई धर्म, साम्यवाद, प्रजातंत्र, तानाशाही, हिन्दू धर्म, इस्लाम, जैन धर्म तथा समाजवाद के बीच अंतसहसंबंधों को दर्शाने वाली परिभाषायें प्राप्त की।

(3) **रूढ़िवादिता मापनी**––रहेफिश्च (1958), काउल्टर (आई सेनक 1954) तथा वेसले (1953) द्वारा निर्मित रूढ़िवादिता की तीन विश्वसनीय तथा वैधतापूर्ण मापनियों से लिए गये कथनों की सहायता से व्यक्तित्व-रूढ़िवादिता के माप तैयार किये गये। इस मापनी में 50 एकांश रखे गये। मिश्रित विवाह के प्रति अभिवृत्तियों को जानने के लिए एन एम मापनी के साथ इस मापनी का प्रयोग 225 व्यक्तियों वाले नमूनों पर किया गया। रूढ़िवादिता मापने के वैध मापों से लिये गये एकांशों के कारण इस मापनी की वैधता की गणना नहीं की गई। इसका विश्वसनीयता गुणांक 0.84 था।

प्राक्कल्पना

इस अन्वेषण से निम्नलिखित प्राक्कल्पनाओं का निरूपण किया गया--

1. संगत संज्ञानात्मक संरचना की तुलना में असंगत संज्ञानात्मक संरचना अभिवृत्ति परिवर्तन के लिए अधिक प्रभाव्य है ।
2. संज्ञानात्मक जटिलता के उच्च स्तर वाले व्यक्ति सरल संज्ञानात्मक व्यवस्था वाले व्यक्तियों की तुलना में अभिवृत्ति परिवर्तन की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं ।
3. संकीर्णता अभिवृत्ति परिवर्तन की निम्न मात्रा से संबंधित है ।
4. न्यून अभिवृत्ति परिवर्तन रुढ़िवादिता से संबंधित प्रश्नावलियों द्वारा मापी गयी व्यक्तित्व रुढ़िवादिता का परिणाम है ।
5. उग्र अभिवृत्तियां तटस्थ अभिवृत्तियों की तुलना में अभिवृत्ति परिवर्तन की ओर अधिक प्रवृत्त होती हैं ।
6. आमूल परिवर्तनवाद का संबंध मिश्रित विवाह के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति के साथ होता है ।
7. पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अनुनय संदेशों द्वारा परिवर्तन की ओर अधिक प्रवृत्त होती हैं ।

विश्लेषण तथा परिणाम

अन्वषण का एक उद्देश्य अभिवृत्ति परिवर्तन पर संज्ञानात्मक संगति का प्रभाव जानना है । संगत तथा असंगत अभिवृत्ति संरचना वाले व्यक्तियों की संख्या इस प्रकार है :

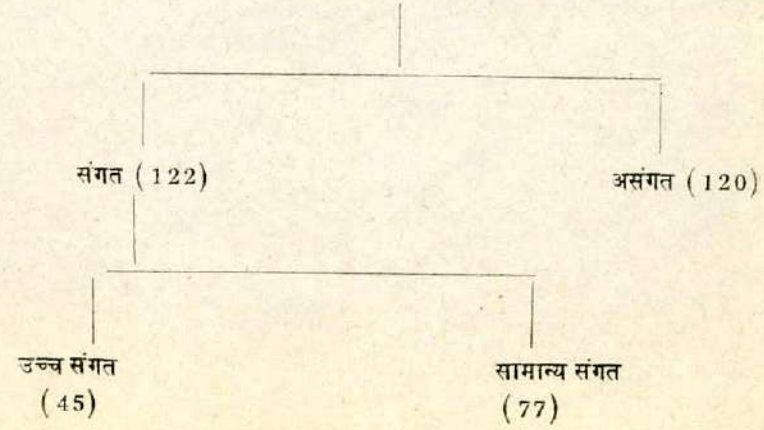

महत्वपूर्ण परिणाम

(क) संज्ञानात्मक रूप से संगत व्यक्ति संज्ञानात्मक रूप से असंगत व्यक्तियों की अपेक्षा परिवर्तन के अधिक प्रतिरोधी होते हैं, तथा

(ख) संज्ञानात्मक रूप से जटिल तंत्र वाले व्यक्ति सरल संज्ञानात्मक तंत्र वाले व्यक्तियों की अपेक्षा परिवर्तन की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं। इन दोनों प्राक्-कल्पनाओं की पुष्टि हो चुकी है। रुढ़िवादी व्यक्ति, अरुढ़िवादी व्यक्तियों की अपेक्षा परिवर्तन से अधिक प्रभावित नहीं होते, यह तीसरी प्राक्कल्पना भी सत्य सिद्ध हो चुकी है। एक अन्य प्राक्कल्पना को भी अन्वेषण के परिणामों द्वारा समर्थन प्राप्त हुआ है। इस प्राक्कल्पना के अनुसार एन एम माप के विषय में उग्र अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्ति परिवर्तन के लिए अधिक प्रवृत्त नहीं होते। अंतिम प्राक्कल्पना जिसका परीक्षण किया गया था वह यह थी कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक अनुनयी होती हैं और इसका समर्थन परिणामों द्वारा किया गया है यद्यपि अंतर अधिक महत्वपूर्ण नहीं था। यह तथ्य कि स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा अधिक अनुनयी होती हैं, पूर्वी तथा पश्चिमी संस्कृति दोनों में ही सत्य है क्योंकि हमारा पैतृक समाज स्त्रियों से पुरुषों के अधीन रहने की अपेक्षा करता है। यद्यपि स्त्रियों का मुक्ति आंदोलन आगे बढ़ रहा है फिर भी उन्हें पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करवाने में अभी समय लगेगा।

परिणाम

अन्वेषण के परिणाम अभिवृत्ति परिवर्तन पर संज्ञानात्मक तथा व्यक्तित्व संबंधी कारकों के प्रभाव पर प्रकाश डालते हैं। इसका संबंध अन्य महत्वपूर्ण कारकों जैसे आमूल-परिवर्तनवाद, रुढ़िवाद, अभिवृत्ति की उग्रता तथा अभिवृत्ति परिवर्तन पर लिंग के प्रभाव से भी है। वर्तमान अध्ययन से अनेक समस्याएं उभर कर सामने आयी हैं जिन पर और अधिक अनुसंधान किया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आलपोर्ट, गारडन डब्लू. 1935 एटिट्यूड्स पोजिस 798--844 कार्ल मरचीसन (एडिटर), अ हैंड बुक ऑफ सोशल साइकोलौजी, बोरसेस्टर, मास: क्लार्क यूनिवर्सिटी प्रेस ।

2. कोहन, आर्थर आर. 1964 एटिट्यूड्स चेंज एंड सोशल इनफ्लूएंस, न्यूयार्क एंड लंदन : बेसिक बुक ।

3. फेस्टिंगर, लिओन 1957 'थ्योरी ऑफ कोगनेटिव डिसोनेंन्स' इवानस्टोन इल : पेटरसन ।

4. हेडर, फ्रिन्ट्ज 1946 एटिट्यूड्स एंड कोगनेटिव ओरगेनाइजशन, जरनल ऑफ साइकोलौजी 21 : 107--112 ।

5. कॉटज डेनिअल 1960 द फंक्शनल अपरोच टू द स्टडी ऑफ एटिट्यूड्स, पब्लिक ओपिनिअन क्वार्टरली 24 : 163--204 ।

6. लेविन, कर्ट (1939--1947) 1963 फील्ड थ्योरी इन सोशल साइंसेज : सलक्टेड थ्योरोटिकल पेपर्स--एडिटेड बॉय डोरविन कार्टराइट, लंदन : टेवी स्टोक ।

7. रोजनबर्ग, मिटन जे, 1960-एन अनेलेसिस आफ अफेक्टिव कोगनेटिव कनसिसटेंसी पेंजिस 15--64 इन एटिट्यूड आर्गेनाइजेशन एंड चेंज : 'ऐन अनेलेसिस आफ कनसिसटेंसी अमंग एटिट्यूड्स कम्पोनेन्ट्स, येल स्टडीज इन 'एटिट्यूड्स एंड कम्यूनिकेशन', वोल० 3 न्यू हेवन, येल यूनि. प्रेस ।

8. स्कॉट, विलयम ए. 1957 'एटिट्यूड चेंज-थ्री रिवाड आफ वरबल बिहेवियर जरनल ऑफ एबनोर्मल एंड सोशल साइकॉलोजी 55 : 72--75 ।

9. शेरीफ, मजफर एंड होवलैंड, कार्ल I 1961 सोशल जजमट : 'एसीमिलेशन एंड कोन्टास्ट इफक्ट इन कम्यूनिकेशन एंड एटिट्यूड्स चेंज, येल स्टडीज इन एटिट्यूड्स एंड कम्यूनिकेशन, वो ल० 4, न्यू हेवन, यल यूनि. प्रेस ।

10. न्यूकॉम, थ्योडोर एम. (1943) 1957 'पर्सनेलिटी एंड सोशल चेंज : 'एटिट्यूड्स फोरमेशन इन ए स्टूडेंट कम्यूनिटी', न्यूयार्क : डाइडेन ।

11. 'इंडियन एजूकेशनल रिव्यू' ए रिसर्च जरनल, नेशनल कौंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग ।

क्षेत्र सिद्धांत

मनोविज्ञान में "क्षेत्र सिद्धांत" शब्द का प्रयोग मुख्यतः कर्ट लेविन तथा उसके सहयोगियों के विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता है। यद्यपि इस शब्द का उद्गम भौतिकी से हुआ है जहां इसका प्रयोग विद्युत चुम्बकीय शक्तियों के क्षेत्रों के संदर्भ में विद्युत चुम्बकीय घटना के संप्रत्यय का उल्लेख करने के लिए किया जाता है। मनोविज्ञान में क्षेत्र 'सिद्धांत' मनोवैज्ञानिक घटनाओं की भौतिकी प्रक्रियाओं के संदर्भ में व्याख्या का प्रयत्न नहीं है, बल्कि यह कार्यकरण संबंधों के विश्लेषण तथा वैज्ञानिक संरचनाओं के निर्माण की एक विधि है (लेविन 1943)। लेविन के अनुसार इस विधि का प्रयोग मनोविज्ञान में उसी प्रकार संतोषजनक रूप से किया जा सकता है जिस प्रकार भौतिकी में।

लेविन की प्रारंभिक रुचियां तथा लेख–जर्मन दार्शनिक अरनेस्ट केसीरर से अत्यधिक प्रभावित, मनोविज्ञान में सिद्धांत के निरूपण से संबद्ध थे। अनुसंधान संबंधी अभिविन्यास तथा मनोविज्ञान में उसका प्रभाव सिद्धांतीकरण पर किए गए चिंतन से ही उद्भूत हुए थे। मनोविज्ञान में सिद्धांतीकरण संबंधी उसका दृष्टिकोण निम्नलिखित कुछ मुख्य विषयों से संबंधित है :

(1) व्यवहार की मनोवैज्ञानिक व्याख्या पर बल देना उन प्रयोजनों-पर जो व्यवहार में अंतर्निहित होते हैं और उन लक्ष्यों पर जिनकी ओर बढ़ने अथवा जिनसे दूर होने के लिए व्यवहार का मार्गदर्शन किया जाता है, फोकस करना है। यह इस बात पर बल देता है कि जिस व्यक्ति का अध्ययन किया जा रहा है उसके लिए मनोवैज्ञानिक तथा वास्तविक रूप से जो कुछ भी उपस्थित है उससे उसे जूझना है।

(2) कुल स्थिति पर जोर इस बात पर होता है कि मनोवैज्ञानिक क्षेत्र अथवा 'जीवन-पर्यावरण' ही अत्यधिक आधारिक अथवा मूलभूत संरचना है। सभी मनोवैज्ञानिक घटनायें जीवन पर्यावरण की ही क्रिया समझी जाती हैं जिसमें व्यक्ति और पर्यावरण एक दूसरे पर आश्रित कारकों का एक समुच्चय माना जाता है। लेविन ने प्रमाण द्वारा यह स्पष्ट किया कि व्यवहार की व्याख्या व्यक्ति तथा पर्यावरण दोनों का उल्लेख किए बिना निरर्थक है तथा मनोवैज्ञानिक घटनाएं "आनुवंशिकता", "आवश्यकताओं" "आदतों" से निर्धारित नहीं होती तथा परिस्थिति से स्वतंत्र होकर कार्य नहीं कर सकती।

(3) परंपरागत कार्य-कारण भाव के स्थान पर पद्धतिबद्ध कार्य-कारण भाव पर बल दिया जाना यह इंगित करता है कि मनोवैज्ञानिक घटनाओं की उस क्षेत्र की विशेषताओं (गुण-धर्म) के संदर्भ में ही व्याख्या की जानी चाहिए जो उस समय उपस्थित था जब घटनायें घटी थीं। लेविन ने "दूरी की क्रिया" विचार को अस्वीकृत कर इस बात पर बल दिया कि पिछली घटनाएं केवल परंपरागत कार्य-कारण श्रृंखलाओं में ही स्थान रखती हैं जिनके आपसी गुंथन से वर्तमान स्थिति उत्पन्न होती है।

(4) गतिकी संबंधी दृष्टिकोण, गैस्टाल्ट स्कूल की तरह इस विचार का समर्थक है कि जीवंत तंत्र अपने पर्यावरण के संबंध में एक गत्यात्मक संतुलन रखता है। इस विचार से संबंधित लेविन की रुचि उन प्रक्रियाओं में भी थी जिनके द्वारा संतुलन बिगड़ जाने पर फिर से उसे स्थापित किया जा सकता है। उसकी रुचि ऐसी अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियाओं में भी थी जैसे आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तनावों का उत्पन्न होना, लक्ष्यों की स्थापना, लक्ष्य निर्देशित क्रिया तथा तनाव से मुक्ति।

लेविन एक गणित विशेषज्ञ ही न था बल्कि वह एक साहसी तथा मौलिक प्रयोगकर्ता भी था। तथापि, लेविन के सिद्धांतीकरण के दृष्टिकोण में छिपे विषयों ने मनोविज्ञान पर उसके द्वारा किए गए आनुभविक कार्य में मुख्य भूमिका निभाई है। इन विषयों की झलक उसकी निम्नलिखित अनुसंधान संबंधी क्रियाओं में मिलती है। मनोवैज्ञानिक पर्यावरण (व्यक्ति के सामने उपस्थित स्थिति की अनुभूति) में अनुसंधान व्यस्तता, व्यवहार पर समाज और समूह के प्रभावों पर बल दिया जाना, व्यवहार के गत निर्धारकों के स्थान पर समकालिक निर्धारकों पर बल दिया जाना और गतिकी (अभिप्रेरणा, द्वंद्व तथा परिवर्तन) पर फोकस। लेविन और उसके सहयोगियों के कार्य का विस्तार और प्रभाव मनोविज्ञान में अनुसंधान-क्षेत्रों की सूची से प्रकट होता है। इन क्षेत्रों में प्रायोगिक अन्वेषण भी किए गए हैं। प्रस्तुत क्षेत्र इस प्रकार है : स्मृति का गत्यात्मक अध्ययन, रुके हुए क्रियाकलापों का फिर से प्रारंभ होना, प्रतिस्थापित क्रियाकलाप, तृप्ति, आकांक्षा का स्तर, विभिन्न प्रकार के समूह नेतृत्व का अध्ययन, समूह निर्णय। बहुत से शब्द जो लेविन से संबंधित हैं अब मनोवैज्ञानिकों की सामान्य शब्दावली का भाग हो गए हैं यथा "जीवन पर्यावरण", "कर्षण शक्ति" "चलन" "अतिव्यापी परिस्थिति","संज्ञानात्मक संरचना", "क्रिया अनुसंधान"। यहां लेविन के मुख्य सैद्धांतिक विचारों का निम्न पांच अनुभागों में वर्णन किया जा सकता है (1) गतिक संप्रत्यय, (2) संरचनात्मक संप्रत्यय, (3) सामाजिक रूप से किए गए परिवर्तन, (4) आकांक्षा का स्तर, तथा (5) समूह गतिकी।

गतिक संप्रत्यय

प्रत्यक्षण तथा सीखने से संबंधित रूढ़िगत समस्याओं पर बर्लिन विश्वविद्यालय

में अनेक वर्षों तक कार्य करने के पश्चात लेविन ने अभिप्रेरणा के अध्ययन पर कार्य प्रारंभ किया। 1926 में उसने स्वयं तथा अपने विद्यार्थियों की सहायता से बीस सर्वोत्तम लेखों की पहली शृंखला प्रकाशित की जिसका शीर्षक था–"व्यवहार और संवेग के मनोविज्ञान की खोज"। इसमें बहुत से संप्रत्यय जो बाद में अत्यधिक प्रचलित हुए पहली बार प्रकाशित हुए। "तनाव", "कर्षण शक्ति" "बल" तथा "चलन" ऐसे ही संप्रत्यय हैं जिन्होंने अभिप्रेरणा से संबंधित लेविन के सिद्धांतीकरण में मुख्य भूमिका निभायी है।

जब भी व्यक्ति में मनोवैज्ञानिक आवश्यकता अथवा इच्छा (जिसे कभी अर्द्ध-आवश्यकता कहा जाता है) उत्पन्न होती है, वह तनाव की अवस्था में रहता है। जब आवश्यकता अथवा इच्छा पूरी हो जाती है, तनाव से मुक्ति मिल जाती है। तनाव में निम्नलिखित संप्रत्यात्मक गुण-धर्म होते हैं: (क) यह एक दिए हुए तंत्र में क्षेत्र की वह परिस्थिति है जो अपने आप को इस प्रकार परिवर्तित करने का प्रयत्न करती है कि वह अपने आसपास के क्षेत्रों की परिस्थिति के समान हो जाए, तथा (ख) इसमें तनाव वाले क्षेत्र की सीमा पर शक्तियों का जमाव होना भी सम्मिलित है। सकारात्मक कर्षण शक्ति को एक शक्ति क्षेत्र माना गया है जहां क्षेत्र के एक दिए हुए भाग (कर्षण क्षेत्र जो कि शक्ति क्षेत्र का केन्द्र होता है) की ओर ही सभी शक्तियां केन्द्रित होती हैं। नकारात्मक कर्षण के क्षेत्र से सभी शक्तियां दूर होती जाती हैं। रचना शक्ति अभिवृत्ति को जीवन-पर्यावरण के एक दिये हुए बिंदु पर परिवर्तित होने के लिए दिशा तथा शक्ति प्रदान करती है। परिवर्तन या तो व्यक्ति के अपने मनोवैज्ञानिक परिवेश में (अर्थात स्थिति) परिवर्तन से होता है अथवा अपने प्रत्यक्षी परिवेश की संरचना में परिवर्तन होने से।

व्यक्ति के तनाव तंत्रों तथा मनोवैज्ञानिक पर्यावरण के कुछ गुण-धर्मों के बीच एक निश्चित संबंध रहता है। तनाव विशेष रूप से, मनोवैज्ञानिक पर्यावरण में उन क्रियाकलाप-क्षेत्रों की सकारात्मक कर्षण शक्ति से संबंधित हो सकता है जिनको तनाव कम करने वाला समझा जाता है और उस क्षेत्र की नकारात्मक कर्षण शक्ति से भी संबंधित हो सकता है जिसमें व्यवहारकर्ता जी रहा होता है। तथापि सकारात्मक कर्षण शक्तिवाले क्षेत्र (एक लक्ष्य क्षेत्र) की उपस्थिति न केवल तनाव के बने रहने पर निर्भर करती है बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि क्या तनाव कम करने की कोई संभावना हो सकती है।

जब मनोवैज्ञानिक पर्यावरण में एक लक्ष्य क्षेत्र, जो उस तंत्र के लिए उचित है जो तनाव में है, स्थित रहता है कोई भी यह दावा कर सकता है कि व्यवहारकर्ता पर एक शक्ति कार्य कर रही है जो उसके चलन को लक्ष्य की ओर संचालित करती

है। यह तनाव, जिसका एक संज्ञानात्मक लक्ष्य है, न केवल लक्ष्य-क्षेत्र की ओर ही यथार्थ चलन की प्रवृत्ति को नेतृत्व प्रदान करता है बल्कि इस प्रकार के क्रिया-कलाप के विषय में चिन्तन को भी दिशा देता है। इसको इस कथन द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है कि लक्ष्य की ओर व्यक्ति के बढ़ने की शक्ति न केवल क्रिया के स्तर (वास्तविकता) पर ही उपस्थित रहती है बल्कि चिन्तन के स्तर पर भी।

जेगरनिक लब्धि—तनाव-तन्त्र से सम्बन्धित उपरोक्त संकल्पनाओं से अनेक परिणाम निकालना सम्भव है। इसके अनुसार बाधित क्रियाकलापों का पुनः स्मरण अथवा फिर से प्रारम्भ कर देने की प्रवृत्ति पूरे किये गये क्रियाकलापों के पुनःस्मरण अथवा उन्हें फिर से प्रारम्भ कर देने की प्रवृत्ति से अधिक होती है। जेगरनिक (1927) तथा अन्य विशेषज्ञों ने अनेक प्रयोग किए जिनमें प्रयोग-विषयों को शृंखलाबद्ध रूप से कई काम पूरे करने के लिए दिए गए और फिर उनमें से आधे कार्यों को पूरा करने से रोक दिया गया। तत्पश्चात् प्रयोग-विषयों से उन कार्यों को पुनः स्मरण करने के लिए कहा गया जो उन्होंने किए थे। प्राप्त परिणामों को एक लब्धि के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसे प्रचलित रूप से जेगरनिक लब्धि (जे क्यू) कहा गया जो इस प्रकार है :

जेगरनिक लब्धि (जे क्यू) = पूरे न किए गए कामों का पुनः स्मरण (आर यू) / पूरे किए गए कार्यों का पुनः स्मरण (आर सी)

जेगरनिक ने एक पाइंट से अधिक लब्धि का अनुमान किया था। प्राप्त लब्धि लगभग 1.9 थी जो लेविन की संकल्पनाओं का स्पष्ट रूप से समर्थन करती है। चूंकि अनेक पूरे किये कामों का भी पुनः स्मरण किया गया था, अतः यह स्पष्ट था कि अतिरिक्त कारक भी इसमें सम्मिलित थे। पुनः स्मरण के क्षण में प्रयोग-विषय की अवस्था का विश्लेषण करने पर जेगरनिक ने यह परिणाम निकाला कि पूरे न किए कामों के विषय में व्यक्ति द्वारा चिन्तन किए जाने पर बल दिया गया तथा इसके फलस्वरूप प्रयोगकर्ता की इन हिदायतों द्वारा कि "उन कार्यों को पुनः स्मरण करने का प्रयत्न करो जिन पर पहले कार्य किया था" व्यक्ति को पूरे न किए गए तथा पूरे किए गए दोनों कार्यों को पुनःस्मरण करने के लिए भी मजबूर किया गया। जेगरनिक लब्धि को सभी पूरे किये गये कामों को पुनः स्मरण करने पर विशेष रूप से दिए गए बल तथा सभी पूरे न किए गये कामों को पुनः स्मरण करने पर दिए गए बल की सापेक्ष शक्ति के रूप में माना गया है। जैसे-जैसे प्रयोगकर्ता द्वारा दिए गए बल की शक्ति कार्य-लक्ष्यों पर दिए जाने वाले बल के संबंध में बढ़ती है लब्धि 1. पाइंट की ओर कम होनी चाहिए, जैसे-जैसे यह शक्ति सापेक्षतः कम होती जाती है, लब्धि को 1. पाइंट से आगे बढ़ना चाहिए। वह अतिरिक्त पूर्वानुमान, जो पुनःस्मरण की स्थिति के विश्लेषण से प्राप्त हुआ है, जेगरनिक तथा

अन्यों के द्वारा किए गए प्रयोगों से जन्मा है। इस प्रकार यदि बाधित कार्य से संबंधित अभिप्रेरणा की शक्ति सापेक्षतः उच्च है अथवा पुनःस्मरण पर प्रयोगकर्ता के दबाव की शक्ति कम है अथवा यदि काम समापन के निकट ही बाधित हो जाता है तो जेगरनिक लब्धि उच्च होगी।

अभी हाल के अनेक प्रयोगों से यह प्रकट हुआ है कि पुनः स्मरण की स्थिति ऊपर बताई गई स्थिति से कहीं अधिक जटिल है। जब पूरे न किए गए कार्य को व्यक्तिगत असफलता मान लिया जाता है (अर्थात् एक प्रयोग में जहां कार्य को सामाजिक रूप से मान्य योग्यता के माप के रूप में लिया जाता है) तथा जब पुनः स्मरण में असफलता को व्यक्ति के आत्म-सम्मान को ठेस पहुंचाने के रूप में लिया जाता है अथवा जब पुनः स्मरण की सफलता निम्न आत्म-सम्मान को ऊंचा उठाती है, तब जेगरनिक लब्धि 1. पाइंट से कम होती है।

प्रतिस्थापन मूल्य

कैट लिसनर ने बाधित कार्य को फिर से प्रारम्भ करने की प्रविधि द्वारा तनाव को कम करने वाली क्रिया के मूल्य का अध्ययन प्रारम्भ किया। कुछ प्रयोगों में पुनः स्मरण की प्रविधि का प्रयोग किया गया। प्रतिस्थापन मूल्य का माप बाधित मूल क्रियाकलाप को फिर से प्रारम्भ करने अथवा उसके पुनः स्मरण की मात्रा में कमी होने से किया जाता है। प्रतिस्थापन मूल्य पर किए गए प्रयोगों के परिणामों का संक्षेप इस प्रकार है : (1) मौलिक और प्रतिस्थापित क्रिया में समानता की मात्रा तथा प्रतिस्थानिक क्रिया में कठिनता की मात्रा से प्रतिस्थापना का मूल्य बढ़ जाता है (लिसनर 1933) (2); प्रतिस्थापना का मूल्य मौलिक तथा प्रतिस्थापित क्रिया के बीच बढ़ती हुई कालिक निकटता तथा प्रतिस्थापन क्रिया के आकर्षण केसाथ-साथ बढ़ता है (हैनले 1942); (3) एक क्रिया का प्रतिस्थापन मूल्य (अर्थात् चिन्तन, वाक् अथवा कार्य) मौलिक कार्य के लक्ष्य की प्रकृति पर निर्भर करता है। ऐसे कार्य जो किसी अन्य व्यक्ति को कुछ दिखाने के लक्ष्य से किए जाते हैं (अर्थात् प्रयोग) उनमें प्रेक्षणीय प्रतिस्थानिक क्रियाकलाप की आवश्यकता होती है। "उपलब्धि कार्य" जिनका लक्ष्य किसी यर्थात वस्तु का निर्माण है, उनमें न केवल यह बताने की आवश्यकता है कि कार्य किस प्रकार किया जाये बल्कि काम को "करना" भी सम्मिलित है; बौद्धिक समस्याओं के लिए वाक् (बोलना) अथवा यह बताना कि कार्य किस प्रकार किया जाए का प्रतिस्थापन मूल्य बहुत अधिक हो सकता है (मेहलर 1933); (4) "जादुई समाधान", "काल्पनिक समाधान" अथवा वे समाधान जो प्रेक्षणीय रूप से किसी काम की अपेक्षाओं का उल्लंघन करते हैं, वास्तविकता के स्तर पर कार्यों के लिए बहुत कम प्रतिस्थापन मूल्य वाले होते

है (सिलिओसबर्ग 1934, डेम्बू 1931); (5) एक प्रतिस्थापित क्रिया मौलिक क्रिया के समान होती है, यदि उसी लक्ष्य के अनुकूल नहीं होती तब उसका प्रतिस्थापन मूल्य बहुत कम होता है। इस प्रकार टोनी के लिए मिट्टी के मकान के निर्माण का प्रतिस्थापन निकी के लिए मिट्टी के मकान के निर्माण के प्रतिस्थापन मूल्य से बहुत कम होगा। यदि बल व्यक्ति पर न दिया जाकर मकान के बनाने पर दिया जाता है तब ही प्रतिस्थापन हो सकता है (एडलेर तथा कोनिन, 1939); (6) किसी अन्य द्वारा बाधित काम को पूरा किए जाने पर भी प्रतिस्थापन मूल्य बहुत कम होता है विशेष रूप से उस समय जबकि काम को पूरा करना आत्म-सम्मान से जुड़ा होता है। तथापि, जब किसी काम को दो व्यक्ति सहयोग से करते हैं, एक व्यक्ति द्वारा काम पूरा किए जाने का पर्याप्त प्रतिस्थापन मूल्य होता है (लेविन तथा फ्रेंकलिन 1944)।

प्रतिस्थापन मूल्य से सम्बन्धित अनुसंधान के निष्कर्षों का मनोविज्ञान की विविध समस्याओं के लिए अत्यधिक महत्व है। निम्न महत्वपूर्ण परिणाम का उल्लेख कर संक्षिप्त उदाहरण दिया जा सकता है—यदि दो व्यक्तियों में सहयोगपूर्ण संबंध हो तो एक व्यक्ति की क्रिया दूसरी व्यक्ति की प्रतिस्थानिक क्रिया बन सकती है। एक ही कार्य पर सहयोग से कार्य कर रहे व्यक्ति उचित रूप से कार्य को टुकड़ों में बांट सकते हैं और विशिष्ट क्रियाओं को अलग-अलग रूप से अलग-अलग व्यक्ति कर सकते हैं, क्योंकि सहयोगपूर्ण परिस्थिति में किसी भी व्यक्ति को पूरा काम अपने आप नहीं करना पड़ता। इसके विपरीत प्रतियोगितापूर्ण परिस्थिति में व्यक्ति अन्य व्यक्ति के कार्यों को अपने कार्यों का प्रतिस्थापन नहीं मान सकता। इस प्रकार जब एक समूह में प्रतियोगितापूर्ण स्थिति होती है क्रियाओं के विशिष्टीकरण का विकास नहीं हो पाता।

तृप्ति—तनाव तंत्रों की संकल्पना का तृप्ति के प्रयोगात्मक अध्ययनों में भी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। अधिकांश आवश्यकताओं के सम्बन्ध में वंचन, तृप्ति तथा अतितृप्ति की अवस्था में भेद किया जा सकता है। ये अवस्थायें उन क्रिया क्षेत्रों के सकारात्मक, तटस्थ तथा नकारात्मक कर्षण शक्ति के समांतांतर हैं जो किसी विशेष आवश्यकता अथवा तनाव तंत्र से जुड़े होते हैं। कारस्टर्न (1928) ने कविता पाठ, पत्र लेखन, रेखांकन तथा पहिया घुमाने जैसी क्रियाओं को बार-बार करने पर उनके प्रभावों का अध्ययन किया। उसे इन क्रियाओं में अतितृप्ति के निम्नलिखित मुख्य लक्षण दिखाई दिए : (1) क्रिया में उपयूनिटों का प्रकट होना जिससे कुल क्रिया छिन्न-भिन्न हो गई तथा उसका प्रयोजन ही समाप्त हो गया ; (2) क्रिया का स्तर भी अधिक से अधिक घटता गया तथा काम करने में त्रुटियों की संख्या बढ़ती गई ; (3) काम की प्रकृति को बदलने की प्रवृत्ति बढ़ती गई और

साथ ही बदलने से प्राप्त होने वाली शीघ्रातिशीघ्र तृप्ति प्राप्त करने की प्रवृत्ति दिखाई देने लगी ; (4) काम करते समय किसी अन्य विषय पर ध्यान केंद्रित करने के प्रयत्न में तृप्ति देने वाली क्रिया को परिधीय क्रिया बनाने की प्रवृत्ति—इसमें साधारणतः पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती और मन इधर-उधर भटकने लगता है ; (5) इस क्रिया तथा उसी के समान अन्य क्रियाओं के प्रति बढ़ती हुई अरुचि तथा साथ ही भिन्न कार्यों के लिये बढ़ती हुई कर्षण शक्ति ; (6) भावात्मक विस्फोट ; (7) "थकान" और इसी प्रकार के शारीरिक लक्षण जो व्यक्ति द्वारा दूसरे प्रकार की क्रिया किए जाने पर सरलता से लुप्त हो जाते हैं ।

तृप्ति तभी होती है जब क्रिया मनोवैज्ञानिक रूप से समय से बंधी होती है अथवा उसके द्वारा कहीं भी पहुंचा जा सकता है । यदि क्रिया लक्ष्य की ओर बढ़ना है तब तृप्ति का सामान्य लक्षण कभी प्रकट नहीं होगा । एक क्रिया को भिन्न मनोवैज्ञानिक रूप दे देने से जिससे उसका अर्थ परिवर्तित हो जाए, तृप्ति पर व्यावहारिक रूप से समान प्रभाव पड़ता है जैसा कि भिन्न क्रिया करने से । त्वरित गति से तृप्ति होना अनेक कारकों पर निर्भर होता है जैसे—क्रिया की प्रकृति, क्रिया के यूनिटों के बढ़ते हुए आकार । बढ़ती हुई जटिलता के कारण तृप्ति धीरे-धीरे होती है—तथा व्यक्ति की दशा जितनी नम्य होती है उतनी ही शीघ्रता से तृप्ति होती है । तृप्ति की गति तथा समान क्रियाओं की सह-तृप्ति (अर्थात् एक क्रिया की तृप्ति का प्रभाव समान क्रियाओं की तृप्ति पर पड़ता है) आयु के बढ़ने तथा बुद्धि की कमी के साथ कम होती जाती है (कोनिन 1941) ।

2. संरचनात्मक संकल्पनाएं

लेविन ने एक ज्यामिति विकसित करने का प्रयत्न किया जिसे उसने "दिग्दर्शक स्थान" का नाम दिया । इस ज्यामिति का विकास पर्यावरण के साध्य-उद्देश्य के विषय में व्यक्ति की संकल्पना का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया गया है । लेविन का "दिग्दर्शक स्थान" गणितीय रूप से पर्याप्त विकसित नहीं था । इसका उद्देश्य व्यक्ति की व्यवहार-सम्भावनाओं का विश्लेषण तथा उसके व्यवहार की दिशा निर्धारित करने में परिवेश की संकल्पना पर विचार करने की आवश्यकता थी । उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति उस पार पड़ी गेंद को प्राप्त करने के लिए बाड़े के आसपास चलता है तब यह मनोवैज्ञानिक रूप से गेंद की तरफ आ रहा होता है जब कि भौतिक रूप से वह दूर चला जा रहा होता है ।

संज्ञानात्मक संरचना—यह विचार कि जीव के पर्यावरण की दिशा संज्ञानात्मक संरचना पर निर्भर है, उन स्थितियों की मनोवैज्ञानिक सामग्री को समझने के लिए प्रयोग किया गया जो संज्ञानात्मक रूप से असंरचित होती हैं ।

अधिकांश नई स्थितियां संज्ञानात्मक रूप से असंरचित होती हैं चूंकि व्यक्ति यह जान नहीं पाता कि "कौन सी वस्तु कहां पहुंचाती है"। जैसे-जैसे वह किसी दिशा में बढ़ता है उसे यह पता नहीं चल पाता कि क्या वह लक्ष्य के पास पहुंच रहा है अथवा उससे दूर ? उसका व्यवहार खोज करने वाला, प्रयत्न और भूल करने वाला, इधर से उधर डोलने वाला तथा विरोधात्मक होता है न कि कौशलपूर्ण तथा कम शक्ति व्यय करने वाला। यदि व्यक्ति के लिए लक्ष्य तक पहुंचने का सकारात्मक महत्व होता है और उस तक न पहुंचने का नकारात्मक महत्व तब उस क्षेत्र में रहने से जिसकी संज्ञानात्मक संरचना स्पष्ट नहीं है, मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व की स्थिति बन जाती है क्योंकि उस पर कार्य कर रही शक्तियों की दिशा किसी दिए हुए क्षेत्र की ओर अथवा उससे दूर होती है। ऐसी परिस्थितियों में संवेदात्मकता तथा सावधानी दोनों के प्रमाण मिलते हैं। इसके अतिरिक्त एक असंरचनात्मक स्थिति की प्रकृति चंचल होती है, स्थिति का प्रत्यक्षज्ञान शीघ्रता से बदलता रहता है तथा व्यक्ति निम्न स्तर के संकेतों तथा दूसरों द्वारा दिए गए सुझावों से सरलता से प्रभावित हो जाता है।

लेविन ने संज्ञानात्मक रूप से असंरचित स्थितियों का चित्रण किशोरों तथा अल्पसंख्यक समूह सदस्यों, शारीरिक रूप से अपंग तथा निम्न सामाजिक स्थिति वाले व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया है। इसका प्रयोग किसी भी ऐसी स्थिति में हो सकता है जिसमें व्यवहार के परिणाम प्रकट रूप से अनिश्चित अथवा अनियमित हों, जिसमें लाभ और हानि स्पष्ट रूप से असंगत अथवा यादृच्छिक होती है अथवा ऐसी स्थिति जिसमें व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की संभाव्य प्रतिक्रियाओं के विषय में अनिश्चित होता है।

द्वंद्व

लेविन ने द्वंद्व की परिस्थितियों की प्रकृति के विषय में अंतर्दृष्टि प्रदान करने के लिए गत्यात्मक संप्रत्ययों के मेल से अपनी संरचनात्मक संकल्पनाओं का प्रयोग अति उत्तम रूप से किया। उसने तीन मौलिक द्वंद्वों में भेद किया : (1) उसका कहना था कि व्यक्ति लगभग समान शक्तिवाली दो सकारात्मक कर्षण शक्तियों के बीच रहता है। भाग्य अथवा अवसर प्राप्ति जैसे कारकों के कारण जैसे ही व्यक्ति समस्थिति के बिंदु से हट कर एक की तुलना में दूसरे लक्ष्य-क्षेत्र की ओर बढ़ता है, उस क्षेत्र की ओर शक्ति बढ़ती चली जाती है तथा इसीलिए वह उस क्षेत्र की ओर लगातार बढ़ता चला जाता है। इस अनुमान से यह पता चलता है कि एक लक्ष्य-क्षेत्र की ओर शक्ति सामर्थ लक्ष्य से लगातार दूर होते रहने से कम होती जाती है।

(2) दूसरे प्रकार का द्वंद्व तब घटित होता है जब व्यक्ति लगभग दो समान नकारात्मक कर्षण शक्तियों के बीच अपने आप को पाता है। दंड की स्थिति

इसका उदाहरण है । इस प्रकार का द्वंद्व स्थिति की संरचना से अत्यधिक प्रभावित होता है। यहां हम इस प्रकार के तीन द्वंद्वों का उदाहरण प्रस्तुत करेंगे : 'क' व्यक्ति दो नकारात्मक कर्षण शक्तियों के मध्यस्थ है, परंतु इस स्थिति में रहने के लिए कोई दबाव नहीं है। उदाहरण के लिए एक लड़की के सामने यह स्थिति है कि या तो उसे दूर रहने वाले किसी नापसंद व्यक्ति से विवाह करना है अथवा यदि वह अपने गांव में ही रहना चाहती है तो उसे जीवनभर कुंवारा ही रह जाना होगा (यद्यपि उसे अपने गांव छोड़ने से कोई भी रोक नहीं रहा है); 'ख' व्यक्ति दो नकारात्मक कर्षण शक्तियों के मध्यस्थ है, परंतु क्षेत्र को नहीं छोड़ सकता जैसे दल का एक सदस्य जो अपने सामाजिक स्तर को खो देने अथवा एक अप्रिय कार्य करने की आशंका से घिरा हुआ है (वह दल छोड़ नहीं सकता) ; 'ग' व्यक्ति नकारात्मक कर्षण शक्ति के क्षेत्र में है और उसे तभी छोड़ सकता है जब वह नकारात्मक कर्षण शक्ति के अन्य क्षेत्र में चला जाए। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति को दल की अवज्ञा किए जाने के लिए दंड का भागी बनना पड़ा क्योंकि वह इस बात का साक्ष्य उपस्थित न कर सका कि क्या उसके कुछ परिचित व्यक्ति साम्यवादी दल के सदस्य हैं (उसे दंड से मुक्त होने के लिए यह सूचना देनी आवश्यक थी)।

यह स्पष्ट है कि 'क' में दर्शायी गई स्थिति में व्यक्ति क्षेत्र को छोड़ कर चला जा सकता है। यदि किसी प्रकार के प्रतिबंध व्यक्ति को क्षेत्र छोड़ने के लिए रोकते हैं तो क्या ऐसी स्थिति का परिणाम क्षणिक द्वंद्व से अधिक नहीं होगा ? 'ख' स्थिति में लगाए गए प्रतिबंध नकारात्मक कर्षण शक्ति से संबंधित उत्प्रेरक शक्तियों तथा रुकावट से संबंधित प्रतिबंधित शक्तियों के बीच द्वंद्व उत्पन्न करते हैं। रुकावट (बाधा) एक नकारात्मक कर्षण शक्ति की प्रवृत्ति धारण कर लेती है और यह प्रवृत्ति बाधा पर विजय पाने के अनेक असफल प्रयासों के कारण बढ़ती जाती है तथा अंततः यह व्यक्ति को बाधा पर विजय पाने से पूरी तरह रोक लेने के लिए पर्याप्त सशक्त होती है (फजन 1933)। इस प्रकार उत्प्रेरक तथा प्रतिबंधित शक्तियों के बीच द्वंद्व का स्थान उत्प्रेरक शक्तियों के बीच द्वंद्व ले लेता है जैसा कि 'ग' में दिखाया गया है। यह तथ्य विशेष रूप से सामाजिक मनोविज्ञान के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि जीवन की अनेक स्थितियों में बाधाएं सामाजिक प्रवृत्ति की होती हैं। यदि व्यक्ति बाधा के विपरीत कार्य करता है वस्तुतः वह उस व्यक्ति अथवा सामाजिक समूह की इच्छा और शक्ति के विपरीत अपना मार्गदर्शन करता है जिन्हें बाधा उत्पन्न करने का कारण समझा जाता है।

(3) तीसरे प्रकार का मूलभूत द्वंद्व तब होता है जब व्यक्ति सकारात्मक तथा नकारात्मक कर्षण शक्ति द्वारा उत्पन्न दो विरोधी शक्तियों के मध्यस्थ होता है।

इस प्रकार के द्वंद्व के तीन भेद किये जा सकते हैं : (क) एक अकेले क्षेत्र की सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही कर्षण शक्ति होती हैं (फ्रायड की द्वैध वृत्ति की संकल्पना इस प्रकार के द्वंद्व के अंतर्गत आती है)। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति एक सामाजिक समूह का सदस्य बनना चाहता है परंतु उसे इस बात का भय है कि सदस्य बनने पर बहुत खर्चा होगा; (ख) एक व्यक्ति एक नकारात्मक अथवा बाधाकारी क्षेत्र में घिर जाता है (यद्यपि वह पूरी तरह इससे ग्रस्त नहीं होता) और उस लक्ष्य की ओर आकर्षित होता है जो उसके परे होता है उदाहरण के लिए वह व्यक्ति जिसे किसी वांछित क्रिया करने के लिए अपने घर अथवा समूह को छोड़ने की अप्रिय घटना का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार की स्थिति में व्यक्ति की वर्तमान क्रिया का क्षेत्र उस समय तक नकारात्मक कर्षण शक्ति का रूप धारण किए रहता है जब तक कि व्यक्ति को घेरे रहने वाला क्षेत्र वांछित बाह्य लक्ष्यों की ओर जाने के लिए बाधा उत्पन्न करता है। इस प्रकार एक अल्पसंख्यक समूह का सदस्य होना अथवा किसी जेल में बंद रहना, स्थिति की आंतरिक विशेषताओं से परे एक नकारात्मक कर्षण शक्ति धारण कर लेता है क्योंकि व्यक्ति नकारात्मक कर्षण शक्ति से घिरे क्षेत्र से गुज़र जाने पर ही क्षेत्र के वांछित लक्ष्यों तक पहुंच सकता है; (ग) सकारात्मक कर्षण शक्ति का क्षेत्र नकारात्मक कर्षण शक्ति के क्षेत्र से घिरा रहता है अथवा उसी के द्वारा उस तक पहुंचा जा सकता है। इस प्रकार की स्थिति 'ख' से भिन्न है जिसमें सकारात्मक कर्षण शक्ति का क्षेत्र उस क्षेत्र की तुलना में जिसमें व्यक्ति पाया जाता है नकारात्मक कर्षण शक्ति से घिरा रहता है। 'पुरस्कारवादी' स्थिति जिसमें व्यक्ति को पुरस्कार तभी दिया जाता है जब वह कोई अप्रिय कार्य करता है इसी प्रकार के द्वंद्व का उदाहरण है।

लेविन (1939–1947) तथा मिलर ने यह बताया कि नकारात्मक शक्तियों की समानांतर शक्तियां सकारात्मक शक्तियों की समानांतर शक्तियों की तुलना में मनोवैज्ञानिक दूरी के कार्य के रूप में अति शीघ्रता से कम होती जाती है। कमी की मात्रा सकारात्मक अथवा नकारात्मक कर्षणशक्ति वाले क्षेत्र की प्रकृति पर भी निर्भर करती है। एक अगतिशील अप्रिय वस्तु की तुलना में एक खतरनाक जानवर के विषय में स्थिति भिन्न होती है। तीव्र भय अथवा पीछे हटने की तीव्र प्रवृत्ति को लक्ष्य के लिए तीव्र इच्छा के प्रमाण के रूप में लिया जा सकता है। ऐसा इसलिए समझा जाता है कि सकारात्मक तथा नकारात्मक कर्षण शक्तियों से उत्पन्न होने वाली शक्तियों में कमी होने में भिन्नता होती है। केवल बहुत ही आकर्षक लक्ष्य के कारण ही पास आने और दूर जाने की प्रवृत्तियों के बीच समस्थिति का बिंदु नकारात्मक कर्षण शक्ति के क्षेत्र के उतने समीप होगा कि लक्ष्य से दूर करने के लिए एक तीव्र शक्ति उत्पन्न कर सके। दूसरी ओर एक क्षेत्र की नकारात्मक कर्षण शक्ति को सुदृढ़ करने से द्वंद्व की शक्तियां क्षीण हो सकती हैं क्योंकि समस्थिति बिंदु को कर्षण शक्ति वाले क्षेत्रों से पर्याप्त दूरी पर रखा जाता है।

3. सामाजिक परिवर्तन

इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि लेविन की अभिप्रेरणात्मक संकल्पनाओं में यह अनुमानित नहीं है, अभिप्रेरणा मुख्यतः शारीरिक कारणों से ही उत्पन्न होती है। उसकी संकल्पनाओं के अनुसार तनाव और कर्षण शक्तियां सामाजिक कारणों से उत्पन्न होती हैं (जैसे प्रयोगकर्ता द्वारा किसी काम को करने के लिए सुझाव प्राप्त कर कार्य करना)। उसने यह भी बताया कि व्यक्ति पर कार्य कर रही शक्तियां ऊपर से लादी जा सकती हैं अथवा वे व्यक्ति की आवश्यकताओं को प्रत्यक्ष रूप से प्रतिबिंबित करती हैं।

शक्ति-क्षेत्र की संकल्पना इस संदर्भ में उचित प्रतीत होती है। शक्ति क्षेत्र प्रेरक क्षेत्र है, यह अपने अधीन जीवन–पर्यावरण के क्षेत्र में परिवर्तन ला सकता है। निजी तथा बाह्य रूप से प्रेरक शक्तियों के बीच अंतर स्वैच्छा से किए गए तथा प्रजातांत्रिक नेतृत्व के रूप में किए गए व्यवहार में विभिन्नता की व्याख्या करने में उपयोगी पाए गए (लिपित तथा ह्वाइट)। इस प्रकार सत्ता प्राप्त नेताओं (जो नीति निर्धारित करते हैं, क्रियाकलापों का नियंत्रण करते हैं और क्रियाकलापों के मूल्यांकन में अधिक व्यक्तिनिष्ठ होते हैं) द्वारा चलाए गए क्लबों में बच्चे क्लब के क्रियाकलापों के संबंध में अपनी अभिप्रेरणा बहुत कम विकसित कर पाते हैं। यद्यपि बच्चा उस समय अधिक उत्पादनशील कार्य करता है जब नेता उपस्थित रहता है (अर्थात् उसका शक्ति क्षेत्र मनोवैज्ञानिक रूप से अधिक सक्रिय होता है) परंतु समूह लक्ष्यों के प्रति उसकी व्यक्तिगत रुचि का अभाव होता है जो निम्नलिखित क्रियाओं में स्पष्टतः होता है : (1) नेता के क्लब से जाने पर उसके व्यवहार में परिवर्तन; (2) नेता के देर से पहुंचने पर अभिप्रेरणा की अनुपस्थिति; (3) कार्य में सावधानी का अभाव; (4) क्लब की परियोजनाओं के विषय में स्वतःस्फूर्त सुझाव देने में पहल की कमी; (5) क्लब के प्रयत्नों से प्राप्त होने वाले उत्पादों के प्रति सम्मान की भावना का अभाव।

स्वयं अपनी तथा ऊपर से लादी गई शक्तियों के बीच अंतर इस विषय की व्याख्या करने के लिए भी पाया गया कि कामगार उस समय साधारणतः अधिक प्रसन्न तथा उत्पादनशील होते हैं जब उन्हें उन निर्णयों में सम्मिलित किया जाता है जो उनके कार्य को प्रभावित करते हैं। लक्ष्य निर्धारित करने में उनकी सहभागिता लक्ष्य के प्रति अपनी शक्तियां निर्मित करने में सहायक होती है और इस प्रकार उसी लक्ष्य की ओर निरंतर सामाजिक प्रभावों को बनाए रखने की आवश्यकता को कम करती है।

4. आकांक्षा का स्तर

कदाचित लेविन तथा उसके विद्यार्थियों ने अनुसंधान के किसी क्षेत्र को प्रयोगात्मक अन्वेषण के लिए इतना तैयार न किया होगा जितना कि आकांक्षा के स्तर को।

इस स्तर को उस लक्ष्य की दिशा में कठिनता की मात्रा के रूप में परिभाषित किया गया है जिसको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रयत्न में जुटा हुआ है। आकांक्षा के स्तर की संकल्पना तभी संगत हो सकती है जब कि सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रत्यक्ष कठिनता की मात्रा दिखाई देती है और कठिनता के विस्तार के साथ-साथ लक्ष्यों के बीच कर्षण शक्तियों में विविधता हो।

आकांक्षा के स्तर पर चर्चा करते समय इस क्षेत्र में किए गए विशिष्ट प्रयोगात्मक अध्ययनों की निम्न क्रमबद्ध घटनाओं पर विचार कर लेना भी सहायक सिद्ध हो सकता है : (1) एक विषयव्यक्ति एक खेल खेलता है (उदाहरण के लिए निशाने पर तीर मारना) जिसमें वह अंक प्राप्त कर सकता है; (2) खेल खेलने और अंक प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसे यह बताने के लिए कहा जाता है कि अगली बार खेलने पर वह कितने अंक प्राप्त करना चाहता है; (3) और तब वह फिर से खेल खेलता है और भिन्न अंक प्राप्त करता है; (4) वह अपने दूसरी बार के निष्पादन के प्रति पहले से चले आ रहे अथवा नए आकांक्षा-स्तर के अनुसार सफलता अथवा असफलता का भाव लिए हुए प्रतिक्रिया करता है। बढ़ते हुए क्रम में नं. 4 (उपलब्धि के प्रति प्रतिक्रिया) आकांक्षा के स्तर की गतिकी के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

आकांक्षा के स्तर का सिद्धांत अपनी रूपरेखा में अति सरल है (लेविन, एट एल 1944)। लेविन के अनुसार कठिनता के किसी स्तर की परिणामी कर्षण शक्ति सफलता की निजी संभाव्यता के अनुसार सफलता उपलब्धि की कर्षण शक्ति के समान होती है और इसमें असफलता की निजी संभाव्यता के अनुसार असफलता की कर्षण शक्ति को घटा दिया जाता है। आकांक्षा का स्तर (उदाहरण के लिए वह लक्ष्य जो व्यक्ति प्राप्त करना चाहता है) कठिनता का वह स्तर होगा जिसमें उच्च परिणामी सकारात्मक कर्षण शक्ति होती है। सफलता अथवा असफलता का निजी अनुभव व्यक्ति के आकांक्षा-स्तर के अनुसार निष्पत्ति से निर्धारित होता है। (यह उस समय ही हो सकता है जबकि उसकी निष्पत्ति स्वउपलब्धि के रूप में देखी जाती है न कि मात्र उसकी संपूर्ण प्राप्तियों के रूप में)।

आकांक्षा के स्तर पर किये प्रयोगात्मक कार्यों से विविध प्रकार के प्रभावों का पता चला है जो कठिनता के विभिन्न स्तरों की सकारात्मक तथा नकारात्मक कर्षण शक्तियों को प्रभावित करते हैं। इससे यह पता चलता है कि सांस्कृतिक तथा समूह कारक वह माप स्थापित करते हैं जो कि कठिनता सातत्यक पर विभिन्न बिंदुओं के तुलनात्मक आकर्षण को निर्धारित करने में सहायता करते हैं। इनमें से कुछ के प्रभाव स्थायी और स्थिर होते हैं। उदाहरण के लिए यह पाया गया कि पश्चिमी सभ्यता में अधिकांश व्यक्ति स्वयं सुधार के सांस्कृतिक दबाव के अंतर्गत आकांक्षा स्तर की

स्थिति में पहले पहल उस आकांक्षा स्तर का प्रदर्शन करते हैं जो उनकी पिछली निष्पत्ति माप से उच्च होता है और अधिकांश स्थितियों में अपने आकांक्षा स्तर को अपनी पिछली निष्पत्ति से ऊंचा ही रखते हैं। विस्तृत सांस्कृतिक कारकों के अतिरिक्त किसी काम में व्यक्ति का आकांक्षा स्तर जिस समूह का वह सदस्य है उसके मानकों द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है। विभिन्न मानकों द्वारा स्थापित संदर्भ मापनियमों की प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न हो सकती है। सदंभ मापनी एक निश्चित रूप से संरचित सामाजिक समूह की सदस्यता मात्र से ही प्रभावित नहीं होती बल्कि वह व्यक्ति के अपने बिंब, अन्य व्यक्तियों अथवा उन समूहों के प्रभावों को प्रतिबिंबित करती है जो निष्पादन के मानकों को स्थापित करते हैं अथवा स्वयं के निष्पादन के मूल्यांकन के लिए मानक स्थापित करते हैं। इस प्रकार कालिज के एक विद्यार्थी के बौद्धिक कार्य के संबंध में आकांक्षा स्तर निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करते हुए भिन्न-भिन्न होगा जैसे जब उसको औसत स्कूल विद्यार्थी, औसत कालिज विद्यार्थी अथवा औसत स्नातक विद्यार्थी द्वारा प्राप्त प्राप्तांकों के विषय में बतलाया जाता है।

व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता की मापनी के लिए मूल्यों को निर्धारित करने वाले कारकों पर अनुसंधान द्वारा ज्ञान प्राप्त किया गया है। कुछ उद्देश्यों तक पहुंचने की योग्यता के संबंध में व्यक्ति का गत अनुभव ही उसकी भविष्य की सफलता अथवा असफलता की व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता को निर्धारित करने वाला मुख्य कारक है। यदि व्यक्ति को किसी क्रिया के विषय में पर्याप्त अनुभव प्राप्त है तब वह अच्छी तरह जान सकता है कि सफलता के किस स्तर वह पहुंच सकता है और उसके लिए व्यक्ति-निष्ठ संभाव्यता मापनी के मूल्यों को प्राप्त करना भी सरल होता है। तथापि व्यक्ति की पिछली औसत निष्पत्तियों ही न केवल उसके व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता प्राप्तांकों को प्रभावित करती हैं बल्कि उसकी यह प्रवृत्ति भी कि क्या वह प्रगति कर रहा है अथवा क्या वह नीचे जा रहा है अथवा क्या वह उसी स्थान पर है। इस बात का भी प्रयोगात्मक प्रमाण उपलब्ध है कि क्या उसकी पिछली अथवा अभी हाल की सफलता अथवा असफलता उसके भविष्य उपलब्धि स्तर पर विशेष प्रभाव डालती है। इसके अतिरिक्त इस बात के भी प्रमाण उपलब्ध हैं कि व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता प्राप्तांक तथा अन्य व्यक्तियों की निष्पत्तियाँ भी उसके अपने संभाव्यता प्राप्तांकों को प्रभावित कर सकती हैं। व्यक्तित्व कारक जैसे आत्मविश्वास भी व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता को प्रभावित कर सकते हैं। आकांक्षा-स्तर का सिद्धांत अनेक सामाजिक घटनाओं के लिए व्यापक रूप से प्रभावी सिद्ध हुआ है। इससे दमनकारी राजनैतिक तथा सामाजिक समस्याओं के उत्पन्न होने पर सामाजिक उदासीनता के कारणों को समझने की सूझबूझ प्राप्त होती है। व्यक्ति उन उच्च मूल्य वाले उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं करते जबकि उन्ह इनको प्राप्त करने का मार्ग ही ज्ञात नहीं।

इसी प्रकार यह सिद्धांत इस विषय पर भी प्रकाश डालता है कि सामाजिक क्रांतियां दमित समूहों की परिस्थिति में थोड़ा सुधार आने पर ही क्यों होती हैं। सुधार उनके आकांक्षा-स्तर को ऊंचा उठा देता है, उन लक्ष्यों को प्राप्त करना वस्तुतः संभव बना देता है जिन्हें प्राप्त करना पहले असंभव-सा प्रतीत होता था।

5. समूह गतिकी की संकल्पनायें

समूह निर्णय तथा सामाजिक परिवर्तन से संबंधित लेखों के अतिरिक्त लेविन (लेविन 1935--1946) ने समूह गतिकी सिद्धांत पर बहुत कम लिखा है तथापि समूह गति की के अनुसंधान केंद्र में उसके सहयोगियों तथा विद्यार्थियों के अन्वेषणों से अनेक संकल्पनायें उभर कर सामने आयीं।

यहां पर हम समूह की संकल्पना पर संक्षिप्त रूप से विचार विमर्श करते हुए समूह गतिकी की संकल्पनाओं पर चर्चा करेंगे। लेविन (1935--1946) ने लिखा था : "समूह का मूल उसके सदस्यों की समानता अथवा असमानता में नहीं है बल्कि सदस्यों का एक दूसरे पर निर्भर रहने में है। एक समूह को एक 'गतिशील समग्र' समझा जा सकता है। इसका अर्थ है कि उसके किसी भी उपभाग की स्थिति में परिवर्तन होने से दूसरे उपभाग की स्थिति में भी परिवर्तन हो जाता है। समूह के सदस्यों के उपभागों का एक दूसरे पर निर्भर होने की मात्रा उनके अलग-अलग होकर 'समग्र' रूप से शिथिल होने से ले कर पूरी तरह से जुड़े होकर एक यूनिट के रूप में रहने पर भिन्न-भिन्न हो सकती है।" फ्रेंच (1944) ने भी यह बताया कि एक दूसरे पर निर्भर रहने के अतिरिक्त एक समूह की सदस्यता का अर्थ है समूह से तादात्मीकरण। डेयूटश्च (1949) ने इस बात का संकेत दिया कि परस्पर निर्भरता प्रतियोगितापूर्ण न होकर प्रेरणादायक तथा सहयोगपूर्ण होती है। इस प्रकार समूह को अस्थायी रूप से परिभाषित इस रूप में किया जा सकता है-- "यह उन सदस्यों का एक विन्यास है जो कुछ विषयों तथा परिमाण में अपने आप को एक दूसरे पर सहयोगात्मक अथवा प्रेरणार्थक रूप से निर्भर पाते हैं"।

संसक्तता

प्रयोगात्मक अन्वेषण के विषय के रूप में मुख्य संकल्पनाओं में से एक संकल्पना संसक्तता की है। अंतःप्रज्ञात्मक रूप से संसक्तता उन शक्तियों को कहा जा सकता है जो समूह के विभिन्न भागों को बांधती है तथा जो विघ्नकारी प्रभावों को रोकती हैं। इस प्रकार समूह संसक्तता को प्रभावित करने वाली अवस्थाओं का अध्ययन तथा समूह संसक्तता में समूह के कार्य करने के तरीकों पर विविधता द्वारा पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन समूह-जीवन के अध्ययन का मूल है। फेस्टिंगर, शाहचटर

तथा ब्लैक (1950) ने संसक्तता को समूह सदस्य के संदर्भ में इस प्रकार परिभाषित किया है—"शक्तियों का कुल क्षेत्र जो सदस्यों को समूह में रहने के लिए बाध्य करता है"। समूह में रहने के लिए एक सदस्य में कार्य कर रही शक्तियों की प्रकृति और बल एक सदस्य से दूसरे सदस्य में भिन्न होते हैं।

प्रयोगात्मक अन्वेषणों में व्यक्तियों की अपने-अपने समूहों के प्रति संसक्तता दर्शाने के लिए विविध माप का प्रयोग किया गया है :—समूह में रहने की इच्छा, समूह परिचर्चाओं के दौरान 'हम' का 'मैं' के अनुपात में प्रयोग, मित्रता अथवा अधिक मिल-जुल कर रहने के स्तर, समूह के मूल्यांकन तथा उसकी समाजमितिक पसंद बनाम समूह से बाहर समाजमितिक पसंद तथा अन्य। डेयूटश्च ने अपने सैद्धांतिक पत्र में इस प्राक्कल्पना के विकास द्वारा विविध प्रकार के विस्तृत उपायों के प्रयोग का तर्क उपस्थित किया है कि कम संसक्त समूह (प्रतियोगी समूह) के सदस्यों की तुलना में अधिक संसक्त समूह (सहयोगी) के सदस्यों में सफलता की स्थितियों में निम्नलिखित गुण पाये जाते हैं:— (क) वे समूह के अन्य सदस्यों के उन कार्यों को प्रतिस्थानिक रूप में करने के लिए सहर्ष स्वीकृति दे देते हैं जो उनके कार्यों से मिलते-जुलते हैं, (ख) व अन्य सदस्यों को समूह में सम्मिलित किए जाने की सहज स्वीकृति दे देते हैं, तथा (ग) वे समूह के अन्य सदस्यों की क्रियाओं का निश्चित रूप से मार्गदर्शन करते हैं। इन मूल प्राक्कल्पनाओं तथा अधिक विशिष्ट अनुमानों के मेल से समूह-कार्य पद्धति के विविध पक्षों पर अधिक या कम संसक्तता के प्रभाव पड़ सकते हैं। इस प्रकार उप प्रतिस्थानिक प्राक्कल्पना से यह अनुमान लगाना संभव है कि कार्यों का अधिक विशिष्टीकरण, क्रियाकलापों का अधिक उप-विभाजन तथा सदस्यता-व्यवहार में अधिक विविधता अधिक संसक्त समूहों में ही होती है।

अधिक संसक्त समूहों के सदस्य कम संसक्त समूहों की तुलना में एक दूसरे पर अधिक ध्यान देते हैं, एक दूसरे को अच्छी तरह समझते हैं, एक दूसरे से अधिक प्रभावित होते हैं और परिवर्तन के लिए तैयार रहते हैं तथा उनमें समूह मानकों को आत्मसात करने की भावना अधिक होती है। संसक्त समूह में मित्रता तथा समाजमितिक पसंद का अनुपात अधिक होता है। विविध प्रकार के प्रयोगों से प्राप्त आंकड़े इन अनुमानों का समर्थन करते हैं।

संचार

अनुसंधान के सुगठित कार्यक्रम के रूप में फेस्टिंगर तथा उनके सहकार्यकर्ताओं ने उपयोगी प्राक्कल्पनाओं का क्रमबद्ध विकास किया तथा समूह के भीतर संचार प्रक्रिया पर कुछ मौलिक प्रयोग किए हैं। संक्षेप में अन्वेषणकर्ताओं का संबंध समूह के अंदर

संचार के लिए तीन प्रकार के दबावों से था जो इस प्रकार हैं : (क) एक समूह में समानता रखने के लिए दबाव दिए जाने से उत्पन्न होने वाला संचार; (ख) एक सामाजिक संरचना में गति के लिए शक्तियों से उत्पन्न होने वाला संचार; तथा (ग) संवेगात्मक अवस्थाओं की उपस्थिति से उत्पन्न होने वाला संचार।

समानता के लिए दबाव

फेस्टिंगर ने एक समूह में समानता के लिए दबाव के दो मुख्य स्रोत बताये हैं—सामाजिक वास्तविकता तथा समूह -चलन। उसने बताया कि जब किसी व्यक्ति का अपनी धारणाओं की वैधता निर्धारित करने का कोई एक उद्देश्य नहीं होता, तब वह अपनी धारणाओं पर आत्मविश्वास स्थापित करने के लिए सामाजिक वास्तविकता पर निर्भर रहता है। इस प्रकार अपने विचारों की वैधता अथवा अपनी योग्यताओं का मूल्यांकन करने अथवा अपने संवेगों की उपयुक्तता का मूल्यांकन करने के लिए वह अन्यों की योग्यताओं, संवेगों तथा विचारों से तुलना करता है। फेस्टिंगर (1954) की यह धारणा थी कि व्यक्ति अपने मतों अथवा योग्यताओं के मूल्यांकन की यथार्थता को सहज बनाने के लिए ऐसे व्यक्तियों की खोज में रहते हैं जिनके विचार अथवा योग्यतायें उनके समान हों और जिनसे उनकी तुलना की जा सके। वे असमानता की उपेक्षा करते हैं तथा इसे कम करने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त एक समूह के सदस्य के बीच मतक्य का अभाव धारणाओं का अस्थिर आधार प्रस्तुत करता है जो (धारणायें) अपनी सहायता के लिए सामाजिक मतक्य पर निर्भर करती हैं और इस प्रकार हैडर की संज्ञानात्मक संतुलन की प्रवृत्ति (1950) अथवा फेस्टिंगर के संज्ञानात्मक विसंगति के सिद्धांत (1957) के अनुसार समानता लाने के लिए शक्तियां उत्पन्न होंगी।

समूह के सदस्य के बीच एकता अथवा समानता लाने के लिए दबाव दिया जाना इसलिए भी वांछनीय अथवा आवश्यक है कि समूह किसी लक्ष्य पर चल सके। एक समूह के अंदर विचारों में अधिक एकता अथवा समानता निम्नलिखित किन्हीं तरीकों से प्राप्त की जा सकती है : (क) उन क्रियाओं द्वारा (उदाहरण के लिए संचार) जो अन्यों के अथवा अपने विचारों को परिवर्तित करने के लिए की जाती हैं ; अथवा (ख) अन्य व्यक्तियों को इस अर्थ में अतुलनीय बना देने के लिए किए गए कार्य कि वे अपने विचारों की तुलना अन्य व्यक्तियों के विचारों से करने योग्य न रह सकें; उदाहरण के लिए समूह में से उन व्यक्तियों का निकाल दिया जाना अथवा अस्वीकृत कर देना जिनके विचार समूह से मेल नहीं खाते।

प्रयोगों ने यह दर्शाया है कि समूह की ओर बढ़ता हुआ आकर्षण तथा तुलना के लिए एक वस्तु के रूप में समूह का महत्व समूह के प्रभाव की मात्रा को तथा समूह

के अंदर विचारों की विसंगतियां उत्पन्न होने पर उनमें परिवर्तन की मात्रा को बढ़ा देता है (ब्लैंच 1951)। यह भी प्रदर्शित किया गया कि समूह की कार्य पद्धति के लिए विचार जितने ही अधिक उचित अथवा महत्वपूर्ण होंगे, समूह में समानता लाने के लिए उतना ही अधिक दबाव होगा (शेचर 1951, फेस्टिंगर तथा थाईबैट 1951) जैसा कि सैद्धांतिक विचारों से प्रत्याशित है, इस बात का प्रमाण उपलब्ध है कि जब समानता (एकता) पर दबाव दिया जाता है, समूह के उन सदस्यों से ही मुख्यतः संबंध होता है जिनके विचार समूह से बहुत भिन्न होते हैं।

परिवर्तन के लिए दबाव

समूह में भिन्न विचारों वाले व्यक्तियों की ओर संचार को निदेशित करने की प्रवृत्ति को प्रकट करने वाले प्रयोगों द्वारा तथा उन पर सामाजिक दबाव डालने वाले संचार द्वारा लेविन के समूह-निर्णय तथा सामाजिक परिवर्तन के सिद्धांत को सहायता प्राप्त होती है। लेविन (1947) ने इस विषय पर जोर देते हुए परिवर्तन संबंधी विश्लेषण प्रारंभ किया कि सामाजिक जीवन में यथापूर्व स्थिति एक स्थिर विषय न होकर एक गतिमान प्रक्रिया है जो एक मानक रूप धारण करते हुए सदा ही चलती रहती है। उसने ऐसी गतिशील प्रक्रियाओं पर प्रयोग करने के लिए भौतिकी से 'अर्धस्थायी संतुलन' शब्द चुना जो ऊंच अथवा नीच को रोकने वाली शक्तियों के क्षेत्र द्वारा यथास्थिति बनाये रखता है। संतुलन के स्तर के निकट रहने वाला शक्तियों का क्षेत्र इस बात का पूर्व अनुमान कर लेता है कि ऊंचा उठने की मात्रा के अनुकूल संतुलन स्तर में वृद्धि रोकने के लिए शक्तियां उतनी ही तत्परता से कार्य करती हैं जितना नीचे गिरने पर संतुलन में कमी होने पर। इस प्रकार यदि हम मान लें कि एक फैक्टरी में काम करने वाले कामगर के कार्य स्तर को निर्धारित करने के लिए एक समूह मानक कार्य कर रहा है, तब अधिक उत्पादकता द्वारा कामगार का मानक से विचलन होने का परिणाम यह होगा कि उसके सहकर्मी लाइन पर आने के लिए उस पर दबाव डालेंगे। इस प्रकार फेस्टिंगर के प्रयोगों ने यह दर्शाया है कि कामगार जितना ही अधिक मानक से विचलित होगा समानता लाने के लिए उतनी ही अधिक शक्तियों का उसे सामना करना होगा। तथापि लेविन ने यह बताया कि संतुलन स्तर से दूरी के अनुसार शक्तियों के तत्व परिवर्तित होते रहते हैं जिससे संतुलन के स्तर से एक निश्चित दूरी तक जाने पर शक्तियां उसे समूह से पीछे ढकेलने के बजाये आगे बढ़ाती हैं।

लेविन द्वारा यथास्थिति के 'अर्धस्थायी संतुलन' के रूप में किये गये विश्लेषण के दो मुख्य निहितार्थ हैं। पहला, यथास्थिति में परिवर्तन या तो वांछित दिशा में शक्तियों को बढ़ाने से अथवा विरोधी शक्तियों को कम किए जाने से उत्पन्न किया जा

सकता है। परिवर्तन लाने की इन दो विधियों के परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं। यदि शक्तियां बढ़ाई जाती हैं तब नये स्तर की प्रक्रिया में सापेक्षतः तनाव की स्थिति साथ-साथ बनी रहती है क्योंकि विरोधी शक्तियों का बल अधिक होता है। यदि विरोधी शक्तियां कम हो जाती हैं नये स्तर पर तनाव कम हो जाता है। दूसरा, यह समूह के अतिरिक्त व्यक्ति की ओर निदेशित प्रयत्नों द्वारा समूह में पनपे व्यक्ति के आचरण तथा अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाने के प्रयत्नों में आने वाली कठिनाइयों को प्रकाश में लाते हैं। यदि उस समूह के पूर्वाग्रहों में परिवर्तन लाये बिना व्यक्ति के पूर्वाग्रहों में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है जिसका वह सदस्य है तब ऐसी स्थिति में या तो उस व्यक्ति को समूह से अलग कर दिया जाता है अथवा उस पर अपनी पूर्वस्थिति पर लौट जाने के लिए समूह द्वारा दबाव डलवाया जाता है। एकाकी व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अनुभव के कारण अपनी अभिवृत्तियों में परिवर्तन ला सकते हैं। परंतु वह व्यक्ति जो अपने समुदाय के सामाजिक जीवन में गहरा उतर चुका है अपनी उच्चप्रस्थिति को निरंतर बनाये रखने की इच्छा रखने पर सामुदायिक महत्व के मामलों में दबाव का विरोध नहीं कर पाता।

उपरोक्त विचारों ने विविध स्थितियों में श्रृंखलाबद्ध प्रयोगों का मार्गदर्शन किया जैसे स्कूल में, निकटवर्ती समूहों में, उद्योग में तथा कार्यशाला में समूह अथवा व्यक्ति स्तर पर व्यवहार में परिवर्तन लाने के प्रयत्न किये गये (लेविन 1935–1946)। इसकी एक विशिष्ट प्रक्रिया यह है कि किसी खाद्य पदार्थ के प्रयोग के संबंध में व्यवहार में परिवर्तन किये जाने के लिये दिये गए व्याख्यान अथवा वैयक्तिक प्रशिक्षण के परिणामों की तुलना उस खाद्य पदार्थ के पक्ष में दिये गये समूह निर्णयों के परिणामों से की गई। परिणामों ने स्पष्ट रूप से यह दर्शाया कि समूह निर्णय पद्धति द्वारा परिवर्तन अधिक तीव्रता से होता है।

क्षेत्र सिद्धांत की वर्तमान स्थिति

इस लेख के पिछले भाग में लेविन अथवा उसके निकट सहयोगियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रारंभ अथवा प्रेरित किये गये कार्यों का ही वर्णन किया गया है। इससे कार्य की व्यापकता, उत्कृष्ट नवीन प्रक्रियाओं तथा प्रयोगात्मक मौलिकता के प्रभावी सिद्ध होने के अतिरिक्त कोई अन्य लाभ प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि लेविन की मृत्यु 1947 में हुई थी, परंतु मनोविज्ञान पर उसका प्रभाव दूसरों द्वारा उसके विचारों के विस्तार तथा उनके अनुप्रयोग द्वारा निरंतर पाया गया। यहां पर हम संक्षेप में मनोविज्ञान विषय में किये गये तात्कालिक कार्य पर चर्चा करेंगे–उपलब्धि अभिप्रेरणा का सिद्धांत, संतुलन तथा विसंगति सिद्धांत तथा टी-समूह प्रशिक्षण (प्रयोगशाला प्रशिक्षण समूह) जिसने लेविन के विचारों को और अधिक विस्तृत किया।

1. उपलब्धि अभिप्रेरणा का सिद्धांत

एटकिंसन (1957–1964) ने उपलब्धि अभिप्रेरणा सिद्धांत का विकास किया जो लेविन तथा फेस्टिंगर द्वारा विकसित आकांक्षा-स्तर सिद्धांत में अभिव्यक्त विचारों का विस्तार तथा परिवर्धन है। एटकिंसन के सिद्धांत में उपलब्धि अभिप्रेरित निष्पत्ति की दिशा, ऊंचाई तथा निरंतरता के निर्धारकों की व्याख्या करने का प्रयत्न किया गया है। उपलब्धि अभिप्रेरणा दो विरोधी प्रवृत्तियों का परिणाम है : टी एस-टी एफ (सफलता प्राप्ति की वृत्ति घटा असफलता की उपेक्षा की वृत्ति, एटकिंसन के शब्दों में इसे टी-एफ कहा गया है)।

सफलता प्राप्ति की वृत्ति सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा (एम $_{एस}$) जो व्यक्ति एक स्थिति से दूसरी तक अपने साथ लिये रहता है, सफलता की व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता (पी $_{एस}$) तथा विशेष क्रियाकलाप में सफलता के लिए प्रोत्साहन के मूल्य (आई $_{एस}$) का बहु-उद्देश्यीय कार्य है : टी $_{एस}$ = एम $_{एस}$ × पी $_{एस}$ × आई $_{एस}$। इसी प्रकार असफलता की उपेक्षा की वृत्ति भी असफलता की उपेक्षा करने की अभिप्रेरणा (एम $_{ए\ एफ}$), असफलता की व्यक्तिनिष्ठ संभाव्यता (पी एफ) तथा असफलता के नकारात्मक प्रोत्साहन के मूल्य (आई $_{ए\ एफ}$) का बहु उद्देश्यीय कार्य है :

टी $_{एफ}$ = एम $_{ए\ एफ}$ × पी $_{एफ}$ × आई $_{ए\ एफ}$

अभी तक एटकिंसन का विश्लेषण उस स्थिति में आकांक्षा-स्तर के सिद्धांत के समानांतर है जब यह मान लिया जाता है कि कर्षण शक्ति का लेविनियन संप्रत्यय एटकिंसन के अभिप्रेरणा के समय प्रोत्साहन के समतुल्य है : अर्थात सफलता की कर्षण शक्ति = एम $_{एस}$ × आई $_{एस}$ तथा असफलता की कर्षण शक्ति = एम $_{ए\ एफ}$ × आई $_{ए\ एफ}$। तथापि उसने कुछ अतिरिक्त प्राक्कल्पनायें प्रस्तुत की हैं जैसे आई $_{एस}$ = आई $_{ए\ एफ}$, पी $_{एस}$ = पी $_{ए\ एफ}$ तथा आई $_{ए\ एफ}$ = पी $_{एस}$। दूसरे शब्दों में उसके सिद्धांत में कठिनता के अनुमानित स्तर तथा सफलता और असफलता के अभिप्रेरणा मूल्यों के बीच संबंधों का अधिक विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। वस्तुतः यह सिद्धांत यह बताता है कि कार्य के कठिन लगने पर सफलता का मूल्य बढ़ता है जबकि कार्य सरल लगने पर असफलता होने पर अप्रसन्नता बढ़ती है (यह बात नोट करने योग्य है कि एटकिंसन सिद्धांत में पी $_{एस}$ × आई $_{एस}$, पी $_{एफ}$ × आई $_{ए\ एफ}$ के बराबर अवश्य होना चाहिए) इस प्रकार टी $_{एस}$ तथा टी $_{एफ}$ के बीच शक्ति का जितना भी अंतर हो वह एम $_{एस}$ तथा एम $_{ए\ एफ}$ के बीच अंतर के कारण ही मुख्यतः होता है। इसके अतिरिक्त एम $_{एस}$ तथा एम $_{ए\ एफ}$ के माप की विशेष विधियां हैं। एम $_{एस}$ को मैक्लैलैंड तथा उसके सहयोगियों द्वारा आवश्यकता उपलब्धि को मापने के लिए विकसित

की गई विधियों द्वारा तथा एम ए एफ को दुश्चिता के मेंडलर-सेरासन परीक्षण द्वारा मापा जाता है (1952)।

एटकिंसन (1964) ने अनेक अनुसंधानों का संक्षेप प्रस्तुत किया है जो उसके सिद्धांत की संगति में है। सिद्धांत की व्यापक प्रयोज्यता उस विषयवस्तु के व्यापक परास से पता चलती है जिस पर सिद्धांत का प्रयोग किया गया है : जैसे स्कूलों में योग्यता समूहन का अभिप्रेरणात्मक प्रभाव, उपलब्धि अभिप्रेरणा तथा व्यावसायिक गतिशीलता की शक्ति, असफलता का भय तथा अव्यवहारिक व्यावसायिक आकांक्षा, जोखिम उठाने के लिए अधिमान्यता तथा सफलता और असफलता के प्रभाव।

2. संज्ञानात्मक संतुलन

लेविन द्वारा जीवन-पर्यावरण को संज्ञानात्मक संरचना समझे जाने के दृष्टिकोण में तथा साधारणतः गैस्टाल्ट के इस विचार में कि संगठन जितना अधिक संभव हो उतना अच्छा हो सकता है, यह धारणा निहित है कि जब विश्वासों और अभिवृत्तियों की संरचना असंतुलित अथवा विसंगत होती है, उसमें परिवर्तन लाने के लिए एक प्रवृत्ति उस समय तक जागृत होकर कार्य करती है जब तक उसमे संतुलन न हो जाये। संज्ञानात्मक रूप से असंरचित परिस्थितियों पर तथा विविध प्रकार की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों की संज्ञानात्मक संरचना पर लेविन के विचार उसकी परिचर्चाओं में स्पष्ट रूप से प्रकट हुए हैं। हैडर ने (1946, 1958) जो लेविन का एक अत्यधिक प्रभावी सहयोगी था अपने संज्ञानात्मक संतुलन के सिद्धांत में इस विचार को विस्तृत किया है।

हैडर ने यह बताया कि संज्ञानात्मक स्थिरता में संबंधित वस्तुओं के संबंध में आकस्मिक प्रत्याशायों के बीच सर्वसमता की अपेक्षा है। इसका अर्थ है कि पूर्ण संज्ञानात्मक समरसता की अवस्था के लिए संज्ञानात्मक पर्यावरण में किसी पक्ष के संबंध में व्यक्ति की प्रत्याशायों अथवा निर्णयों के विविध प्रभाव उसके किसी अन्य पक्ष के संबंध में प्रत्याशायों अथवा निर्णयों के प्रभावों का विरोध नहीं कर सकते। इस प्रकार यदि एक व्यक्ति X को अपने कल्याण के लिए संभाव्यतः लाभकारी पाता है, उसी समय वह यह निर्णय नहीं दे सकता कि Y (जिसे भी वह अपने कल्याण के लिए लाभकारी पाता है) तथा X दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं यदि उनकी संज्ञानात्मक संरचना स्थिर अथवा संतुलित है। (यहां X और Y वस्तुयें, व्यक्ति, व्यक्तियों के उत्पाद अथवा व्यक्तियों के गुण भी हो सकते हैं)। जब संज्ञानात्मक संरचना असंतुलन की अवस्था म होती है अथवा उसे असंतुलन का भय होता है, उस समय पलायन

की प्रवृत्ति उत्पन्न करने के लिए शक्तियां उठ खड़ी होती है जिससे मनोवैज्ञानिक पर्यावरण में परिवर्तन होगा अथवा पर्यावरण के संज्ञान में परिवर्तन लाने की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी । उन परिस्थितियों में जिनमें पलायन की आज्ञा नहीं होती संज्ञानात्मक परिवर्तन की प्रवृत्ति बढ़ जाती है ।

हैडर ने अधिक विशिष्ट रूप से यह पाया कि (क) वस्तु (पदार्थ) की ओर निदेशित अभिवृतियों के संबंध में एक संतुलित अवस्था बनी रह सकती है यदि सकारात्मक अथवा नकारात्मक अभिवृतियां साथ-साथ रहती हैं, व्यक्ति के सभी पक्षों में कभी सकारात्मक अथवा कभी नकारात्मक देखने की प्रवृत्ति सदा ही बनी रहती है; (ख) परिचित वस्तु के प्रति निदेशित अभिवृत्तियों के संबंध में संतुलन की अवस्था सदा बनी रहती है । एक व्यक्ति उन वस्तुओं से जुड़ा रहता है जिन्हें वह पसंद करता है और या वह अपने से जुड़ी वस्तुओं को पसंद करता है, नकारात्मक अभिवृतियों के लिए इसका विलोम सत्य है; (ग) यदि दो वस्तुओं को एक यूनिट का भाग समझा जाता है, तब संतुलित अवस्था तभी बनी रहती है जब भागों में समान गत्यात्मक गुण (सकारात्मक अथवा नकारात्मक) पाये जाते हैं । यदि दो वस्तुओं में भिन्न-भिन्न गत्यात्मक गुण पाये जाते हैं, संतुलित अवस्था तभी बनी रह सकती है यदि उनको अलग-अलग कर दिया जाये (अर्थात् यूनिट को तोड़ दिया जाय) ।

हैडर के सिद्धांत का सामाजिक मनोविज्ञान में विस्तृत उपयोग किया गया है । कार्टराइट तथा हरारी (1956) ने इसका विस्तार करने के लिए संतुलन सिद्धांत का संवर्धन किया था तथा रेखीय समूहों के गतिणीय सिद्धांत का प्रयोग कर उसकी कुछ अस्पष्टताओं को भी दूर किया । न्यूकोम (1953, 1961) ने अंतर्वैयक्तिक संबंधों, के "संतुलन' में हैडर के सिद्धांत का प्रयोग किया विशेष रूप से संचार संबंधी कार्यों तथा भिन्नताओं के विकास के अपने विश्लेषण में । रोज़नबर्ग तथा एबेलसन (1960) ने अभिवृत्ति परिवर्तन की समस्याओं के संबंध में हैडर के सिद्धांत को संशोधित किया ।

3. विसंगति सिद्धांत

लेविन के अत्यधिक प्रसिद्ध विद्यार्थियों में से लियोन फेस्टिंगर ने एक सिद्धांत (1957) का विकास किया जो संज्ञानात्मक विसंगति को दर करने की आवश्यकता पर बल देने में संतुलन सिद्धांत के समान है परंतु निर्णय के बाद की प्रक्रियाओं पर बल देने में उससे भिन्न भी है। लेविन (1939—1947) ने एक गृहणी के जो खाद्य पदार्थ खरीदती है, व्यवहार पर चर्चा करते हुए इस बात को सुझाया कि गृहणी के खाद्य पदार्थ खरीदने का निर्णय लेने से पहले के व्यवहार तथा बाद के व्यवहार में अंतर पाया गया । निर्णय से पहले खाद्य पदार्थ इतना अधिक मंहगा था परिवार के

भोजन में उसे सम्मिलित किया जाना कठिन था। निर्णय के पश्चात् उसके दाम उच्च होते हुए भी भोजन में सम्मिलित करना कठिन न होकर अधिक संभव हो गया। फेस्टिंगर के सिद्धांत ने इस विचार का सामान्यीकरण किया कि निर्णय के बाद की परिस्थिति निर्णय के पूर्व की परिस्थिति से भिन्न हो सकती है। इसने इस मौलिक धारणा को जन्म दिया कि निर्णय लेना विसंगति उत्पन्न करता है तथा उस विसंगति को कम करने पर दबाव डालता है।

फेस्टिंगर के अनुसार निर्णय के बाद विसंगति तभी उत्पन्न होती है जब चुने हुए विकल्प के पक्ष में लिया गया निर्णय उन विश्वासों के विरोध में हैं जो न चुने हुए विकल्पों के पक्षधर हैं। निर्णय किए जाने पर उसे स्थिर अथवा दृढ़ करने के लिए व्यक्ति अपने संज्ञानों में परिवर्तन लाकर विसंगति को कम करने का प्रयत्न करता है जिससे न चुने गये विकल्प की तुलना में चुने गये विकल्प का आकर्षण बढ़ जाये अथवा उन संज्ञानों का विकास कर विसंगति को कम करने का प्रयत्न करता है जो एक दूसरे के प्रतिस्थानिक बन कर अन्य विकल्पों की अनुमति देते हैं अथवा निर्णय को मनोवैज्ञानिक रूप से खारिज कर देने से भी व्यक्ति विसंगति के कम करने का प्रयत्न करता है। फेस्टिंगर के विचार में (1964) विसंगति से पहले निर्णय की अवस्था में जटिल अंतर यह है कि पूर्व निर्णयात्मक द्वंद्व "निष्पक्ष" तथा "वस्तुनिष्ठ" होता है, यह चुने जाने वाले विकल्प के पक्ष में आकर्षण को बढ़ाने का नेतृत्व नहीं करता। फेस्टिंगर लिखता है "एक बार निर्णय लेने तथा विसंगति कम करने की प्रक्रियायें प्रारंभ हो जाने पर अन्य विकल्पों के बीच आकर्षणों में अंतर को देखा जा सकता है, विशेष रूप से चुने गए विकल्प के पक्ष में आकर्षण बढ़ता जाता है।"

फेस्टिंगर के निर्णय के बाद की प्रक्रिया ने विविध प्रकार के रुचिकर और भौतिक प्रयोगों को उत्तेजित किया है। इन प्रयोगों में प्रायः "अस्पष्ट अथवा अप्रकट" पूर्वानुमान निहित होते हैं जो सामान्य ज्ञान का उल्लंघन करते हैं। बहुत से पूर्वानुमान इस विचार से उत्पन्न होते हैं कि यदि किसी निर्णय से अपर्याप्त पुरस्कार प्राप्त होता है, व्यक्ति अपने विश्वास परिवर्तित कर लेता है जिससे निर्णय अधिक पुरस्कार प्राप्त करवाने वाले हो सकें। फेस्टिंगर (1961) लिखता है "व्यक्ति उन वस्तुओं को प्यार करने लगते हैं जिनके लिए उन्होंने दुखः उठाये हैं"। अनुमानतः वे दुख उठाते रहने से उत्पन्न विसंगति को कम करने के लिए ऐसा करत हैं तथा विसंगति कम करने की उनकी विधि उस पसंद के आकर्षण को बढ़ा देना है जिसकी तर्कसंगतता सिद्ध करने के लिए उन्होंने कष्ट उठाये होते हैं।

विसंगति सिद्धांत ने सामाजिक मनोविज्ञान के बहुत से पक्षों में विस्तृत अनुसंधान को प्रेरित किया है जसे अभिवृत्ति संबंधी तथा व्यवहारात्मक परिवर्तन, प्रत्याक्षिक

विकृति, सूचना का प्रयत्नपूर्ण प्रकटीकरण, कार्य उत्पादकता तथा इसी प्रकार के अन्य क्षेत्र। अभी हाल में ही विसंगति सिद्धांत की कार्य-प्रणाली संबंधी तथा सैद्धांतिक आलोचना की गई है (चैपनिस तथा चैपनिस 1964, तथा देयूट्सच एट एल 1962, रोजनवर्ग 1965), जिससे कुछ कठिनाई उत्पन्न अवश्य हुई है, परंतु ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका समाधान न हो सके।

4. प्रयोगशाला–समूह प्रशिक्षण (टी-ग्रुप ट्रेनिंग)

प्रयोगशाला समूह प्रशिक्षण (समूहों में प्रयोगशाला प्रशिक्षण) भाग लेने वालों को समूह-प्रक्रियायों के विषय में सूझ-बूझ प्रदान करने, उनको समूहों में कार्य करने का तरीका बताने तथा समूहों में भाग लेने के कौशलों का विकास करने के लिए अस्थायी प्रयोगशाला द्वारा बनाये गये समूह में प्राप्त होने वाले अनुभवों तथा अंतर्वैयक्तिक संबंधों का उपयोग करता है। राष्ट्रीय प्रशिक्षण प्रयोगशाला, जो व्यवहारात्मक विज्ञान का सामाजिक संदर्भ में प्रयोग करने से संबंधित मुख्य संस्थानों में से एक है, लेविन के समूह गतिकी अनुसंधान केंद्र जो लेविन के विचारों से अति प्रभावित था, के सहयोग से 1947 में स्थापित की गई। "आचरण, ज्ञान तथा नए मूल्यों की स्वीकृति" (लेविन और ग्रावे 1945) तथा "समूह गतिकी की सीमाएं" शीर्षक से उसके दो लेख प्रयोग-शाला प्रशिक्षण-समूहों की संकल्पना के विकास के लिए बौद्धिक आधार प्रस्तुत करते हैं। ये लेख व्यक्ति की पुनः शिक्षा तथा परिवर्तन की प्रक्रिया में समूह के महत्व को उजागर करते हैं। अभी हाल के वर्षों में व्यक्तियों को समूह में प्रशिक्षित करने से संबंधित पर्याप्त सामग्री का विकास किया गया। यद्यपि बहुत-सी सामग्री केवल शुभ संदशीय ही है, फिर भी यह लेविन की इस सक्रिय तथा निरन्तर बनी रहने वाली चिंता से संबंधित है कि सामाजिक विज्ञान का प्रयोग संसार को एक अच्छा निवास-स्थान बनाने के लिए किया जाना चाहिए।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि लेविन की विशिष्ट सैद्धांतिक रचना, उसके संरचनात्मक तथा गतिकीय संप्रत्यय––मनोविज्ञान में किए जाने वाले आधुनिक अनुसंधानों के मुख्य केंद्र हैं, तथापि मनोविज्ञान पर उसका प्रभाव प्रमुख रूप से पड़ा है। उसका प्रभाव सामान्य अभिन्यिास में प्रतिबिंबित होता है जिसे अधिक से अधिक स्वीकृति प्रदान की जा रही है। यह अभिविन्यास इस प्रकार है–मनोवैज्ञानिक घटनाओं की मनोवैज्ञानिक संदर्भ में ही व्याख्या की जानी चाहिए, संवदी आगतों की परिधीय प्रक्रियाएं अथवा पेशीय क्रियाकलाप के स्थान पर जीवन-पर्यावरण की केन्द्रीय प्रक्रियाएं (जैसे दूरी-प्रत्यक्षण, अभिज्ञान, अभिप्रेरणा, लक्ष्य-निदेशित व्यवहार) ही अन्वेषण के फोक्स होने चाहिए, मनोवैज्ञानिक घटनाओं का एक दूसरे से संबंधित होने के आधार पर ही अध्ययन किया जाना चाहिए, व्यक्ति का अध्ययन उस समूह

से अंतर सहसंबंध आधार पर ही किया जाना चाहिए जिसका वह सदस्य है, प्रक्रिया में परिवर्तन लाने का प्रयत्न ही इसके अन्वेषण का अधिक सफल तरीका है। महत्वपूर्ण समाज-मनोवैज्ञानिक घटना का अध्ययन प्रयोगात्मक रूप से ही किया जाना चाहिए, वैज्ञानिक की सामाजिक अंतश्चेतना होनी चाहिए। एक अच्छा सिद्धांत सामाजिक-क्रिया के साथ साथ विज्ञान के लिये भी महत्वपूर्ण होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एटकिसन, जौन डब्ल. (1957) 1958 जोखिम उठाने वाले व्यवहार का अभिप्रेरणात्मक निर्धारण पृष्ठ 322–339 जौन डब्लू एटकिसन (संपादक), मोटिव्स इन फेंटेसी, एक्शन एंड सोसाइटी : ए मैथड आफ एसेसमेंट एंड स्टीडी, प्रिंसटन, एन ज : वेंन नौस्ट्रड–साइक्लोजिकल रिव्यू के बोल्यूम 64 में पहली बार प्रकाशित।

2. ब्रेहम, जैक डब्लू. एंड कोहन, आर्थर आर 1962 एक्सप्लोरेशन इन कागनेटिव डिसोनेन्स न्यूयार्क, विली।

3. कार्टराइट, डारविन, एंड हैनरी, फ्रैंक 1956 संरचनात्मक संतुलन : हैडर के सिद्धांत का सामान्यीकरण साइक्लोजिकल रिव्यू 63 : 277-293।

4. डयूस्च, मौर्टन 1949 सहयोग और प्रतियोगिता का सिद्धांत 'ह्यूमैन रिलेशन' 2 : 199–231।

5. फस्टिंगर, लिओन 1964 कोनफिकट, डिसिजन एंड डिसोनेनस स्टैन फोर्ड स्टिडिज इन साइकोलोजी न०, 3 स्टैनफोर्ड यूनि. प्रैस।

6. हैडर, फिटज़ 1958 "द साइकोलोजी आफ इंटर पर्सनल रिलेशन न्यूयार्क : विली।

व्यक्तिगत भेद और लिंग भेद

एक ही जाति-मूल के सदस्यों से व्यवहार व आकार तथा संरचना की अपेक्षाकृत स्थायी भेदों को ही व्यक्तिगत भेद कहा जाता है। इस परिभाषा से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह विषय न केवल मानव व्यवहार से संबद्ध है बल्कि समस्त जीवधारियों से भी इसका संबंध है। भेदक मनोविज्ञान के अंतर्गत मनोवैज्ञानिक विशेषकों का व्यक्तिगत व समूहगत अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान के विकास के साथ इस दिशा में काफी प्रगति हुई है तथा प्रयोगों व परीक्षणों की सहायता से व्यक्तिगत भेदों का मापन हुआ है। व्यक्तिगत भेदों तथा सामूहिक अंतरों का मापन, मनोवैज्ञानिक विभेदकों का अभिज्ञान तथा व्यवहार को प्रभावित करने वाले जैविक, परिवेशिक तथा सांस्कृतिक तत्वों का अध्ययन ही शिक्षा मनोविज्ञान की इस शाखा की विषयवस्तु है। व्यावहारिक विभेदों को परिवेशिक तथा वंशानुक्रम संबंधी अवस्थाओं के साथ जोड़कर इन तत्वों के प्रभाव का मूल्यांकन भेदक मनोविज्ञान में किया जाता है।

व्यक्तिगत भेद के वैज्ञानिक अध्ययन के प्रणेता फ्रांसीसी भौतिकशास्त्री एस्किरोल (1838) तथा सेगां (1866) माने गए हैं। इन्होंने मानसिक मंदन के अध्ययन का सूत्रपात किया। लगभग इसी समय एक अंग्रेज जीव वैज्ञानिक सर फ्रांसिस गाल्टन (1879--1883) ने मानव-वंशानुक्रम के मूल तत्वों का अध्ययन करने के लिए संबंधित तथा असंबंधित व्यक्तियों पर आंकड़े एकत्रित किए तथा माता-पिता तथा संतान, जुड़वां बालकों, भाई-बहनों तथा अन्य संबंधियों की विशेष समानताओं तथा विभिन्नताओं का मापन किया। इन्होंने सबसे पहले मापन की सांख्यिकी का प्रयोग किया। इस परम्परा का विकास जेम्स मेकीन कैटल ने अमरीका में किया। "मानसिक परीक्षण" शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख कैट की पुस्तकों में ही मिलता है। इन मानसिक परीक्षणों के द्वारा यह सिद्ध हुआ कि सभी जीवों में संवेगात्मक, अभिप्रेरणात्मक तथा सीखने से संबंधित विभेद पाए जाते हैं। कभी-कभी विभेदों का विस्तार इतना अधिक हो जाता है कि एक जाति या वर्ग का सदस्य दूसरी जाति या वर्ग के व्यवहार के स्तर पर पहुंच जाता है। इस विस्तार को सामान्य वितरण वक्र के द्वारा अंकित किया जाता है तथा इसका अध्ययन सांख्यिकी के संदर्भ में किया जाता है।

व्यक्तिगत विभेद मात्रात्मक होते हैं गुणात्मक नहीं। व्यक्तियों में विभेद मात्रा का प्रश्न है। अधिकांश गुणों के आवृत्ति वितरण यह प्रदर्शित करते हैं कि सीमा-क्षेत्र के मध्य-बिन्दु के निकट व्यक्तियों का जमाव होता है और सीमांत तक पहुंचते-

84-M/P(N)610MofE&C—15

पहुंचते प्रकरणों की संख्या में क्रमानुसार न्यूनता होती जाती है। इस प्रकार का वितरण आवृत्ति-बहुभुज अथवा आयत चित्र आवृत्ति के रूप में रेखाचित्र द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। शारीरिक अथवा मनोवैज्ञानिक गुणों के बहुत से वितरण प्रसामान्य संभाव्यता वक्र के निकट होते हैं।

संपूर्ण प्राणि-वर्ग में व्यक्तिगत भेद सर्वव्यापी हैं। सामान्य एक कोषी-जीवाणु से लेकर मानव रूप बानर तक के प्राणि-व्यवहार का अनुसंधान यह प्रकट करता है कि उनकी क्षमताओं में अत्यधिक वैयक्तिक विभिन्नताएं हैं। ये विभिन्नताएं इतनी बड़ी हैं कि जब अत्यधिक विभिन्न जीव-वर्गों की तुलना की जाती है तो वितरणों की परस्पर व्याप्ति दृष्टिगोचर होती है।

परिवेश तथा वंशानुक्रम की अन्योन्यक्रिया

व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक विशेषताओं का निर्धारण परिवेश तथा वंशानुक्रम के परस्पर संश्लिष्ट आदान-प्रदान से होता है। वंशानुक्रम का आधार गुणसूत्र तथा जीन हैं। प्रत्येक व्यक्ति का वंशानुक्रम अपने माता-पिता से प्राप्त गुण-सूत्रों के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संचरित होता है तथा यह गुणसूत्र शरीर की प्रत्येक कोशिका में व्याप्त रहते हैं। साधारणत: मानव शरीर में 23 जोड़े गुणसूत्र पाए जाते हैं। इन गुण-सूत्रों में निहित अनुवंश जटिल रासायनिक पदार्थ हैं जो व्यक्ति के विकास को हर प्रकार से आजन्म प्रभावित करते रहते हैं। यदि इन पदार्थों में किसी प्रकार की न्यूनता अथवा रासायनिक असंतुलन हो जाए तो व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक रूप से सामान्य नहीं रह सकता। उदाहरण के लिए कुछ विशेष प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलताओं का कारण इन सूक्ष्म अनुवंशों की असामान्यता को ही बताया जाता है।

किंतु ऐसे विषम तथा अनियमित उदाहरणों को छोड़कर साधारण दृष्टि से देखने पर विदित होता है कि वंशानुक्रम केवल व्यक्ति के व्यवहार और उपलब्धियों की पृष्ठभूमि तैयार करता है। वास्तव में व्यक्ति की आकांक्षाओं तथा उपलब्धियों की सीमा रेखा का निर्धारण और उसके व्यक्तित्व तथा चरित्र का निर्माण परिवेश द्वारा होता है। परिवेश की परिभाषा करते समय यह कहना अनुचित न होगा कि इसके अंतर्गत गर्भ-धारण के उपरांत होने वाले सभी रासायनिक, शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रभावी तत्व आते हैं। पौष्टिक आहार, स्वास्थ्य, प्रेरणा की मात्रा तथा प्रकार, परिवार का संवेगात्मक संतुलन, सुरक्षा की भावना, जीवन का सामाजिक-आर्थिक स्तर, शिक्षा इत्यादि सभी ऐसे तत्व हैं जिनका व्यक्ति के परिवेश के निर्माण में योगदान रहता है। व्यक्तिगत भेदों के संदर्भ में आनुवंशिकत तथा परिवेश के आनुपातिक महत्व का प्रश्न मनोवैज्ञानिक मतभेद का विषय रहा है

भारी संख्या में विभिन्नता संबंधी आंकड़ों के एकत्रण से तथा प्रयोगों के आधार पर अब अधिकांश मनोवैज्ञानिक एक पक्षीय दृष्टिकोण प्रस्तुत नहीं करते हैं।

सैद्धांतिक रूप में सभी मनोवैज्ञानिक यह मानकर चलते हैं कि परिवेश तथा आनुवंशिकता दोनों ही व्यक्तिगत भेद के निर्धारक तत्व हैं। आनुवंशिकता के योगदान का मूल्यांकन करने के लिए प्रमुख रूप से तीन प्रणालियां अपनाई गई हैं। पहली प्रणाली है चयनात्मक प्रजनन, दूसरी प्रयोगात्मक विभिन्नता तथा तीसरी जुड़वां बच्चों की विशेषताओं का अध्ययन।

चयनात्मक प्रजनन—इस प्रणाली के अंतर्गत संबंधित प्रयोग अन्य जीवों पर किए जाते हैं–मानव पर नहीं। स्पष्ट रूप से इसके नैतिक व सामाजिक कारण हैं। इस दिशा में निरन्तर प्रयोग चल रहे हैं तथा चूहों व कुत्तों पर काम हुआ है। उदाहरण के लिए 'सीखने की क्षमता' तथा उसका आनुवंशिकता से संबंध स्थापित करने के लिए पीढ़ी दर पीढ़ी "चतुर चूहों" का "चतुर चूहों" के साथ तथा "मंद चूहों" का "मंद चूहों" के साथ चयनात्मक प्रजनन करवाया गया। इन प्रयोगों से विदित हुआ कि "चतुर चूहों" की संताने सीखने की क्रिया में चतुरता का प्रदर्शन करती हैं तथा मंद चूहों की संतानें मंदता का। एक विशेष प्रकार की भूल-भूलैया से बाहर निकलने की क्षमता के आधार पर चूहों को "चतुर" तथा "मंद" वर्गों में बांटा गया। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकला कि पीढ़ी दर पीढ़ी "चतुर चूहों" की संतानें उत्तरोत्तर चतुर होती जाती हैं तथा "मंद चूहों" की संतानें इसके विपरीत मंद होती जाती हैं (रोजैनजवाइग, 1969)। कुत्तों पर भी इसी प्रकार के प्रयोग किए गए तथा कुत्तों की नस्लों को चयनात्मक प्रजनन विधि द्वारा क्रमशः अधिक आक्रामक बनाया गया (स्काट तथा फुलर, 1965)।

प्रयोगात्मक विभिन्नता—इसके अंतर्गत अनुभवों की पद्धतिबद्ध विविधताओं का व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। 1959 में बीच तथा जेनिस ने पशु व्यवहार पर प्रारंभिक अनुभवों के प्रभाव पर उस समय तक जितने अध्ययन किए गए थे प्रायः उन सबका सर्वेक्षण किया। बीच तथा जेनिस समीक्षा के पश्चात् अनेक नये अध्ययनों के प्रकाशित होने से यह प्रमाणित होता है कि इस क्षेत्र में अध्ययन की अभिरुचि लगातार बढ़ती रही है। जिन क्रियाओं पर अनुसंधान किया गया है वे हैं—पक्षियों का उड़ना तथा चहकना, मेंढकों का तैरना, आहार की प्रतिक्रियाएं, आहार-संग्रह, प्रजनन-व्यवहार, बच्चों के प्रति माता-पिता का वात्सल्य, बच्चों द्वारा परिचर्या, अपने अथवा अन्य जीवकोटियों के सदस्यों के साथ समूह बनाना अथवा उन्हें अधिमान्यता देना, लड़ना अथवा अन्य आक्रामक व्यवहार

जंगलीपन, भीरुता अथवा अन्य संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएं। इन सब क्रियाओं पर प्रायोगिक रूप से प्रेरित परिस्थितियों का कुछ प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि विभिन्न जीव वर्गों, क्रियाओं तथा अनुभव के स्वरूप के साथ इन प्रभावों के विस्तार में परिवर्तन हो जाता है।

किन्हीं परिस्थितियों में लक्षक प्रतिक्रिया प्रदर्शित नहीं होती। अन्य परिस्थितियों में प्रतिक्रिया अनेक रूपों में परिवर्तित हो सकती है अथवा प्रतिक्रिया उन उद्दीपनों के प्रति हो सकती हैं जो सामान्यतया प्रतिक्रिया प्रेरित करने वाले उद्दीपनों से भिन्न होते हैं। इस प्रकार का उदाहरण उस प्रतिक्रिया में मिलता है जिसे लौरेंज तथा उसके साथी "अंतःमुद्रण" कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि पशु के बच्चों में प्रतिक्रिया विशेष की उत्पत्ति के लिए पहला ही उद्दीपन एक मात्र ऐसा उद्दीपन हो जाता है जिसके कारण भविष्य में वह प्रतिक्रिया उत्पन्न होगी। उदाहरण के लिए जब अंडों से निकले हुए हंस के बच्चों को प्रौढ़ हंसों से पृथक किया गया और कुछ काल तक प्रयोगकर्ता के पीछे चलाया गया तो उसके पश्चात वे उसके पीछे ही चलते रहे तथा उन्होंने प्रौढ़ हंसों के पीछे चलने की कोई रुचि न दर्शायी। इसी रीति से अनेक वर्ग के पक्षी-शावक अन्य वर्गों के पालक पक्षियों से स्नेह संबंध बनाते पाये गए।

जुड़वा बच्चों की विशेषताओं का अध्ययन

आनुवंशिकता के प्रभाव का अध्ययन करने का तीसरा सर्वमान्य तथा प्रचलित साधन है—जुड़वां बच्चों की शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विशेषताओं की समानता का अध्ययन तथा अन्य संबंधित तथा अन्य असंबंधित व्यक्तियों से उनकी तुलना। यदि जुड़वां बच्चों के विशेष गुण-रूप एक समान पाए जाते हैं तथा अन्य भाई-बहनों तथा असंबंधित व्यक्तियों के नहीं तो इस समानता का कारण सूक्ष्म अनुवंशों को ही माना जा सकता है। जुड़वां बच्चे दो प्रकार के होते हैं—समरूप यमज तथा असमरूप यमज। समरूप यमज बच्चों के अनुवंश पूर्णरूप से समान होते हैं तथा असमरूप यमज के पाक्षिक रूप से। इसके अनुपात में एक ही माता-पिता की संतानों के कुछ ही अनुवंश समान होते हैं तथा असंबंधित व्यक्तियों के समान नहीं होते। सांख्यिकी की सह-संबंध गुणांक विधि के प्रयोग से यह विदित हुआ है कि समरूप यमज के सह-संबंध गुणांक सबसे अधिक, असमरूप यमज के उनसे कुछ कम और फिर माता-पिता तथा संतान, भाई-बहन तथा असंबंधित व्यक्तियों के इसी क्रम से घटते जाते हैं।

बुद्धि, व्यक्तित्व तथा अन्य सामान्य मानसिक स्थितियों में भी परिवार के सदस्य एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं। उदाहरण के लिए यदि समरूप यमज में से एक किसी मानसिक रोग से पीड़ित हो तो दूसरे को होने की संभावना 35 से 38

प्रतिशत ही होती है (गौट्समन और शील्ड्स, 1973)। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति के माता और पिता दोनों किसी मानसिक रोग से पीड़ित हों तो व्यक्ति को भी उसी रोग से पीड़ित हो जाने की संभावना 34 प्रतिशत हो जाती है। यदि केवल पिता को कोई मानसिक रोग हो तो यह घट कर मात्र 9 प्रतिशत तक रहती है (हेस्टन 1970)। उपरोक्त तथ्यों से यह असंदिग्धरूप से सिद्ध हो जाता है कि आनुवंशिकता का व्यक्ति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार बुद्धि-मापन के क्षेत्र में भी आनुवंशिकता के महत्व को प्रदर्शित करने वाले पर्याप्त आंकड़े हैं।

व्यक्तिगत भेद के निर्धारण में परिवेश की भूमिका का मूल्यांकन करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने दो प्रकार से नियंत्रण करके प्रयोग तथा अध्ययन किए हैं। ये दो प्रकार हैं—परिवेश में वंचन तथा परिवेश का संवर्धन। वंचन विधि में विकास काल में शिशु या बच्चे के वातावरण में उत्तेजना तथा प्रेरणा की मात्रा को सामान्य से कम कर दिया जाता है। संवर्धन प्रणाली में सामान्य परिवेश की तुलना में प्रेरणा के स्तर को बढ़ा दिया जाता है। मानव शिशुओं के लालन-पालन में तथा चिंपैंजी पर किए कुछ प्रयोगों में वंचन विधि तथा संवर्धन विधि का उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिए डेनिस (1960) ने ईरान में अनाथाश्रम के शिशुओं पर प्रयोग किया और पाया कि घूमने-फिरने और क्रियाशील होने का अवसर कम मिलने के कारण इन शिशुओं का विकास सामान्य से कम था। इसके अतिरिक्त भाषा और मानसिक शक्तियों के विकास तथा भावात्मक विकास पर वंचन का प्रभाव भी प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा चुका है। हार्लो तथा सुओमी (1970) ने बानर शिशुओं को मां के संपर्क से वंचित कर दिया। उनको असली मां के स्थान पर तार या तौलिये की बनी मां जैसी पुतली पर पाला गया। जन्म से छह महीने की आयु तक इस प्रकार पले बंदरों पर वंचन का दीर्घकालीन प्रभाव पड़ा। वह अपने जीवन में आगे चल कर कभी भी साधारण बंदरों के समान अन्य बंदरों से सामाजिक संबंध स्थापित नहीं कर सके। उनका यौन व्यवहार भी सदा असामान्य रहा। कुछ मादाएं यदि मां बनी भी तो वह अपने शिशुओं की ओर मातृत्व व्यवहार करने में असमर्थ रहीं। इसी प्रकार के विभिन्न प्रयोगों से परिवेश में वंचन का व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव, स्पष्ट हो जाता है। संवर्धित परिवेश पर भी असंख्य प्रयोग तथा अध्ययन हुए हैं तथा अब भी हो रहे हैं। यहां परिवेश के संवर्धन का एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। अनाथालय के कुछ शिशुओं को उन्नीस माह की आयु पर एक विशेष वातावरण में रखा गया। इस परिस्थिति में बालकों को कहानियां सुनाई जाती थीं, उनसे सामान्य से अधिक बातचीत की जाती थी तथा मानसिक जिज्ञासा को बढ़ावा दिया जाता था। इन बालकों को एक प्रयोगात्मक पाठशाला में भी डाला गया जहां बुद्धि-वृद्धि के लिए विशेष प्रकार के खिलौनों से परिवेश का संवर्धन किया जाता था। चार साल की

अवधि के बाद जांचने पर इन बालकों की बुद्धि नियंत्रित वर्ग (अर्थात् जिन्हें संवर्धित परिवेश में नहीं रखा गया था) के बालकों से 32 अंक आगे थी (स्कील्स 1966)। बीस साल बाद के आंकड़ों से विदित हुआ कि य बालक जीवन में हर प्रकार से सफल थे जबकि इनके साथ के अनाथाश्रम के अन्य बालक केवल तीसरी या चौथी कक्षा तक पढ़ पाए थे। इसी प्रकार के अन्य अध्ययनों द्वारा यही सिद्ध होता है कि आनुवंशिकता व्यक्ति की संभावनाओं की नींव है किंतु उसका पूर्ण विकसित रूप परिवेश पर निर्भर करता है।

व्यक्तिगत भेद के निम्न तीन प्रमुख क्षेत्रों--बुद्धि, व्यक्तित्व तथा रुचि के मापन का उल्लेख तथा सैद्धांतिक विवेचन संक्षेप में किया जाएगा। संसार में कोई दो व्यक्ति पूर्ण रूप से समान नहीं होते। उनकी शारीरिक रचना, आवाज, रंग, रूप सभी भिन्न होते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार की शारीरिक असमानताएं विशेष रोचक नहीं है क्योंकि उनका निर्धारण जैविक तत्वों और जाति से होता है। भेदक-मनोविज्ञान में विशेष रूप से बुद्धि, व्यक्तित्व तथा रुचि का अध्ययन हुआ है। वास्तव में बुद्धि और रुचि भी व्यक्तित्व के अंतर्गत ही आते हैं, किंतु शोध और अनुसंधान में तीनों क्षेत्रों में अलग-अलग कार्य किया गया है इसलिए इन्हें पृथक रखना ही उचित है।

बुद्धि और उसका मापन

मानसिक क्षमताएं, जैसे समस्या सुलझाना, विश्लेषण करना, अवधारणा शक्ति सभी व्यक्तियों में समान रूप में विकसित नहीं होती। इस तथ्य को मनुष्य ने बहुत पहले ही समझ लिया था। प्रायः सभी भाषाओं में मूर्ख, मूढ़, मंदबुद्धि, चतुर, तीव्रबुद्धि, कुशाग्र आदि शब्दों का प्रयोग आदि काल से होता आ रहा है। आधुनिक युग में मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की वैज्ञानिक परिभाषा दी है तथा उसके परिशुद्ध मापन की विधियां खोज निकाली हैं। सबसे पहले एलफ्रेड बिने ने 1905 में पैरिस के विद्यालयों में बुद्धि परीक्षण प्रारंभ किया। उन्होंने कुछ ऐसे "कार्य" बनाए जो एक दूसरे से उत्तरोत्तर कठिन थे तथा तीन से ग्यारह वर्ष तक की आयु के बालकों की मानसिक क्षमता का मापन करने में सफल जान पड़ते थे। क्रमशः उन्होंने इन कार्यों का परीक्षण और संशोधन किया तथा इनका मानकीकरण किया। बिने के अतिरिक्त दूसरा प्रमुख नाम टरमन मेरिल का है जिन्होंने बुद्धिलब्धि का प्रचलन किया। बिने और टरमन के परीक्षणों द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि विभिन्न व्यक्तियों की बुद्धि समान नहीं होती। बुद्धि का सामूहिक रूप यदि वृत्त-चित्र के रूप में प्रस्तुत किया जाए तो यह विदित होता है कि बुद्धि वितरित है। कुछ व्यक्ति सामान्य से अधिक बुद्धिमान हैं और कुछ निम्न क्षमता रखते हैं। जनसाधारण में बुद्धि का विस्तार सामान्य-वितरण वक्र का रूप धारण करता है जिसमें लगभग दो तिहाई व्यक्ति माध्य के दोनों ओर आसपास

के अंक प्राप्त करते हैं तथा शेष व्यक्ति आनुपातिक रूप में वितरण वक्र में बंटे होते हैं। माध्य से लगभग तीन मानक विचलन ऊपर और नीचे बुद्धि का विस्तार होता है। सामान्य से कम बुद्धि वाले व्यक्तियों का वर्गीकरण स्थूल बुद्धि, मूढ़, मूर्ख और जड़ में किया गया था सामान्य से अधिक बुद्धि वाले व्यक्तियों को क्रमशः तीव्र-बुद्धि, प्रखर बुद्धि तथा अत्यन्त प्रखर बुद्धि की संज्ञा दी गई। टरमन ने बुद्धि के विकास का मापन शारीरिक आयु तथा मानसिक आयु के अनुपात के रूप में किया तथा इसको बुद्धि-लब्धि कहा। बुद्धिलब्धि, अर्थात्

$$\frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{शारीरिक आयु}} \times 100$$

में विशाल व्यक्तिगतभेद पाए गए। इन्हीं भेदों के मापन के लिए वैयक्तिक तथा सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का आविष्कार हुआ। इसके अतिरिक्त क्रियात्मक तथा शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का विकास किया गया जिसके आधार पर पढ़े-लिखे तथा अनपढ़ सभी व्यक्तियों की बुद्धि का मापन संभव हो गया। यहां यह कहना आवश्यक है कि पिछले बीस वर्षों में बुद्धिलब्धि की परिभाषा में परिवर्तन हो गया है। आनुपातिक बुद्धिलब्धि के स्थान पर विचलन बुद्धिलब्धि का प्रयोग अधिकांश परीक्षणों में किया जाता है। इस परिवर्तन का कारण कुछ ऐसी कठिनाइयां थीं जिन्हें सांख्यिकी के संदर्भ में समझा जा सकता है (स्टैनले और हापकिंस, 1978)। बुद्धि लब्धि के आधार पर व्यक्तिओं के वर्गीकरण में भी परिवर्तन आये हैं। अमरीकी मानसिक मंदन संस्थान ने मंदन को मानक विचलन के अनुसार चार भागों में विभक्त किया है-हलका मंदन, मध्यस्थ मंदन, तीव्र मंदन तथा अगाध मंदन। निम्नांकित वर्गीकरण, जो मूल स्टेंफोर्डबिने-वितरण के आधार पर हरमन द्वारा प्रस्तुत किया गया था व्यापक रूप में माना गया है-मंदता, जिसका कभी-कभी ही मंद बुद्धिता के रूप में वर्गीकृत होना संभव है, सीमारेखा की मानसिक कमी, जो कभी-कभी मंदता में वर्गीकृत होती है तथा क्षीण बुद्धि, मूढ़ और मूर्ख।

इस वर्गीकरण के प्रयोग करने में सावधानी बरतनी चाहिए। पहले तो यह स्मरण रखना चाहिए कि निकटतम स्तरों के बीच विभाजन उतना ही यादृच्छिक है जितना सामान्य तथा मानसिक कमी के बीच। दूसरे, उपरोक्त वर्गीकरण ऐसे परीक्षण पर आधारित था जिसमें बुद्धिलब्धि वितरण का मानक विचलन केवल 12 अंकों का था। प्रचलित स्टेनफोर्ड बिने अथवा वेश्लर मापों पर मानक विचलन लगभग 15 और 16 के बीच ही पड़ते हैं। बुद्धिलब्धि निकालने वाले कतिपय अन्य परीक्षणों में मानक विचलन 20 अथवा 25 तक भी उच्च होते हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक विशिष्ट समिति द्वारा 1954 में प्रस्तुत प्रतिवेदन से बुद्धि की सीमाओं के मानक से मानसिक कमी के स्तरों की परिभाषा की फिर से

पुष्टि की गई। "क्षीण बुद्धि", "मूढ़" तथा "मूर्ख", शब्दों के बदले "मंद" अथवा "मध्य" तथा "तीव्र अवसामान्य' संज्ञायें दी गई हैं।

मंदबुद्धिता की कानूनी और समाज शास्त्रीय परिभाषाएं सामाजिक अपर्याप्तता पर बल देती हैं। ब्रिटेन में इसका प्रयोग 1913 के क्रमिक संशोधनों के आधार पर किया गया है, जिसमें मानसिक मंदन की निम्नांकित कुछ असंगठित परिभाषा दी गई है : "अठारह वर्ष की आयु के पूर्व मन के बद्ध अथवा अपूर्ण विकास की अवस्था चाहे वह प्रकृत कारणों से हुई हो अथवा रोग या चोट से उत्पन्न हो"।

मानसिक कमी के हेतु वैज्ञानिक वर्गीकरण में एक कारक और बहुकारक मानसिक क्षीणता का भी वर्णन किया गया है। एक कारक मामले (केस) अत्यधिक विसामान्य होते हैं; उनमें आंगिक विकृति और बौद्धिक कमी दोनों ही होते हैं और जिनका कारण एक अकेला दोषी जीन अथवा कोई मुख्य पर्यावरणी बाधा हो सकती है। दूसरी ओर बहुकारक मानसिक क्षीणता वाले बुद्धि के सामान्य वितरण के निम्नतम छोर का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रत्येक मामले (केस) अत्यधिक निम्न और बुरे आनुवंशिक और पर्यावरणीय कारकों के विशेष मेल पर निर्भर रहते हुए मानसिक क्षीणता की विविध मात्रा का प्रदर्शन करते हैं। चूंकि वितरण के निम्नतम छोर पर एक कारक दोषी बहुकारक दोषियों में मिला दिए जाते हैं, निम्नबुद्धि लब्धि की आवृति सांख्यकीय रूप से निकाले गए सामान्य संभाव्यता वक्र में प्रत्याशित आवृति से अधिक होनी चाहिए। विविध जनसंख्या में बुद्धिलब्धि के वितरण के व्यापक पैमाने पर किए गए वेक्षण वस्तुतः मापनी के निम्न छोर पर सामान्य से ऐसे विचलन को प्रकट करते हैं।

प्रतिभाशाली बच्चों की खोज अनेक तकनीकों तथा विभिन्न दृष्टिकोणों से की गई हैं। टरमन तथा उसके सहयोगियों द्वारा स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में किए गए अध्ययनों में स्टनफोर्ड बिने के परीक्षणों के आधार पर 140 अथवा उस से ऊपर के बुद्धिलब्धि वाले केलिफोर्निया राज्य के स्कूल के बच्चों की विस्तृत जांच की गई और वयस्क होने तक निरंतर उनकी प्रगति पर ध्यान दिया गया। सामान्य जनसंख्या के लगभग एक प्रतिशत व्यक्ति ही बुद्धिलब्धि के इस स्तर तक पहुंच पाते हैं। अन्य स्थानों पर किए गए अध्ययनों के परिणामों का स्टेनफोर्ड अध्ययनों के परिणामों से सहयोग करने पर यह प्रकट हुआ कि प्रतिभाशाली बालक, जिसे स्कूल में विशेष रूप से सफल माना जाता है, स्वस्थ, संवेगात्मक रूप से अति समंजित, विविध रुचि रखने वाला तथा अपने औसत कक्षा सहयोगियों से कहीं उच्च होता है। यद्यपि वैयक्तिक अपवाद हो सकते हैं, परन्तु समूह रूप से इस बात को नकारा ही गया है कि प्रतिभाशाली बालक कमजोर, अस्वस्थ, भीरु और कुछ

ही विशेषता प्राप्त होता है। जैसे जैसे वे परिपक्व होते जाते हैं प्रतिभाशाली बच्चे उत्कृष्ट वयस्क उपलब्धिओं के रूप में अपनी युवा प्रतिश्रुतियों को पूरा करते हैं।

बीसवीं शताब्दी के मध्य से उच्च प्रतिभाशाली विकृतों के अन्वेषण में अत्यधिक विलक्षण विकास वयस्कों और बच्चों पर किए गए सृजनशीलता के अनुसंधान में देखा जा सकता है (गोलन 1963)। यद्यपि यह अनुसंधान ऐसे आंकड़े प्रस्तुत करता है जिसका व्यावहारिक और सैद्धांतिक महत्व होता है, फिर भी हमें पारंपरिक रूप से मापित बुद्धि और सृजनशीलता के बीच अंतर को बढ़ा-चढ़ा कर बताने से बचना चाहिए, यह निश्चित ही है कि न तो प्रचलित बुद्धि परीक्षणों से प्राप्त उच्च बुद्धिलब्धि और न ही उच्च शैक्षिक उपलब्धि सृजनशीलता के समरूप है। यह विशेषतायें इस तथ्य को सुनिश्चित नहीं करत कि व्यक्ति भविष्य में कोई उत्कृष्ट योगदान कर सकेगा। दूसरी ओर न तो इन विशेषताओं में सृजनशीलता निहित है और न ही यह सृजनशीलता से पूर्ण रूप से असंबंद्ध है। पारंपरिक बुद्धि परीक्षण सृजनशीलता से सामान्य परंतु महत्वपूर्ण सकारात्मक सहसंबंध प्रदर्शित करते हैं। बुद्धि और सृजनशीलता के बीच अंतर करने के स्थान पर हमें नए पहचाने गए सृजनात्मक लक्षणों को सम्मिलित करने के लिए बुद्धि की संकल्पना को विस्तृत करना चाहिए (गिलफोर्ड 1959)।

लिंग भेद

मानवसमूहों के बीच सभी तुलनाओं के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रत्येक समूह के अंदर वैयक्तिक भेद समूहों के बीच औसत भेदों से कहीं अधिक है। इसके परिणामस्वरूप समूहों का वितरण परस्पर व्याप्त है। यद्यपि दो समूहों के माध्य सांख्यकीय रूप अत्यधिक मात्रा में भिन्न हो सकते हैं, निम्न प्राप्तांक समूह में ऐसे भी व्यक्ति हो सकते हैं जो उच्च प्राप्तांक समूह के व्यक्तिओं से कहीं आगे निकल जाते हैं। इसलिए एक विशेष समूह में एक व्यक्ति की सदस्यता अधिकांश मनोवैज्ञानिक विशेषकों में उसकी स्थिति का अविश्वसनीय सूचक है। समूह औसतों का मूल्यांकन कुल वितरणों के अतिव्यापन के कुछ उपायों के संदर्भ में ही किया जाना चाहिए जैसे समूह का वह भाग जो अन्य समूह के माध्य तक या उससे उच्च पहुंच जाता है।

समूह तुलनाओं में प्रणाली संबंधी एक समस्या अप्रतिनिधात्मक प्रतिचयनों का प्रयोग है जिसमें दो जनसंख्याओं के लिए चयनात्मक कारक भिन्न-भिन्न होता है। समूहों की तुलना के लिए प्रयुक्त प्रतिचयनों का उनकी जनसंख्या का समान रूप से प्रतिनिधिक होना चाहिए। कई बार चयनात्मक कारकों से ऐसे प्रतिचयन उपलब्ध होते हैं जिनकी वास्तव में तुलना नहीं हो सकती। ऐसी परिस्थितियों में समूह में उपलब्ध विभिन्नता विचाराधीन परिस्थिति से भिन्न परिस्थिति ही से उत्पन्न हो सकती

है । उदाहरण के लिए यदि महाविद्यालय की लड़कियों के समूह की तुलना औद्योगिक विद्यालय के लड़कों से की जाए, तो इन दोनों प्रतिचयनों का चुनाव विभिन्न आधारों पर किया जाएगा । केवल यहीं बात ही नहीं कि दोनों समूह साधारण पुरुष और स्त्री वर्ग का प्रतिनिधित्व नहीं करते बल्कि यह भी है कि शिक्षण और सहसंबंधित चरों की दृष्टि से एक समूह तो स्त्रियों के वितरण के उच्च वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरा पुरुषों के वितरण के माध्य या उससे निम्न वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है । ये समूह केवल अप्रतिनिधिक ही नहीं तुलना के योग्य भी नहीं है ।

यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति गंभीरता से यह कह सकता है कि महाविद्यालय की लड़कियों तथा औद्योगिक विद्यालयों के लड़कों के परीक्षण निष्पादनों की विभिन्नता लिंग भेद के कारण है । ऐसे प्रतिचयनों में अन्य मामलों में भी तुलनीयता का अभाव स्पष्ट ही है। किंतु कभी कभी चयनात्मक कारक अपनी क्रियाशीलता में बड़े रहस्यमय होते हैं और बिना पता दिए विद्यमान रहते हैं । उदाहरण के लिए यह माना जा सकता है कि उच्च विद्यालयीन लड़के और लड़कियां तुलना के योग्य प्रतिचयन स्वरूप हैं । किंतु यह सत्य नहीं है । जिन लड़कों का विद्यालयीन अध्ययन ठीक नहीं है, वे लड़कियों की अपेक्षा अधिक संख्या में पढ़ाई बीच में छोड़कर काम में लग सकते हैं । इस प्रकार का चयनात्मक स्कूल त्याग उच्च विद्यालय की क्रमिक ऊंची कक्षाओं में लड़कों और लड़कियों में अनुपात तथा पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले छात्रों के विद्यालयीन रिकार्डों से प्रमाणित होता है । परिणामस्वरूप जो लड़के विद्यालय में रह जाते हैं वे लड़कियों की अपेक्षा शैक्षिकबुद्धि की दृष्टि से अधिक उच्च चयनात्मक समूह होता है । इस प्रकार के विभेदक चयन के कारण समूह के नाते विद्यालयी ऊंची कक्षा के लड़के उसी प्रकार के बुद्धि-परीक्षणों में वैसे ही उत्कृष्ट होंगे जैसे लड़कियां नीची कक्षा में लड़कों से श्रेष्ठ थीं । लिंग भेद में इस प्रकार की विपरीत स्थिति वर्षों के चयनात्मक स्कूल छोड़ने के एकत्रित प्रभाव से उत्पन्न होती है । इसी प्रकार का उदाहरण मानसिक रूप से विकृत व्यक्तियों की संस्थाओं के वेक्षण में मिलता है जिनमें पुरुष ही अधिक संख्या में होते हैं । यद्यपि इस स्थिति को पहले तो पुरुषों में मानसिक क्षीणता अधिक पाई जाने की संज्ञा दी गई, परंतु तत्पश्चात चयनात्मक प्रवश नीतियों को इसका कारण बताया गया । विविध सामाजिक और आर्थिक कारणों से समुदाय में बौद्धिक स्तरों के पुरुषों की तुलना में मानसिक रूप से विकृत स्त्रियां अधिक हैं ।

बुद्धि परीक्षणों पर विश्वव्यापी प्राप्तांक

लिंग भेद के अध्ययन के संबंध में बुद्धि परीक्षणों पर विश्वव्यापी प्राप्तांक का प्रयोग भ्रामक भी हो सकता है । अनेक बुद्धि परीक्षणों जैसे स्टेनफोर्ड-बिने परीक्षण जानबूझ कर ऐसे बनाए गए हैं जिनमें पूर्ण प्राप्ताकों में लिंग भेद को दूर रखा जाये और ऐसे एकांश भी न रखे जायें जिनमें किसी लिंग का पक्ष लिया गया हो । कुछ एकांश जो

लड़कियों के अनुकूल थे उनको ऐसे एकांशों से जो लड़कों के अनुकल थे समतुल्य कर लिया गया है। अतः यह तथ्य कि स्टेनफोर्ड-बिने परीक्षण के मानकीकृत प्रतिचयन में बुद्धि लब्धि में किसी प्रकार का सार्थक लिंग भेद नहीं पाया गया है इस बात का सूचक है कि प्रणाली का अनुसरण कितनी सर्तकता से किया गया था और बुद्धि में लिंग भेद का प्रभाव नहीं के बराबर होता है।

पारंपरिक पश्चिमी संस्कृति में मनोवैज्ञानिक परीक्षण सर्वेक्षणों ने अभिक्षमता और व्यक्तित्व विशेषकों के संबंध में स्त्रियों और पुरुषों के बीच औसत अंतर दर्शाया, है। पुरुष अधिकतर गति और कुल शारीरिक गतियों के समन्वय, स्थानिक अभिविन्यास, यांत्रिक बोध तथा गणितीय तर्क में उत्कृष्ट होते हैं और स्त्रियां हस्त निपुणता, प्रत्याक्षिक गति तथा सूक्ष्मता स्मृति, संख्यात्मक अभिकलन, शाब्दिक प्रभाविता और भाषा के कौशल वाले कार्यों में अधिक श्रेष्ठ होती हैं। व्यक्तित्व संबंधी भेदों में पुरुषों में अधिक आक्रामकता, उपलब्धि प्रेरणा तथा संवेगात्मक स्थिरता होती है जबकि स्त्रियों में सामाजिक अभिविन्यास कहीं अधिक होता है।

लिंग भेदों के अधिकांश अन्वेषण एक दी हुई संस्कृति में पुरुषों और स्त्रियों में स्थित भेदों के संबंध में ही आंकड़े प्रस्तुत करते हैं। इन भेदों के कारण सांस्कृतिक और जैविक कारकों की जटिल अन्योन्यक्रिया में ही ढूंढे जा सकते हैं। अधिकांश समाजों में लड़के और लड़कियों का लालन-पालन एक ही घर में रहते हुए भिन्न उपसंस्कृति में होता है। बहुत से मामलों में माता-पिता, अन्य प्रौढ़ व्यक्ति तथा समवयस्क उनसे भिन्न भिन्न प्रकार से व्यवहार करते हैं। उनकी वेषभूषा में भी भिन्नता होती है, उन्हें खेलने के लिए भिन्न खिलौने दिए जाते हैं और अधिकांश स्थितियों में उनसे भिन्न-भिन्न व्यवहार करने की आशा की जाती है। माता और पिता का व्यक्तित्व भी बच्चे के लिंग के अनुसार भूमिका ग्रहण करने की संकल्पना के विकास में महत्वपूर्ण होता है। विशेष संस्कृति में पुरुष और स्त्री को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसका आदर्शरूप माता-पिता ही प्रस्तुत करते हैं।

जविक दृष्टि में, प्रजनन क्रिया में स्त्री और पुरुष जो भिन्न-भिन्न भाग लेते हैं उनसे मनोवैज्ञानिक विकास में अनेक लिंग भेद उत्पन्न हो सकते हैं। अपेक्षाकृत अधिक यथार्थ रूप से यह प्रमाणित है कि बच्चे को गर्भ में धारण करने तथा उसके पालन-पोषण की लंबी अवधि जसे कारण जो जैविक दृष्टि से स्त्री के भाग में है, भि-रुचियों, अभिवृत्तियों, भावात्मक गुणों, व्यावसायिक उद्देश्यों तथा उपलब्धियों में लिंग भेद पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालते हैं। आक्रामकता और अधिकार भावना में लिंग भेद अधिकतर बड़े आकार के शरीर, शारीरिक शक्ति तथा पुरुषों की शारीरिक सहनशीलता के साथ-साथ पुरुष लिंग हारमोन से भी संबंधित है।

अन्य महत्वपूर्ण लिंग भेद लड़कियों के त्वरित विकास में पाया जाता है। यह ही नहीं कि लड़कियों में लड़कों की अपेक्षा यौवनारंभ जल्दी होता है बल्कि वे सभी शारीरिक गुणों में अपनी वयस्क स्थिति प्राप्त करने में भी आगे रहती हैं। इस विकासात्मक गति में लिंग भेद का मनोवैज्ञानिक प्रभाव सामान्यतः एक गुण से दूसरे गुण में भिन्न-भिन्न होता है। शैशवास्था में लड़कियों का त्वरित विकास उनके शीघ्र ही भाषा सीखने में एक महत्वपूर्ण कारक हो सकता है और समग्ररूप से उनका शाब्दिक विकास सबसे पहले प्रारंभ हो जाता है। इन उदाहरणों से यह पता चलता है कि लिंगों के बीच जैविक और सांस्कृतिक अंतरों के बीच अन्योन्यक्रिया होती है जिनसे उसकी अभिक्षमताओं, रूचियों तथा अन्य मनोवैज्ञानिक गुणों में पर्याप्त अंतर होता है।

जाति और संस्कृति

जाति की जैविक संकल्पना में वे जन समुदाय हैं जिनमें कुछ जीन की सापेक्ष आवृति में भिन्नता होती है। जातियां उस समय बनती हैं जब लोगों का एक समूह विशेष या तो भौगोलिक या सामाजिक कारणों से अपेक्षाकृत अलग हो जाता है जिससे उसके सदस्यों के अंतर्गत विवाह अधिक होता है और बाहरी व्यक्तियों से कम। यह अलगाव जो जैविक रूप से जाति बनाने में सहायक होता है, सांस्कृतिक विभेदों को भी जन्म देता है। इस प्रकार जिस जन समुदायों पर शोध करने में उनकी जातीय विभिन्नताओं पर प्रकाश डाला जाता है, उन्हीं समुदाओं के सांस्कृतिक पर्यावरण के विभेदों का भी अध्ययन किया जाता है। इन परिस्थितियों के अंतर्गत जातीय समूहों के बीच पाये जाने वाले क्षमता अथवा व्यक्तित्व गुण संबंधी अंतर पूर्णतः जातीय अथवा जीन कारकों के कारण नहीं हो सकते।

विभिन्न संस्कृतियों अथवा उपसंस्कृतियों में पहले व्यक्तियों के तुलनात्मक अनुसंधानों में मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के प्रयोग से कई समस्यायें उपस्थित होती हैं। इन कठिनाइयों के हलस्वरूप संस्कृति मुक्त परीक्षणों की रचना करने के प्रयास किए गये हैं। इनमें से 'लीटर इन्टरसेशनल परफोरमेंस स्केल', केहेल, का 'कल्चर फ्री टेस्ट ऑफ इन्टेलीजेंस' तथा 'रेव्हेन प्रोग्रेसिव मैट्रिसीस' सबसे अधिक प्रचलित हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि कोई परीक्षण वास्तविक रूप से संस्कृति मुक्त नहीं हो सकता। सांस्कृतिक शून्यता में परीक्षण की रचना असंभव है। फिर भी सैद्धांतिक रूप से ऐसे परीक्षणों की रचना संभव है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों में समनिष्ठ अनुभवों की ही पूर्वकल्पना की जा सके। ऐसा परीक्षण माना कि सांस्कृतिक प्रभावों से मुक्त न होगा, तथापि उसमें उन्हीं तत्वों का उपयोग होगा जो सभी संस्कृतियों में समनिष्ठ हैं। उपलब्ध "संस्कृति मुक्त" परीक्षणों का यही लक्ष्य है।

वास्तविक व्यवहार में कई बातों में ऐसे परीक्षण अपने निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति नहीं कर पाते। कोई भी विद्यमान परीक्षण अपने सांस्कृतिक संदर्भ में पूर्णतया असीमित नहीं है। "संस्कृति-मुक्त" परीक्षण और अन्य परीक्षणों में केवल मात्रा का ही अंतर है। कागज और कलम का प्रयोग अथवा अमूर्त कामों की प्रस्तुति जिनकी कोई उपयोगिता नहीं है अवश्य किन्हीं सांस्कृतिक समूहों के लिए साधक होगी और कुछ के लिए बाधक। इससे कुछ संस्कृतियों में तथा उपसंस्कृतियों में भेद उत्पन्न हो जाता है। ऐसे ही चित्र भी उन सांस्कृतिक समूहों के लिए अनुपयुक्त होंगे जो संकेतात्मक ड्राइंग से परिचित नहीं है। अन्य संगत कारकों में जो एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति में भिन्न हैं, परीक्षण की विषयवस्तु में वास्तविक रुचि, परीक्षक के साथ घनिष्ठता, परीक्षण में अच्छा करने की अभिप्रेरणा, दूसरों से श्रेष्ठ होने की इच्छा तथा व्यक्तिगत रूप से अथवा सामूहिक रूप से समस्याओं को सुलझाने की पुरानी आदतें सम्मिलित हैं।

जातीय समूह के बीच व्यावहारिक विभिन्नताओं की व्याख्या इस तथ्य से जटिल हो जाती है कि ऐसे समूह संस्कृति में भी भिन्न होते हैं। भौगोलिक और सामाजिक अलगाव का, जिससे जातीय विरचना होती है, सांस्कृतिक विविधता से भी संबंध है। पहले तो सांस्कृतिक कारणों से ही समूह का अलगाव होता है और किसी भी प्रकार के अलगाव से सांस्कृतिक विभिन्नता सुरक्षित रहती है और बढ़ती है। मनोवैज्ञानिक जातीय विभिन्नताओं के अनुसंधानकर्त्ता के सामने सदा यह प्रश्न बना रहता है कि उपलब्ध विभिन्नतायें कहां तक सांस्कृतिक कारकों द्वारा उत्पन्न होती हैं?

जनसंख्या विभिन्नताओं का विश्लेषण प्रयोगात्मक रूप से भी किया गया है जिनमें जैविक और सांस्कृतिक प्रभावों को पृथक किया गया है। इस उद्देश्य के लिए समिश्रण अथवा जातीय रूप से मिश्रित समूहों की परीक्षण निष्पत्ति का अन्वेषण किया गया। यह तर्क दिया गया कि जननिक कारणों से यदि एक जाति दूसरी जाति से बौद्धिक रूप से श्रेष्ठ है तो दोनों जातियों के मिश्रित बच्चे बुद्धि में न तो उच्च और न ही भिन्न होंगे। जननिक रूप से यह प्रक्कल्पना प्रश्नोचित है क्योंकि इससे त्वचा के वर्ण अथवा अन्य जातीय विशेषताओं को निर्धारित करने वाले और बुद्धि स्तर को निर्धारित करने वाले जीनों के बीच पूर्ण संबद्धता प्रदर्शित होती है। अपूर्ण संबद्धता से जातीय विशेषताओं और बुद्धि में सहसंबंध अंत: प्रजननता की कुछ संततियों में समाप्त हो जाता है। इस तथ्य से कि जातीय मिश्रण एक अथवा दोनों जातियों तथा जाति संस्करण में अत्यधिक सांस्कृतिक आत्मसातकरण की प्रवृति के कारण सामान्यत: चयनात्मक होता है, परिणाम और भी जटिल हो गए हैं। उन समूहों में जो प्रधान संस्कृति को आत्मसात करने में अधिक सामान्य होते हैं, परीक्षण प्राप्तांकों और जातीय मिश्रण के बीच सहसंबंध नगण्य होता है।

एक अन्य अध्ययन जातीय समूहों में आयु के अनुसार उनके तुलनात्मक परीक्षण निष्पादन में परिवर्तन होने से संबंधित है। कुछ अमरीकी निग्रो शिशुओं और प्राग्विद्यालयी बच्चों के अनेक अन्वेषणों से श्वेत लोगों के मानकों के संदर्भ में मानसिक मंदन बहुत कम अथवा बिल्कुल ही नहीं प्रकट हुआ। उन्हीं क्षेत्रों और उन्हीं समयावधियों में विद्यालय आयु के बच्चों पर किए गए परीक्षणों में बढ़ती आयु के साथ महत्वपूर्ण औसत मंदन दिखाई दिया। व्यापकरूप से परीक्षण मानकों के संबंध में आयु के साथ मंदन तभी प्रकट होता है जब परीक्षणों में उन बौद्धिक कार्यों की अपेक्षा की जाती है जो एक विशेष संस्कृति अथवा उप संस्कृति में नहीं कराये जाते।

तीसरा उपागम भिन्न-भिन्न पर्यावरणों में पली एक जाति के तुलनात्मक प्रतिचयनों पर आधारित है। सामान्यतः इन अध्ययनों से यह तथ्य प्रकट होता है कि परीक्षण निष्पादन के क्षेत्र में करीब-करीब समान अवस्थाओं में रहने वाले विभिन्न जातीय समूहों की तुलना में भिन्न-भिन्न पर्यावरणों में रहती हुई एक ही जाति के उप समूहों में व्यापक अंतर होते हैं। एक जातीय जनसंख्या में पाए जाने वाले क्षेत्रीय अंतर एक स्थान से दूसरे स्थान पर बस जाने से संबंधित न होकर सांस्कृतिक विभिन्नताओं से संबंधित हैं। यहां पर एक विशेष ऊर्ध्वाधर जांच के परिणामों का उदाहरण दिया जा सकता है जिसमें कुछ नीग्रो बच्चों को एक ऐसे क्षेत्र से जिसमें विद्यालय सुविधाएं बहुत कम थीं, अधिक सुविधाओं वालों क्षेत्र में भेजा गया। इन बच्चों के माध्य बुद्धि परीक्षण प्राप्तांकों में शैक्षिक रूप से अधिक समृद्ध परिवेश में निवास की अधिकाधिक अवधि के कारण महत्वपूर्ण वृद्धि दिखाई दी।

विभिन्न जातियों में मनोवैज्ञानिक अंतरों के वर्णनात्मक आंकड़ों की बहुलता होने पर भी इन विभिन्नताओं की उत्पत्ति पर अनुसंधान बहुत कम है और जो हैं उनमें प्रणाली संबंधी कठिनाइयां हैं। उपलब्ध ज्ञान के प्रकाश में केवल कुछ ही परिणाम विश्वसनीय रूप से निकाले जा सकते हैं। पहला परिणाम तो यह है कि विविध जातियों के स्थित मनोवैज्ञानिक अंतरों के लिए कोई भी जैविक आधार जाना नहीं जा सका। दूसरा, जातीय अध्ययनों और भेदक मनोविज्ञान में किए गए विविध अन्वेषणों से प्राप्त पर्याप्त प्रमाण जातीय समूहों में सामान्यतः पाई जाने वाली व्यवहारात्मक विभिन्नताओं को उत्पन्न करने में सांस्कृतिक कारकों की भूमिका को दर्शाते हैं। अंततः सभी मनोवैज्ञानिक विशेषकों में एक जाति के भीतर व्यक्तिगत भेदों का विस्तार भिन्न-भिन्न जातियों के बीच औसत अंतरों से अधिक है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से मनोवैज्ञानिक लिंग विभेदों पर निरंतर अनुसंधान होता रहा है। तथापि इस अनुसंधान के उद्देश्य और अभिविन्यास अनेकों बार परिवर्तित

हुए हैं। प्रारंभ में स्त्री अधिकारवादी आंदोलन ने इस प्रश्न पर रुचि दिखाई कि कौन अधिक बुद्धिमान है, पुरुष अथवा स्त्री। अधिकांश अन्वेषणकर्ताओं ने स्त्री और पुरुष की समानता के लिए वैज्ञानिक प्रमाण प्राप्त करने की आशा व्यक्त की। वर्ष 1928 तथा 1930 में जैसे-जैसे व्यक्तित्व तथा मानसिक योग्यताओं के विविध पक्षों के मापन की तकनीकों का विकास होता गया, अबौद्धिक विशेषताओं में पुरुष और स्त्री समूहों की अधिकारिक तुलना की गई। इस अवधि में मनोविश्लेषण उत्तरोत्तर प्रभावशाली होता गया। इसी समय फ्रायड के लेखों से प्रभावित व्यक्तित्व-संबंधी सिद्धांतों के निर्माताओं तथा उसके अनुगामियों ने यह पता लगाया कि लिंग संबंधी कोन से विभेदों की अनुसंधान द्वारा खोज की जानी चाहिए। इन अनुसंधानों के सामाजिक उद्देश्य तंत्रिकाताप की रोकथाम करना और स्त्री तथा पुरुष की भिन्न-भिन्न भावात्मक आवश्यकताओं और अभिव्यक्तिओं की जानकारी प्राप्त कर दोनों के बीच संबंधों में सुधार लाना है। बीसवीं शताब्दी के दूसरे चतुर्थांश के दौरान कुछ अन्वेषणकर्त्ताओं ने सामान्य पुरुषत्व और स्त्रीत्व के माप के लिए एक मापनी बनाने की आशा व्यक्त की। इस मापनी से एक ही लिंग के व्यक्तिओं में पुरुषत्व और स्त्रीत्व की मात्रा में सूक्ष्म रूप से भेद किया जा सकता था। उनका यह विचार था कि ऐसी मापनी के अनेक व्यावहारिक प्रयोग हो सकते हैं जैसे व्यक्तिओं का उचित व्यवसाय में नियतन और समलिंगकामी प्रवृत्तियों का निदान।

वर्ष 1950 के दौरान एक बार फिर एक विषय से दूसरे विषय पर बल दिए जाने में परिवर्तन हुआ। अन्वेषणकर्ता लिंग भूमिकाओं के प्रति अधिक जागरुक हो गये। एक छोटा बच्चा कब और कैसे भूमिकाओं के विषय में जानकारी प्राप्त करता है और उनके अनुसार अपनी पसंद और व्यवहार शैली का विकास करता है, ऐसे प्रश्न अधिक महत्वपूर्ण समझे गये। मनोविश्लेषणात्मक लेखों और अन्य प्रकार के व्यक्तित्व सिद्धांत में व्याख्यापित तादात्मीकरण की संकल्पना अनेक अनुसंधान प्रयत्नों का फोकस बन गई। इस अवधि में किए गए अनुसंधान का उद्देश्य मात्र लिंग विभिन्नताओं को समझना ही न था, बल्कि व्यक्तित्व विकास के इस उच्च दृश्यमान पक्ष के विषय में प्राप्त सूचना को विकासात्मक प्रक्रियाओं को समझने में संकेत स्रोत के रूप में प्रयोग कर व्यक्तित्व के अन्य पक्षों को उजागर करने में सहायक माना गया।

इन सभी अवधियों में एक सतत प्रश्न ने अनुसंधान रूचि को उत्तेजित किया, वह प्रश्न था—स्त्रियों की उपलब्धियां पुरुषों के समान क्यों नहीं हैं? विश्व में उत्कृष्ट महिला कलाकार, वैज्ञानिक अथवा राजमर्मज्ञ कम संख्या में क्यों हैं? जैसे-जैसे त्वरित सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं ने वह व्यावसायिक स्थिति उत्पन्न की जिसमें उच्च प्रशिक्षित व्यावसायिक व्यक्तियों की मांग अधिक होने लगी और अकुशल

कार्यकर्ताओं की मांग कम होने लगी, इस समस्या पर ध्यान देने की प्रमुख आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। योग्यताओं, व्यक्तित्व विशेषकों, भूमिकाओं और विकास में लिंग विभिन्नताओं पर किए गए सभी मुख्य अनुसंधान के परिणाम इस मामले पर प्रयोग किए गए।

योग्यताओं में लिंग विभेद

(1) बुद्धि—जैसे-जैसे वर्षों के अंतराल से मानसिक परीक्षण प्रक्रियाओं में परिष्करण होता गया, यह स्पष्ट ही प्रकट होने लगा कि अन्वेषणकर्ताओं द्वारा पूछे गए इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया जा सकता कि बुद्धि के क्षेत्र में पुरुष और स्त्री दोनों में से कौन श्रेष्ठ हैं। मापन की वर्तमान विधियां इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुई हैं। इस क्षेत्र में बहुत से अध्ययन किए गए जिनमें विद्यार्थियों को विषय बनाया गया। किन्हीं अध्ययनों में पुरुषों की श्रेष्ठता और किन्हीं में स्त्रियों की श्रेष्ठता और कुछ में दोनों में कोई विशेष अंतर नहीं पाया गया। इन विरोधी परिणामों का विश्लेषण करने से यह पता चला कि परीक्षित समूह में चयनात्मक कारकों के कारण ही विसंगतियां उत्पन्न हुई थीं। परन्तु अधिक महत्वपूर्ण विसंगतियां अन्वेषणकर्ताओं द्वारा प्रयोग किए गए बुद्धि परीक्षणों के प्रकार से संबंधित थीं। कुछ परीक्षणों में निरंतर लड़कियों को कुछ अधिक लाभ प्राप्त हुआ और किन्हीं में लड़कों का पक्षपात किया गया।

अनेक स्रोतों से इस विषय पर प्रमाण उपलब्ध होते गए कि सभी प्रकार के बुद्धि परीक्षण विशुद्ध जन्मजात क्षमता का माप न तो करते हैं और न ही कर सकते हैं। यद्यपि बौद्धिक सक्षमता में निसंदेह आनुवंशिक विभिन्नतायें होती हैं, हम व्यक्ति से प्रश्न पूछकर अथवा उसे कोई समस्या देकर उसका हल ढूढ़ने के लिए कह देने मात्र से उसकी परीक्षा करते हैं। ऐसी स्थिति में उसकी निष्पत्ति में प्राप्त होने वाले अनुभवों के साथ-साथ उसकी जन्मजात क्षमता की भी झलक मिलती है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि कुछ प्रश्नों और कार्यों में पुरुषों की श्रेष्ठता प्रकट होती है और किन्हीं में स्त्रियों की। ऐसे बुद्धि परीक्षण बनाने के लिए जो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान हों, लगभग दोनों ही प्रकार के एकांश समान संख्या में लिए जाते हैं। मैक्नेमर ने यह बताया कि स्टेनफोर्ड–बिने परीक्षण का टर्मन–मेरिल संशोधन का विकास करते हुए किस प्रकार उपर्युक्त का ध्यान रखा गया। जब इस प्रकार के परीक्षण को जनसंख्या का वास्तविक रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले तिप्रदर्श को दिया गया, सभी प्राप्तांकों अथवा बुद्धि-लब्धि में लिंग विभिन्नतायें नगण्य थीं। स्कॉटिश शिक्षा अनुसंधान परिषद् ने 1939 और 1949 में दो प्रमुख सर्वेक्षण किए जिनमें किन्हीं विशेष तिथियों में जन्मे देश के सभी बच्चों को परीक्षा के लिए चुना गया। परीक्षणों के परिणामों में समान माध्य बुद्धि-लब्धि प्रकट हुई और दूसरी बार लड़कों के पक्ष में चार पाइंट का अंतर पाया गया।

चार पाइंट का यह अंतर यद्यपि सांख्यिकी रूप से इतने अधिक बच्चों में महत्वपूर्ण है, परन्तु इस अंतर का कोई व्यावहारिक महत्व इसलिए नहीं है कि उसी सर्वेक्षण में दिए गए समूह परीक्षण में लड़कियों के पक्ष में दो पाइंट का अंतर पाया गया।

(2) शाब्दिक, आंकिक तथा देशिक योग्यताएं

स्त्री तथा पुरुष में से कौन अधिक बुद्धिमान है इस प्रश्न से अधिक सार्थक प्रश्न यह है कि कौन सी विशेष योग्यता किस लिंग के साथ जुड़ी हुई है। टर्मन और टायीलर (1954) ने इस समस्या पर किए गए अनुसंधानों का सार प्रस्तुत किया है।

शाब्दिक योग्यता—शाब्दिक या भाषागत क्रियाओं में स्त्रियों की उत्कृष्टता शिशु अवस्था से प्रौढ़ावस्था तक दृष्टि गोचर होती है। यह भिन्नता भाषा विकास के प्रत्येक पक्ष में पाई जाती है और विभिन्न अनुसंधानकर्ताओं द्वारा विशेष रूप से संगतरूप में प्रस्तुत की गई है। श्रेष्ठ तथा मंद बुद्धि बालकों पर किए गए अध्ययन से यह प्रदर्शित होता है कि औसतन लड़कियां लड़कों की उपेक्षा जल्दी बोलना प्रारंभ करती हैं। इसी प्रकार प्राग्विद्यालय आयु की लड़कियों का शब्द भंडार लड़कों की उपेक्षा अधिक होता है। एक अनुसंधान में प्रत्येक बालक के संबंध में पूर्ण शाब्दिक अनुक्रिया की दर प्रतिशत का निर्धारण किया गया। 18 मास की आयु में लड़कों की औसतन प्रतिशत 14 थी और लड़कियों की 38, 24 मास की आयु में वह लड़कों के लिए 49 और लड़कियों के लिए 18 थी। लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ शीघ्र ही वाक्यों का प्रयोग करती हैं और अधिक लंबे तथा अधिक परिपक्व वाक्यों की रचना भी करती हैं। पढ़ना सीखने में भी लड़कों की अपेक्षा लड़कियां अधिक तीव्र प्रगति करती हैं।

लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ स्पष्ट उच्चारण में भी जल्दी परिपक्वता प्राप्त करती हैं। पहली विद्यालयी कक्षा की लड़कियों की स्पष्ट उच्चारण प्रणाली दूसरी कक्षा के लड़कों के प्रायः बराबर होती है। शारीरिक विकास में लड़कियों का त्वरण कदाचित उनके स्पष्ट उच्चारण की अपेक्षाकृत तीव्र प्रगति का कारण है। इससे इन्हें भाषा के सभी पक्षों में अधिकार प्राप्ति के लिए अत्यंत शक्तिशाली प्रारंभिक सुविधा मिल जाती है। विकासात्मक दर में इस प्रकार का विभेद लड़कों में पढ़ने की अयोग्यता, तुतलाना, हकलाना तथा अन्य भाषा संबंधी विकारों की अपेक्षाकृत अधिक आवृत्ति का कारण हो सकता है। स्त्री और पुरुष के तुतलाने में अनुपात 2 : 1 से लगाकर 10 : 1 तक है। पढ़ने से संबंधित दोषों के संदर्भ में 17 समूहों के सर्वेक्षण में लड़कों की दर प्रतिशत में 60 से 100 तक अंतर रहा। यदि भाषण और पढ़ने में लड़कों के समक्ष कोई ऐसा मानदंड रखा जाये जिसे वे शारीरिक रचना की दृष्टि से पूर्ण करने में असमर्थ हैं तो भाषागत परिस्थितियों में लड़कियों की अपेक्षा वे अधिक असफलता और घबराहट का अनुभव करते हैं।

84-M/P(N)610MofE&C=16

संपूर्ण प्रारंभिक और उच्च विद्यालयीन स्तरों पर लड़कियां शाब्दिक क्रियाओं के अनेक पक्षों में अपनी उत्कृष्टता बनाये रखती हैं। चौथी से बारहवीं कक्षाओं में भाषागत विकास के एक अनुसंधान में 492 लड़कों और 514 लड़कियों को रुचिकर निर्धारित विषय पर एक लेख लिखने को कहा गया। उसी समयावधि में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों ने अधिक लम्बे लेख लिखे। प्राथमिक विद्यालय के लड़कों ने लड़कियों द्वारा प्रयुक्त शब्दों के 86 प्रतिशत शब्दों का प्रयोग किया और उच्च विद्यालयीन लड़कों में 83 प्रतिशत। लड़कियां साधारणतया पठन की गति में भी श्रेष्ठ होती हैं और विरोधी शब्द, तुलना, वाक्य पूर्ति, कहानी पूर्ति और वाक्य पृथक्करण जैसे परीक्षणों में भी श्रेष्ठ होती है। पृथक शाब्दिक परीक्षणों का प्रयोग करने वाले अनुसंधानों से तथा बौद्धिक परीक्षणों पर परीक्षण प्राप्तांकों से संगत आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं। कई साधारण बुद्धि परीक्षणों में लड़कियों की सर्वश्रेष्ठ उत्कृष्टता आंशिक रूप से ऐसे परीक्षणों में शाब्दिक सामग्री के प्रधान्य से उत्पन्न होती है।

आधुनिक समय में विकसित परीक्षणों के साथ शाब्दिक क्रियाओं में लिंग का अपेक्षाकृत सूक्ष्म विश्लेषण करने की संभावना हो गई है।

थर्स्टन की प्रधान मानसिक योग्यताओं के आधार पर उच्च विद्यालयीन आयु-समूहों के अनुसंधानों से शब्द प्रवाह (डब्ल्यू) में लड़कियों के पक्ष में एक सार्थक अंतर प्रदर्शित हुआ, किन्तु शाब्दिक समझ (वी) में नहीं, जिसमें लिंग-भेद नगण्य पाए गए। अतः यह प्रमाणित है कि शब्द प्रवाह तथा ऐसे कामों में जिनमें भाषा के तंत्र का अधिकार निहित होता है, लड़कियां अधिक सफल होती हैं और शब्द भंडार, शाब्दिक समझ तथा शाब्दिक तर्कणा परीक्षणों में वे इतना अच्छा नहीं करतीं।

आंकिक योग्यता

आंकिक योग्यता को जब गणन कौशल के रूप न लेकर तर्क अथवा समस्या-समाधान के रूप में लिया जाता है तब पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा निरंतर अधिक प्राप्तांक प्राप्त करते हैं। 1951 के स्टेनफोर्ड-बिने में गणित, तर्कणा, चातुर्य तथा आगत (जिसमें एक साधारणीकृत आंकिक नियम निकाला जाता है) परीक्षणों में लड़के सार्थक रूप से उत्कृष्ट होते हैं। माध्यमिक उच्च तथा महाविद्यालयीन स्तरों पर अधिकांश सामूहिक बुद्धि परीक्षणों के अंतर्गत तर्कणा और अंक माला पूर्ति जैसे परीक्षणों में लड़के ही उत्कृष्ट होते हैं।

विद्यालयीन ऊंची कक्षा के छात्रों के अनुसंधान में कोस्टिक ने यह परिमाण प्राप्त किए कि नई परिस्थितियों के प्रति कौशल और ज्ञान के प्रयोग अथवा स्थानांतरण

की योग्यता में लड़के उत्कृष्ट थे। यह सही था कि बुद्धि, पूर्व ज्ञान, पठन योग्यता, अभ्यास का प्रभाव तथा किन्हीं व्यक्तित्व गुणों जैसे कारकों को नियमित किया गया था। उच्च विद्यालयीन तथा महाविद्यालयीन छात्रों पर किए गए अनुसंधानों में भी प्रशिक्षण के स्थानांतरण में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की श्रेष्ठता का समर्थन हुआ है।

व्यावसायिक सक्षमता

व्यावसायिक मनोवैज्ञानिकों ने यह पाया है कि विशेष प्रकार के कार्य के लिए क्षमता परीक्षाओं में किन्हीं में स्त्रियां उत्कृष्ट होती है और किन्हीं में पुरुष, जैसे लिपिक क्षमता तथा निपुणता परीक्षणों में स्त्रियों तथा यांत्रिकी क्षमता में पुरुष उत्कृष्ट होते हैं। कला और संगीत की क्षमता परीक्षाओं में स्त्रियां उच्च प्राप्तांक प्राप्त करती हैं। ऐसा इस कारण भी हो सकता है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियां कला और संगीत के पाठों में अधिक भाग लेती हैं।

संगीतात्मक प्रतिभा की सीशोर मापनी में जिनमें सरल श्रवणगत पहचान और स्मृति का मापन होता है, कोई सार्थक लिंगभेद नहीं पाये गये। कुछ अधिक परीक्षणों में, जिन में सौन्दर्य बोध पर अधिक जोर दिया गया है, प्राप्तांक स्त्रियों के पक्ष में निकले।

योग्यता में अंतरों की दोषपूर्ण व्याख्या से बचने के लिए दो सामान्य परिणामों को ध्यान में रखना चाहिए। पहला तो यह कि ऐसी सभी तुलनाओं में दोनों लिंगों के वितरणों के बीच परस्पर व्याप्ति की बहुत बड़ी मात्रा होती है। किसी रोजगार में लगाने, व्यावसायिक स्कूलों तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में दाखिला देते समय, किसी प्रकार का व्यावहारिक निर्णय लेते समय स्त्री अथवा पुरुष इस पर ध्यान न देते हुए व्यक्ति की स्वयं की योग्यता पर निर्भर होना चाहिए। व्यक्तिगत विभेद लिंग विभेदों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण हैं। भिन्न-भिन्न आयु पर लिंग समूहों की तुलना से प्राप्त दूसरा परिणाम यह है कि योग्यता में विविध प्रकार के अंतर प्रारंभिक स्कूल से पहले नहीं दिखाई देते। उदाहरण के लिए गणितीय योग्यता के संबंध में किंडरगार्टन तथा प्राथमिक विद्यालय में लड़कियां, लड़कों की तरह ही गिनने और अंकों को पहचानने में योग्य होती हैं। लिंग विभिन्नतायें शिक्षा के बढ़ने पर ही प्रकट होती है, चाहे यह सहशिक्षा ही क्यों न हो।

संज्ञानात्मक शैली

अनुसंधान की एक दिशा ने संज्ञानात्मक शैली में महत्वपूर्ण लिंग विभेद का पता लगाया है। विटकिन तथा अन्यों (1954) ने यह पाया कि स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा

उस दृश्य क्षेत्र को अस्वीकृत करने में कम योग्य होती हैं जिसमें वह प्रत्याक्षिक पैटर्न निहित होता है जिसे वे समझने का प्रयत्न कर रही हैं । यह अंतर इस परीक्षण में अधिक पाया गया जिसमें विषय को एक टेढ़े कमरे में एक टेढ़ी कुर्सी को सीधा करने के लिए कहा गया और इस प्रकार गति संवेदी संकेतों को दृश्य विकर्षणों से पृथक करने को कहा गया, यह विभेद दृश्य निहित आकृति परीक्षण में भी स्पष्ट रूप से पाया गया। यह प्रवृति जिसे विटकिन ने क्षेत्र निर्भरता का नाम दिया व्यक्तित्व विशेषताओं से संबंधित है। ऐसी व्यक्तित्व-विशेषताओं वाले व्यक्ति अपने पर्यावरण का सामना सक्रिय रूप से न करके निष्क्रिय स्वीकृति प्रदान करते हैं। सैंडस्ट्रोम (1953) ने इसी प्रकार की घटना का ब्यौरा दिया है। स्त्रियां बिल्कुल अंधेरे कमरे में प्रकाश से जगमगाते हुए बिन्दु की सही स्थिति बताने में पुरुषों की अपेक्षा कम यथार्थ अथवा परिशुद्धता प्रकट करती है और पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्थिति भ्रांतिपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करती हैं। समस्या समाधान प्रयोगों में समस्यापूर्ण स्थिति को पुनः गठित करने में स्त्रियों द्वारा अनुभव की गई कठिनाइयों में भी क्षेत्र निर्भरता का कारक ही निहित होता है।

अभिरुचि, अभिप्रेरणायें तथा व्यक्तित्व

सभी प्रमाण इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि स्त्री और पुरुष जीवन के प्रति अपनी सामान्य वृत्तियों में व्यापक रूप से भिन्न होते हैं।

अभिरुचियां तथा मूल्य

स्ट्रॉंग ने अभिरुचि संबंधी विभेदों का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। उसके निष्कर्षों का इसी विषय में किए गए अन्य अनुसंधानों में समन्वय किया गया। पुरुष निम्नलिखित प्रकार के अभिरुचि मदों को स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पसंद करते हैं : (1) यांत्रिक और वैज्ञानिक क्रियायें; (2) श्रमसाध्य तथा जोखिम वाले कार्य ; (3) विधि, राजनैतिक तथा सेना से संबंधित व्यवसाय ; (4) विक्रय; (5) कुछ विशेष प्रकार के मनोरंजन जैसे सिगरेट पीना तथा शतरंज खेलना; (6) अन्य फुटकर कार्य जैसे घर के अंदर के कार्यों की अपेक्षा घर के बाहर के कार्य तथा दूसरों के अधीन नौकरी करने की अपेक्षा स्वयं रोजगार। स्त्रियों की रुचियां निम्नलिखित मदों में पाई गईं : (1) संगीतात्मक, कलात्मक क्रियायें; (2) साहित्यिक क्रियायें; (3) विशेष प्रकार के व्यक्ति जैसे दुर्भाग्यपूर्ण तथा हीन ; (4) विशेष प्रकार के मनोरंजन जैसे भविष्य बतलाना, वस्त्र संबंधी बातें तथा सामाजिक समस्या वाले चलचित्र ; (5) क्लेरिकल कार्य ; (6) अध्यापन; (7) सामाजिक कार्य, (8) वाणिज्य वस्तु अर्थात दुकानों को देखना तथा सजी सजाई वस्तुओं को देखना आदि। स्ट्रॉंग ने इन विभेदन मदों को लेकर एक व्यावसायिक रुचि प्रश्नावली का निर्माण किया जिससे पुरुषत्व-स्त्रीत्व की मापनी तैयार की गई।

स्ट्रॉंग वोकेशनल इंटरेस्ट ब्लक के आधार पर भी पुरुष और स्त्रियों के बीच व्यवसाय से संबंधित सामान्यतया ऐसे ही भेद पाये गए। उदाहरण के लिए महिला चिकित्सक अथवा जीवन बीमा महिला विक्रेता पुरुष चिकित्सक अथवा जीवन बीमा पुरुष विक्रेता के अधिक समान होती हैं, गृहस्थ नारियों के समान नहीं। ऑलपोर्ट वर्नन लिडजे मूल्यों के अनुसंधान के आधार पर भी सार्थक लिंग भेद उपलब्ध हुए हैं। सौंदर्यात्मक, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों में स्त्रियों की अनुक्रियाओं की दर सर्वाधिक है। इससे यह प्रकट होता है कि कलात्मक अनुभूतियों का आस्वादन, अन्य लोगों के कल्याण के प्रति चिंता तथा आध्यात्मिक मूल्यों पर बल स्त्रियों के जीवनादर्शों में सापेक्षतया अधिक महत्वपूर्ण हैं। पुरुष का पार्श्वचित्र सैद्धांतिक, आर्थिक और राजनैतिक मूल्यों में ऊंचा दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार का पार्श्वचित्र अमूर्त ज्ञान और समझ, व्यवहारगत सफलता के प्रति प्रेरणा तथा दूसरों पर प्रतिष्ठा की इच्छा की रुचि इंगित करता है। यद्यपि ये सब लिंग भेद सांख्यिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है, तथापि वे कोई अधिक नहीं हैं और साथ ही इनमें परस्पर व्याप्ति भी बहुत अधिक है।

बच्चों का अध्ययन

बच्चों की रुचियों और अभिवृत्तियों का अध्ययन करने में यह पाया गया कि उनमें भी लिंग भेद व्यापक रूप से होता है। खेलों की प्रवृत्तियों के विस्तृत सर्वेक्षणों से ये प्रकट होता है कि लड़के बहुधा सक्रिय सबल खेलों में, ऐसी क्रियाओं में जिसमें शारीरिक चपलता और कौशल निहित है तथा उच्चकोटि के संगठित और प्रतिद्वन्द्वात्मक खेलों में प्रवृत्त होते हैं। लड़कियों के खेल अधिक बैठने के, रूढ़िगत और काम के विस्तार में सीमित होते हैं। पठन, चलचित्र और रेडियो कार्यक्रमों में लड़कों को रोमांचकारी कार्य, प्रवास तथा खोज अधिक प्रिय है, लड़कियों को प्रेम और रोमांस की कहानियां, बच्चे, पारिवारिक जीवन सर्वाधिक प्रिय हैं। उच्च विद्यालयीन छात्रों के व्यवसायात्मक चुनावों से यह प्रकट होता है कि लड़के ऐसे व्यवसाय चाहते हैं जिनमें धन हो, लाभ हो तथा स्वतंत्रता हो और लड़कियां व्यवसाय के रोचक अनुभवों तथा समाज सेवा को अधिक मूल्य प्रदान करती हैं। विद्यालय में वादविवाद तथा पठन सेवा के लिए जिन "जीवन चिंतन के क्षेत्रों" को उच्च विद्यालयीन छात्रों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया है उनकी तुलना करने पर लिंग भेद पाये गये जिनमें किशोरावस्था के उत्तर भाग में बुद्धि पाई गई। लड़कों ने शारीरिक स्वास्थ्य, सुरक्षा तथा पैसे संबंधी वाद-विवाद को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया और यौन संबंधों में अधिक खुली रुचि प्रदर्शित की। लड़कियां व्यक्तिगत आकर्षण, व्यक्तिगत दर्शन, दैनिक कार्यक्रम की योजना, मानसिक स्वास्थ्य, शिष्टाचार, व्यक्तिगत गुणों तथा घर और पारिवारिक संबंधों के प्रति अधिक चिंताशील प्रकट हुईं।

अभिप्रेरणा

लिंग भेद का एक व्यापक अनुसंधान क्षेत्र उपलब्धि अभिप्रेरणा है जिस पर मौक्युलैंड, एटकिंसन तथा उनके सहयोगियों ने कार्य किया है। इन अनुसंधानों में व्यक्तियों में उपलब्धि आवश्यकताओं को प्रेरित करने वाली विशिष्ट निर्मित परिस्थितियों के परिवेश में "बुद्धि" परीक्षण लेने के पूर्व तथा पश्चात् कुछ चित्रों के प्रति अनुक्रियास्वरूप कहानियां लिखीं। इन कहानियों में, जिनका मूल्यांकन उपलब्धि अभिप्रेरणा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से किया गया था, परीक्षण के अनुभवोपरांत पुरुषों में सार्थक परिवर्तन प्रदर्शित हुए किंतु स्त्रियों में नहीं। किंतु पूरक प्रयोगों द्वारा यह बताया गया कि जब अंतरिम अनुभव से बौद्धिक स्वीकरण योग्यता के बजाये सामाजिक स्वीकरण योग्यता को चुनौती मिली, तो महिलाओं में उपलब्धि अभिप्रेरणा सार्थक रूप से परिवर्तित हुई परंतु पुरुषों में नहीं। इन से यह परिलक्षित होता है कि उपलब्धि अभिप्रेरणा का विचार लक्ष्य के प्रकार के संदर्भ में किया जाना चाहिए।

स्त्री और पुरुष जोखिम उठाने की क्षमता में भी विभिन्नता प्रदर्शित करते हैं। कोगन तथा वैलेच के अनुसार पुरुषों की तुलना में स्त्रियां कम जोखिम उठाने के लिए तैयार होती हैं। परन्तु इन लेखकों ने अपने कुछ प्रयोगों में यह भी पाया है कि कार्य अथवा स्थिति की प्रवृत्ति में परिवर्तन होने तथा व्यक्तित्व के विशेष गुणों जैसे दुश्चिंता तथा रक्षा संबंधी प्रवृत्ति के अनुसार इस संदर्भ में स्त्री और पुरुष में परिवर्तन होते रहते हैं।

भावात्मकता

बहुत से स्रोतों से यह अधिकांशतः प्रमाणित होता है कि स्त्री और पुरुष दोनों अपनी भावनात्मक आवश्यकताओं की सामर्थ्य तथा उनकी अभिव्यक्तियों में भिन्न होते हैं। केलिफोर्निया गाइडेंस अध्ययन (1929) के अंतर्गत 3 से 13 वर्षीय बच्चों में विभिन्न प्रकार के समस्यागत व्यवहार की घटनाओं में सार्थक लिंग भेद पाये गए थे। लड़कों में बहुधा अतिसक्रियता, ध्यान आकर्षित करने वाला व्यवहार, जलन, प्रतिद्वंद्विता, असत्यभाषण, मिल बांट कर खाने में स्वार्थ, क्रोध और चोरी प्रदर्शित हुई। लड़कियों में अंगूठा चूसना, झेंपना, खाने के संबंध में नखरे करना, डरना, भयभीत रहना, अतिसंवेदनशील और उदासी तथा भावदशा में परिवर्तन प्रदर्शित हुए।

एक भावात्मक विशेषता जिसके विषय में व्यापक रूप से प्रमाण उपलब्ध है वह है अग्रर्षिता। हमारी संस्कृति में अग्रर्षिता में लिंग भेद बाल्यावस्था से ही प्रदर्शित होता है। बालवाड़ियों के तथा प्राग्विद्यालयीन बच्चों पर किए गए अनुसंधानों से यह प्रदर्शित हुआ है कि लड़कियों की अपेक्षा लड़के अधिक क्रोध, अग्रर्षिता, विनाश भावना तथा लड़ाई-झगड़ा करने का व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। 150

प्राग्विद्यालयीन बच्चों पर की गई खोज में सीयर्स ने गुड़ियों के खेल का निरीक्षण किया जिनमें गुड़ियां एकदम घरेलू वातावरण में पारिवारिक सदस्यों का प्रतिनिधित्व करती थीं। इस प्रकार इन खेल-सामग्रियों का प्रयोग प्रशिक्षण तकनीकों के रूप में किया गया, जिनके द्वारा बच्चों को अपनी भावनाओं को प्रकट करने का एक अवसर प्राप्त हुआ। इस परिस्थिति में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों ने सार्थक रूप से अधिक अग्रघर्षिता न केवल प्रकट ही की किंतु शारीरिक हानि के रूप में भी उन्होंने अग्रघर्षिता प्रकट की, जबकि लड़कियों ने केवल शाब्दिक अथवा अन्य प्रतीकात्मक अग्रघर्षिता का ही आश्रय ग्रहण किया। विनाश करने की इच्छा में भी लिंग भेद उन प्रश्नावलियों के आंकड़ों के विश्लेषण में उपलब्ध हुए थे जो महाविद्यालयीन छात्रों द्वारा अपने बचपन की ध्वंसकारी घटनाओं की स्मृतियों पर आधारित थीं।

निरंतर बने रहने वाले लिंग भेद का एक अन्य क्षेत्र समाजोन्मुखता है। इस विषय में किए गए अनुसंधानों से यह प्रकट होता है कि वास्तव में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां कोई अधिक सामाजिक व्यवहार नहीं करतीं, यद्यपि सामाजिक होने की इच्छा उनमें अधिक प्रबल होती है। स्त्रियों में सामाजिक रुचियों की खुली अभिव्यक्ति अधिकतर भीरुता और आत्मविश्वास के अभाव तथा विशिष्ट रूप से संस्कृति द्वारा निर्धारित प्रतिबंधों के कारण होती है। एक अन्य क्षेत्र जिसके अंतर्गत विस्तृत लिंग भेदों का विवरण प्रस्तुत किया गया है तंत्रिकातापवाद है। बर्नरायटर व्यक्ति सूची के आधार पर महाविद्यालयीन छात्रों की अपेक्षा छात्राओं में सार्थक रूप से अधिक तंत्रिकातापी लक्षण प्रस्तुत हुए। उसी सूची के आधार पर पुरुषों में अपेक्षाकृत अधिक प्रभुत्वमय, आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी अभिवृत्तियों पर सार्थक प्राप्तांक मिले। वुडवर्थ मैथ्यूज परीक्षण के आधार पर 10 वर्ष की आयु में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में तंत्रिकातापी लक्षणों की बड़ी माध्य संख्या प्रस्तुत हुई। बढ़ती हुई आयु के साथ लड़कियों में लक्षणों की माध्य संख्या में वृद्धि की प्रवृत्ति परंतु लड़कों में कम होने की प्रवृत्ति परिलक्षित हुई। 14 वर्ष की आयु के पश्चात् यह लिंग भेद आयु के साथ सामाजिक दबावों की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई विभिन्नता है।

विभेदों का संक्षेप

अपने व्यापक अनुसंधानों के आधार पर बेनट और कोहन (1959) ने पुरुष और स्त्री के बीच विभेदों को निम्नलिखित पांच सामान्य सिद्धांतों के अंतर्गत विभाजित किया है। व्यक्तित्व संबंधी विभेदों पर किए गए अनुसंधानों में यह विभाजन ठीक बैठता है। सामान्य सिद्धांत इस प्रकार हैं :—

1. पुरुष की विचार प्रक्रिया स्त्री की विचार प्रक्रिया से कम गहन होती है।

2. पुरुष की विचार प्रक्रिया स्व की ओर अधिक उन्मुख होती है जबकि स्त्री के विचार पर्यावरण अथवा परिवेश की ओर उन्मुख होते हैं।

3. पुरुष पुरस्कार और दंड को अपनी पर्याप्तता अथवा अपर्याप्तता से निर्धारित करता है जबकि स्त्री के विचारानुसार पुरस्कार और दंड परिवेशीय भिन्नता अथवा उदंडता का परिणाम होते हैं।

4. पुरुष के विचार अपनी व्यक्तिगत उपलब्धि से अधिक संबंधित होते हैं, स्त्री की इच्छा सामाजिक स्नेह अथवा मित्रता प्राप्त करने की होती है।

5. पुरुष के विचार प्रतियोगितापूर्ण समाज के प्रति अग्रघर्षी क्रियाकलापों को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं जबकि स्त्री के विचारानुसार मित्रतापूर्ण और सुखद परिवेश में बिना किसी अवरोध के स्वतंत्रता का अनुभव करना अधिक महत्वपूर्ण है।

व्यक्तित्व के पुरुषत्व-स्त्रीत्व माप

इधर कुछ वर्षों से लिंग भेद के एक दृष्टिकोण का अधिक से अधिक प्रयोग किया जा रहा है, वह है स्त्री और पुरुषों की उन अनुक्रियाओं में तुलना जो हमारी वर्तमान संस्कृति में प्रत्येक लिंग की अपनी निजी विशेषताएं हैं। लिंगों की अनुक्रियाओं के बीच अंतर पहचानने की उनकी योग्यता के आधार पर विषयों का चयन किया जाता है। उदाहरण के लिए यदि 30 प्रतिशत पुरुष तथा 29 प्रतिशत स्त्रियां यह कहें कि वे आधुनिक कला के प्रेमी हैं तो इस विषय को अलग कर दिया जाएगा क्योंकि यह दोनों लिंगों में भेद नहीं करता। केवल वे ही विषय सुरक्षित किए जाते हैं जिनके अंतर्गत स्त्री-पुरुषों में सार्थक विभिन्न अनुपात दिखाई देता है। परिणामस्वरूप जो परीक्षण उपलब्ध होता है उससे 'पुरुषत्व-स्त्रीत्व' का एक अभिसूचक इस अर्थ में प्रस्तुत होता है कि यह हमारी संस्कृति में विशिष्ट पुरुष और स्त्री की अनुक्रियाओं को प्रतिबिंबित करता है। इस दृष्टिकोण का उदाहरण टर्मन और माइल्स द्वारा विकसित अभिवृत्ति रुचि-विश्लेषण में तथा स्ट्रांग वोकेशनल इन्टरैस्ट ब्लैंक, दि मिनेसोटा मल्टीफैजिक पर्सनलिटी इन्वैन्टरी-जिमरमन, टैंपरामैंट सर्वे तथा ग्राफ फैमीनिनिटी स्केल जैसे परीक्षणों के आधार पर पुरुषत्व-नारीत्व प्राप्तांकों में भिन्नता है। अभी हाल में ही बच्चों पर तथा प्रौढ़ों पर प्रयोग करने के लिए पुरुषत्व-स्त्रीत्व के प्रक्षेपण परीक्षणों को विकसित करने के प्रयास किए गए हैं।

जनसाधारण में पुरुषत्व-स्त्रीत्व का सार्थक संबंध शिक्षण और उद्यम में पाया गया है। यह भी पाया गया कि बहुत अधिक मेधावी और उच्च शिक्षण प्राप्त स्त्रियों को अपने लिंग के मानदण्डों की अपेक्षा अधिक पुरुषवत प्राप्तांक मिलते हैं। अथवा जिन स्त्रियों

का नाम कौन-कौन है की सूची में है अथवा जिनके पास एम. डी. अथवा पीएच. डी. उपाधि है, वे पूर्ण प्राप्तांकों में किसी भी व्यावसायिक समूह से औसतन अधिक पुरुषवत होती हैं। इसी प्रकार जो पुरुष कलात्मक तथा सांस्कृतिक प्रकृति की उपव्यवसायात्मक रुचियों को बढ़ा लेते हैं उनमें अधिक स्त्रीत्व प्राप्तांक पाने की प्रवृत्ति होती है।

पुरुषत्व-स्त्रीत्व प्राप्तांकों और शारीरिक गुणों के बीच सहसंबंध सामान्यतः कम और सार्थक होते हैं। जो कुछ भी सह संबंध पाय गये हैं वे कदाचित छिपे हुए जैविक कारकों के परिणाम होने के बजाये कतिपय शारीरिक विशेषताओं के सामाजिक प्रभावों के परिणाम हैं। उदाहरण के लिए लम्बे पुरुषों तथा मोटी आवाज वालें पुरुषों में सापेक्षित रूप से अधिक पुरुषवत लक्षण पाये जाने की कुछ प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार के सह संबंध से व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर सामाजिक रूढ़ि का प्रभाव ही परिलक्षित होता है। पुरुष समलिंग कामियों के अनुसंधानों से भी यह पता लगता है कि समलिंग कामी व्यवहार के लिए शरीर रचना मूलक कारकों की बजाये प्रधानतया अनुभावात्मक कारक ही जिम्मेवार है। इस संबंध में प्रारम्भिक घरेलू परिवेश तथा व्यक्ति के प्रति माता-पिता की अभिवृत्ति ही विशेष महत्व की बात है।

पुरुषत्व-स्त्रीत्व मापनी इस पारिवारिक परिवेश पर निर्भर होती है जिसमें व्यक्ति का पालन होता है। माता अथवा पिता की मृत्यु, माता अथवा पिता के साथ द्वन्द्वपूर्ण संबंध, भाईयों और बहनों की अधिकता जैसे कारक शारीरिक गुणों की पुरुषत्व-स्त्रीत्व प्राप्तांकों से कहीं अधिक घनिष्ठ संबंध रखते हैं। इसके अतिरिक्त इस बात के भी प्रमाण हैं कि पुरुष और स्त्री दोनों में विरोधी लिंग के मानदंड के प्रति विचलन का संबंध दुःखमय और अवांछनीय बाल्यकालीन अनुभवों, टूटे परिवारों तथा माता-पिता के कुसमंजन से भी है। इसके विपरीत सुखी आनन्दमय बाल्यकाल से किसी भी व्यक्ति को इस बात के लिए प्रोत्साहन मिलता है कि वह उसकी संस्कृति द्वारा प्रस्तुत पुरुष और स्त्री के उपयुक्त व्यवहार के आदर्श को स्वीकार करे। यह तथ्य कि ऐस परीक्षणों द्वारा मापित लिंग भेद सांस्कृतिक प्रतिरूपों द्वारा निर्धारित होता है हार्लंड द्वारा उपलब्ध निष्कर्षों से परिलक्षित होता है। जब व्यक्तियों को दिए गए टर्मन-माइल्स एटीट्यूड-इंटरैस्ट अनालिसिस टैस्ट के अनुवाद से यह परिलक्षित हुआ कि उस देश में कुछ थोड़े से ही मल विषयों के अंतर्गत पुरुष और स्त्री के बीच सार्थक भिन्नता उपलब्ध हुई।

व्यक्तित्व का गठन

मनोवैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधानों के परिणामों में यह पाया कि पुरुष और स्त्री प्रतिदर्शों (नमूनों) में चर एक दूसरे से भिन्न होते हैं। प्रायः चरों के बीच सह संबंधों

समजातीयता	homogeneity
समन्वेषी	exploratory
समरूप यमज	identical twins
समस्थिति	homeostasis
समाकलित परिमेय सूचकांक	integral rational indices
समानता	equivalence
समाजमिति	sociometry
समुच्चयी सिद्धांत	set theory
समुच्चय प्रभाव	cummulative effect
सातत्य	continuity
सातत्यक	continum
सारणीयन	tabulation
साहचर्य समूहन	associative clustering
सीखने का अंतरण	transfer of learning
सौकर्य	facilitation
स्तन्य त्याग	weaning
स्थान विनिमय	transposition
स्थानापन्न	substitute
स्फूर्ति परीक्षण	agility test
स्वचालन सिद्धांत	automata theory
स्वनिम	phoneme
स्वर गुण	vowel quality
स्वराघात	pitch
स्वस्थितिग्राही	proprioceptive
स्व सीखना	auto learning
हरात्मक माध्य	harmonic mean

का नाम कौन-कौन हैं की सची में है अथवा जिनके पास एम. डी. अथवा पीएच. डी. उपाधि है, वे पूर्ण प्राप्तांकों में किसी भी व्यावसायिक समूह से औसतन अधिक पुरुषवत होती हैं। इसी प्रकार जो पुरुष कलात्मक तथा सांस्कृतिक प्रकृति की उपव्यवसायात्मक रुचियों को बढ़ा लेते हैं उनमें अधिक स्त्रीत्व प्राप्तांक पाने की प्रवृत्ति होती है।

पुरुषत्व-स्त्रीत्व प्राप्तांकों और शारीरिक गुणों के बीच सहसंबंध सामान्यतः कम और सार्थक होते हैं। जो कुछ भी सह संबंध पाय गये हैं वे कदाचित छिपे हुए जैविक कारकों के परिणाम होने के बजाये कतिपय शारीरिक विशेषताओं के सामाजिक प्रभावों के परिणाम हैं। उदाहरण के लिए लम्बे पुरुषों तथा मोटी आवाज वालें पुरुषों में सापेक्षित रूप से अधिक पुरुषवत लक्षण पाये जाने की कुछ प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार के सह संबंध से व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर सामाजिक रूढ़ि का प्रभाव ही परिलक्षित होता है। पुरुष समलिंग कामियों के अनुसंधानों से भी यह पता लगता है कि समलिंग कामी व्यवहार के लिए शरीर रचना मूलक कारकों की बजाये प्रधानतया अनुभावात्मक कारक ही जिम्मेवार है। इस संबंध में प्रारम्भिक घरेलू परिवेश तथा व्यक्ति के प्रति माता-पिता की अभिवृत्ति ही विशेष महत्व की बात है।

पुरुषत्व-स्त्रीत्व मापनी इस पारिवारिक परिवेश पर निर्भर होती है जिसमें व्यक्ति का पालन होता है। माता अथवा पिता की मृत्यु, माता अथवा पिता के साथ द्वन्द्वपूर्ण संबंध, भाईयों और बहनों की अधिकता जैसे कारक शारीरिक गुणों की पुरुषत्व-स्त्रीत्व प्राप्तांकों से कहीं अधिक घनिष्ठ संबंध रखते हैं। इसके अतिरिक्त इस बात के भी प्रमाण हैं कि पुरुष और स्त्री दोनों में विरोधी लिंग के मानदंड के प्रति विचलन का संबंध दुःखमय और अवांछनीय बाल्यकालीन अनुभवों, टूटे परिवारों तथा माता-पिता के कुसमंजन से भी हैं। इसके विपरीत सुखी आनन्दमय बाल्यकाल से किसी भी व्यक्ति को इस बात के लिए प्रोत्साहन मिलता है कि वह उसकी संस्कृति द्वारा प्रस्तुत पुरुष और स्त्री के उपयुक्त व्यवहार के आदर्श को स्वीकार करे। यह तथ्य कि ऐसे परीक्षणों द्वारा मापित लिंग भेद सांस्कृतिक प्रतिरूपों द्वारा निर्धारित होता है हार्लेड द्वारा उपलब्ध निष्कर्षों से परिलक्षित होता है। जब व्यक्तियों को दिए गए टर्मन-माइल्स एटीट्यूड-इंटरैस्ट अनालिसिस टैस्ट के अनुवाद से यह परिलक्षित हुआ कि उस देश में कुछ थोड़े से ही मद विषयों के अंतर्गत पुरुष और स्त्री के बीच सार्थक भिन्नता उपलब्ध हुई।

व्यक्तित्व का गठन

मनोवैज्ञानिकों ने अपने अनुसंधानों के परिणामों में यह पाया कि पुरुष और स्त्री प्रतिदर्शों (नमूनों) में चर एक दूसरे से भिन्न होते हैं। प्रायः चरों के बीच सह संबंधों

के प्रतिरूपों में अंतर एक चर के माध्य अंतरों से कहीं अधिक प्रभावी होता है। व्यक्तित्व संबंधी अनुसंधान के अनेकों क्षेत्रों में सहसंबंधात्मक प्रतिरूप में ऐसे अंतरों को पहचाना गया है और बहुतसे मामलों में उनकी उपस्थिति को स्पष्ट नहीं किया गया है। इन क्षेत्रों का संक्षेप ही जाना जा सकता है और कुछ मामलों में इनकी अस्थाई व्याख्या की गई है।

दोनों लिंगों के योग्यता और व्यक्तित्व संबंधी कारक विश्लेषण अनुसंधान में अतिव्याप्त प्रतिरूप बार-बार प्राप्त हुए हैं। ऐसे फुटकर अध्ययनों से एक सामान्य परिणाम यह निकाला जा सकता है कि कदाचित स्त्रियां पुरुषों की अपेक्षा कम विभिन्नता रखती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की सांख्यिकी से कम कारक ही उभर कर आते हैं।

शैक्षिक क्षमता तथा उपलब्धि परीक्षणों की प्रागुक्तिक वैधता पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक दिखाई देती है (सीशोर 1962)। तथापि अनुदैर्ध्य अध्ययनों में जिसमें वयस्क होने पर व्यक्तित्व प्रस्थिति का अनुमान विशेष गुण के बाल्यावस्था माप से किया जाता है (कगन और मौस 1962), कुछ क्षेत्रों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अधिक पूर्वानुमान किया जा सकता है। इस तथ्य से कि पुरुषों में उदंडता का स्थाई गुणांक अधिक होता है और स्त्रियों में निष्क्रियता-निर्भरता का स्थाई गुणांक अधिक होता है, यह प्राकल्पित किया जा सकता है कि किसी भी लिंग के विशेष गुण समग्र रूप से उस लिंग समूह में दूसरे लिंग के गुणों से अधिक होते हैं।

विभिन्न व्यक्तित्व चर स्त्रियों और पुरुषों के सामान्य समंजन और लोकप्रियता से विशेषरूप से संबंधित होते हैं। सहसंबंध प्रायः विरोधी संकेत भी होते हैं। इस क्षेत्र में किए गए अध्ययनों का सामान्य संक्षेप यह है कि व्यवहार और अभिवृत्ति की अनुरूपता से संबंधित विशेषतायें स्त्रियों को अधिक सामाजिक पुरस्कार प्राप्त करवाती हैं, पहल अथवा उद्यम तथा स्वतंत्रता पुरुषों को अधिक सामाजिक मान्यता प्राप्त करवाने में सहायता करती हैं। तथापि अनेक विशिष्ट परिणाम इस कथन के अंतर्गत वर्गीकृत नहीं किए जा सकते।

कुछ गुणों जैसे उदंडता तथा स्कूलों में अल्प उपलब्धि का विकास लड़के और लड़कियों में भिन्न-भिन्न होता है। ऐसी और अनेक ऐसी विशेषताओं के वृद्धि वक्रों के आकार में भिन्नता पाई जाती है।

अंतिम खोज में यह परिणाम प्राप्त हुआ है कि पुरुषों और स्त्रियों का विकास भिन्न-भिन्न तरह से होता है। इस प्रकार विकासात्मक संकल्पनाओं से अधिक सफल परिणाम निकाले जा सकते हैं।

लिंग भूमिका संप्रत्यय तथा व्यवहार

1950 से 1960 तक किए गए विकासात्मक अनुसंधानों को लिंग भूमिकाओं के सीखने पर केंद्रित किया गया। समाजवैज्ञानिक ही भूमिका संकल्पना के निरूपण के लिए मुख्यतः उत्तरदायी है परंतु इस संकल्पना का विविध प्रकार के मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व सिद्धांतों से भी उचित तालमेल है। एक दी हुई संस्कृति में लिंग की भूमिका के निर्माण में ऐतिहासिक और जैविक कारक भी सम्मिलित होते हैं। एक बार भूमिका स्थिर हो जाने पर विकासशील बच्चों में पुरुषत्व और स्त्रीत्व व्यक्तित्व के निर्माण में यह अपेक्षा की जाती है कि प्रत्येक व्यक्ति को इन भूमिकाओं के विषय में विस्तृत रूप से जान लेना चाहिए और इसी समय उस भूमिका को भी सीखना चाहिए जो उसके लिंग के अनुरूप उचित मानी गई है। अधिकांश विकासात्मक अनुसंधान का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि भूमिका का सीखना कब और कैसे होना चाहिए तथा कौन इसको सकारात्मक तथा नकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

बच्चे में लिंग भूमिका प्राक्कल्पना के विकास में स्वयं माता और पिता के व्यक्तित्व महत्वपूर्ण कारक होते हैं। किंतु अन्य कई ऐसे साधन हैं जिनसे लड़के-लड़कियों को इसका आभास कराया जाता है कि बोलने, तौर-तरीके, वस्त्रों, खेल-क्रियाओं तथा व्यवहार की अन्य बातों में उनसे क्या अपेक्षा की जाती है।

विद्यालय में प्रवेश के पूर्व ही अधिकांश बच्चों में ऐसी स्पष्ट धारणाएं हो जाती हैं कि लिंग अनुसार उन्हें क्या करना होता है। इस बात के प्रमाण हैं कि मध्यवर्गीय बच्चों की अपेक्षा श्रमिक वर्ग के बच्चों में यह ज्ञान कुछ जल्दी हो जाता है और लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में यह ज्ञान जल्दी होता है। विद्यालयीन बच्चों तथा महाविद्यालयीन छात्रों पर की गई खोज से पता चलता है कि दोनों लिंगों के लिए मान्य गुणों में तथा प्रत्येक लिंग के साथ प्रचलित रूप से मान्य गुणों में भी समनिष्ठ विभिन्नता होती है। यहां यह भी कह दिया जाना चाहिए कि लिंग के प्रकार्यों से न केवल व्यक्तित्व गुणों पर ही किंतु अभिवृत्तियों पर भी प्रभाव पड़ता है। उच्च विद्यालय की बड़ी कक्षा के लड़के-लड़कियों पर किए गए अनुसंधान में अभिवृत्ति प्रतिरूपों तथा व्यक्तित्व विशेषताओं में व्याख्यात्मक संबंध पाये गये। शाब्दिक योग्यता में उत्कृष्ट लड़कों तथा दिक्‌ात्मक योग्यता में उत्कृष्ट लड़कियों में उन व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक व्यक्तित्व विकार दृष्टिगोचर हुए जो हमारी संस्कृतियों में प्रचलित लिंग परंपराओं के अनुरूप अभिवृत्ति प्रतिरूप प्रदर्शित करते हैं।

लिंग भूमिका निदर्शन संबंधी विकासात्मक अनुसंधान में प्रक्षेपण परीक्षण का प्रयोग कर ब्राउन ने यह पाया कि 5 से 11 वर्ष के लड़के पुरुषलिंगी भूमिका के प्रति

अधिक तीव्र अभिरुचि दिखाते हैं, जबकि उसी आयु की लड़कियां स्त्रीलिंग भूमिका के प्रति नहीं। यह निष्कर्ष प्रौढ़ व्यक्तियों की व्यक्त लिंग भूमिका अभिरुचियों से मेल खाता है। ऐसी विभिन्नताओं से हमारी संस्कृति में पुरुषलिंग भूमिका से संबंधित प्रतिष्ठा तथा अन्य सुविधायें परिलक्षित होती हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि भूमिका की विभिन्नता तथा व्यवहार में तदनुसार लिंग भेदों में सांस्कृतिक कारकों का महत्वपूर्ण प्रभावी भाग होता है। यदि व्यवहार में लिंग भेदों में शारीरिक भिन्नताएं योगदान करती भी हैं तो यह योगदान सामान्यता अप्रत्यक्ष तथा सांस्कृतिक कारकों के कारण होता है। वस्तुतः जीव-वैज्ञानिक लिंग भेदों की अपेक्षा ऐसे शारीरिक भेदों के समाजिक प्रभाव ही हैं जिनसे दोनों लिंगों में विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व का विकास होता है।

तदात्मीकरण

यह जानने के लिए कि कितना सीखा जा सकता है मनोविज्ञानिकों ने तदात्मीकरण की संकल्पना का प्रयोग किया। इस शब्द का सटीक अर्थ प्राप्त करना असंभव न होते हुए कठिन आवश्यक है। परंतु लिंग भेद संबंधी अनुसंधानों में जिस विशेष अर्थ में इस शब्द को प्रयोग किया गया है उससे यह प्रतीत होता है कि इसका संबंध इस बात से है कि व्यक्ति अपने माता-पिता के मानकों और अभिवृत्तियों को आत्मसात करता है। कुछ अध्ययनों में ऐसे लड़कों की तुलना जिनके परिवार में पिता साथ रहते हैं अन्य लड़कों से की गई, जिनके परिवार में पिता स्थायी अथवा अस्थायी रूप से बाहर रहते हैं। यह पाया गया कि लिंग भेदी व्यवहार जैसे उदंडता (अग्रधर्षण) उन लड़कों में अधिक थी जिनके परिवारों में पिता साथ रहते हैं। इससे पता चलता है कि लिंग भूमिका तदात्मीकरण से ही प्राप्त होते हैं। यह तथ्य कि उन बच्चों में भी लिंग प्रकार के व्यवहार विकसित होते हैं जिनके परिवारों में पिता अनुपस्थित रहते हैं यह प्रदर्शित करता है कि अपने ही लिंग के माता-पिता से तदात्मीकरण ही एकमात्र साधन नहीं है जिससे ऐसी भूमिकायें प्राप्त की जा सकती हैं। अन्य अध्ययनों में यह पाया गया कि प्राग्विद्यालयी बच्चों को इस बात का ज्ञान होता है कि उनके माता-पिता लड़के तथा लड़कियों से किस प्रकार के व्यवहार की आशा रखते हैं और वे उनकी आशाओं के अनुरूप व्यवहार करते हैं।

इस प्रकार के सभी अन्वेषणों में प्रचलित अभिवृत्तियों में अनेक वैयक्तिक अनियमिततायें तथा अपवाद पाये गये हैं। पुत्र अपने पिता से और पुत्री अपनी माता से जो कुछ भी सीखती है उसकी प्रक्रिया समान नहीं हो सकती। माता की भूमिका के अधिकांश पक्षों को पुत्री द्वारा देखने तथा उसका अनुकरण करने से सीखा जाता

है जबकि लड़कों को अपने पिता के व्यवहार को देखने और उसका अनुकरण करने के कम ही अवसर प्राप्त होते हैं। इसलिए लड़कों को अपने आप गढ़े हुए अर्थों के आधार पर ही आगे बढ़ना होता है। त्वरित सामाजिक परिवर्तन लिंग भूमिकाओं की समस्या को और भी कठिन बना रहे हैं। बच्चा जो भी अपने घर में सीखता है वह वयस्क हो जाने पर उपस्थित होने वाली परिस्थितियों के पूर्ण अनुरूप नहीं हो सकता। यह और इसी प्रकार के अनेक विचारों से यह परिणाम निकलता है कि लिंग उचित व्यवहार का सीखना अत्यंत जटिल प्रक्रिया है और इसे अभी अधूरा ही समझा गया है।

अनुसंधान के सामान्य महत्व

जैसा कि प्रारंभ में कहा गया है लिंग विभेदों का अध्ययन महत्वपूर्ण व्यावहारिक प्रश्नों का उत्तर देने तथा इस संबंध में अपने ज्ञान में वृद्धि करने के लिए किया गया है कि व्यक्तित्व में कितने प्रकार के व्यक्तिगत भेद पाये जाते हैं। यदि लिंग विभेदों की संकल्पना में से जैविक तथा सामाजिक निर्धारकों को अधिक उजागर किया जा सकता है, तब कदाचित इससे अधिक जटिलता वाले प्रतिरूपों को खोजा जा सकता है। व्यावहारिक और सैद्धांतिक दोनों ही उद्देश्य अनुसंधान की योजना और संचालन को प्रभावित करते हैं। 1960 के मध्य तक सैद्धांतिक उद्देश्यों का ही आधिपत्य रहा है।

लिंग विभेद संबंधी अनुसंधान मनोवैज्ञानिकों, नृवैज्ञानिकों तथा समाज-वैज्ञानिकों तथा जीव वैज्ञानिकों का मिलन स्थल है। यदि किसी पर्याप्त सिद्धांत की उपलब्धि हो जाती है तो वह अनेक स्रोतों से प्राप्त होने वाले विचारों के संश्लेषण का प्रतिनिधित्व अवश्य करेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. एडकिस, डोरोथी सी., बुद्धि परीक्षण प्राप्तांकों पर अभ्यास के प्रभाव, जे. एजु. साइकॉलोजी, 1937, 28, 222, 231।

2. अनासतासी, एन्न., अभ्यास एवं परिवर्तनशीलता, साइकॉलोजी, मोनो. 1934, 45 सं० 5।

3. अनासतासी एन्न., बुद्धि और परिवार का आकार, साइकॉलोजी, बुले. 1959, 53, 187, 209।

4. ओवेन्स, डब्ल्यू. ए. जूनियर, वैयक्तिक भेदों पर अभ्यास के प्रभावों के अध्ययन की नई प्रणाली जे. एक्स. साइकॉलोजी, 1942, 30, 180-183।

5. स्काट, जे. पी. व्यक्तित्व एवं बुद्धि के आनुवंशिक अध्ययन की नवीन दिशायें, यूजेन, न्यूज. 1953, 38, 97-101।

6. अनासतासी, एन्न. साइकॉलोजिकल टैस्टिंग, न्यू. या. मैकमिलन, 1954।

7. ऐलेन, जी. एवं कॉलमन्न एफ. जे. युग्मजों में मानसिक मंदन की आवृत्ति एवं प्रकार, अमेरि. जे. ह्यूम, जेनेट, 1955, 7, 15-20।

8. विनेस, रुथ एवं हीली, जे. युग्मजों की बुद्धि जे. जेनेट. साइकोलोजी, 1936, 49, 474-478।

9. टर्मन, एल. एम. प्रतिभावान की जीवनी के प्रति मनोवैज्ञानिक उपागम, साइंस, 92, 293-310।

10. जोरडन ए. एम. मानसिक गुणों में लिंग भेद, हाय. स्कूल. जे. 1937, 20, 254-261।

11. होबसन, जे. आर. प्राथमिक मानसिक योग्यताओं में लिंग-भेद, जे. एजू. रेस, 1947, 41, 126-132।

12. जोनसन, विनिफ्रेड बी. एवं टर्मन, एल. एम. 1920 के पश्चात् प्रकाशित "मनोवैज्ञानिक लिंग-भेद" पर साहित्य की कुछ विशिष्टताएं, जे. साइकोलोजी, 1940, 9, 327-336।

13. डेविस, ए. एवं हैविगगर्स्ट, आर. बालक में सामाजिक वर्ग एवं रंग विभिन्नता, अमेरि. सोशल, रिव्यू, 1946, 11, 698-710।

14. मैक आर्थर, सी. मध्य एवं उच्च वर्गों के बीच व्यक्तित्व भेद, जे. एबनारम. सोश. साइकोलोजी, 1955, 50, 247-254।

15. डोबजेंसकी, टी. मनुष्यों के बीच विभिन्नताओं की आनुवंशिक प्रकृति, एस. पर्सन्स येल. यूनि. प्रेस 1950, पृ० 86-155।

शब्दावली

अंकन, अंत: मुद्रण	imprinting
अंकीय परिकलित्र	digital computer
अंत: प्रज्ञात्मक	intuitive
अंतरंगी	interiorized
अंतर्निरीक्षण	introspection
अंतर्नोद	drive
अक्षांश	latitude
अगम्यगमन	incest
अतिव्यापन	overlapping
अधिमान्यता	preference
अनुज्ञात्मक	permissive
अनुदेश	instruction
अनुबोधन	prompting
अनुशिक्षण	tutoring
अन्योन्यक्रिया	interaction
अपवादी	efferent
अप्रावरोध	disinhibition
अभिघातज	traumatic
अभिनति	bias
अभिमुखता, अभिविन्यास	orientation
अभिवाही	afferent
अभ्युपगम	postulate
अभ्यसन	habituation
अमूर्तता	abstractness
अव-आत्मन्	sub-self
अवधान	attention
अवधानात्मक व्यवहार	attentional behaviour
अवमानवीय	infrahuman
अविकरण	irradiation

अविपर्यासि-विवर्तन	nonreversal shift
असमरूप यमज	nonidentical twins
आंतरीकरण	internalisation
आकलन	estimation
आकस्मिकता	contingency
आकांक्षा का स्तर	level of aspiration
आगत	input
आत्म संप्रत्ययीकरण	self-conceptualization
आत्मसात्करण	assimilation
आत्मानुकूलन	self-adaptation
आद्यरूप	prototype
आधारिक संरचना	infrastructure
आनुभविक वैधीकरण	empirical validation
आनुवंशिक	hereditary, genetic
आभ्यांतरीकृत	interiorized
आयत चित्र	histogram
आरेखीय सदृशरूप	graphic analogue
आसन्न	immediate, imminent
उच्चारण करना	articulate
उत्तेजना स्तर	stimulus level
उपागम	approach
उभयलिंगता	biosexuality
उभयाक्षर	ambisyllabic
ऊतक	tissue
ऊतकीय संरचना	tissue structure
ऊष्मा स्पर्श	heat touch
एककोषी जीवाणु	unicellular bacteria
एकाक्षरता	monosyllable
एल्गोरिथम	algorithm
कथानक संप्रत्यक्षण	thematic apperception
कक्षांतर प्लुति	class skipping
कर्षण शक्ति	valence
काय संवेदनात्मक	somesthetic
कायिक	bodily

कारणता	causuality
किशोरोपचारी	juvinile
क्रियाप्रसूत	operant
क्रियाप्रसूत अनुकूलन	operant conditioning
क्रियाप्रसूत क्रिया	operant activity
कूट संकेतक	coder
क्रमचय	permutation
कृतक-विश्वास	make-beliefs
क्लासिकी अनुकूलन	classical conditioning
खंड	fractional
खगोल भौतिक	astrophysics
ग्राहिता	susceptibility
ज्ञानमीमांसा	eipistemology
घ्राण	alfactory
चलन	locomotion
चयनात्मक प्रजनन	selective breeding
चाक्षुष	visual
चिकित्सात्मक	therapeutic
जननिक	genetic
जनित्र	generator
जीवन-पर्यावरण	life environment
डिडाकमेट्री	didakametry
तंत्रिकाताप	neurosis
तंत्रिका-शरीर क्रियात्मक	neurophysiological
तंद्रिल	hypnagogic
तादात्म्य	identification
तुल्यता	equivalence
तृप्ति	satition
त्रिक	triplet
दिवास्वप्न	day dreams
दिशांतर आभास	parallax
द्विभाजन	dichotomy
द्वि-विमीय	two dimensional
दुखाभासी	dysphoric

देशिक	spatial
द्वैधवृत्ति	ambivalence
नवीन प्रक्रिया	innovation
निकष	criterion
निकष संदर्भ अध्यापन	criterion reference teaching
निगमन	deduction
निपुणता	competency
निर्मोचक	releaser
निष्पादन	performance
निष्पादन प्रौद्योगिकी	performance technology
निष्पादन विशिष्टीकरण प्रौद्योगिकी	performance specification technology
नैमित्तिक सीखना	instrumental learning
परितोषण	gratification
परिधीय क्रिया	peripheral activity
परिमापी	parameter
परिहार	avoidance
परिवीक्षण	monitoring
पलायनवाद	escapism
पश्चगामी	backward
पार्श्वचित्र	profile
पार्श्व परिपथ	parallel circuits
पुनर्बलन	re-inforcement
पुनरुत्पाद्य	reproducible
पूर्वपद	antecedent
पूर्वसर्ग	preposition
पूर्वापेक्षण	anticipation
प्रकरण	episode
प्रक्षेपण	projection
प्रच्छन्न प्रतिक्रियायें	covert responses
प्रजनन	generation
प्रतिगमन	regression
प्रतिमान	paradigma
प्रतिधारण	retention
प्रतिधारकता	retentiveness

प्रतिबंध	constraints
प्रतिभाशाली	intellectually gifted
प्रतिमावली	imagery
प्रतिरूपण	simulation
प्रतिवर्त	reflex
प्रतिवर्ती क्रियाएं	reflexive actions
प्रतिस्थानिक	substitute
प्रतिस्थापन मूल्य	substitution value
प्रत्यक्ष अनुक्रियाएं	overt responses
प्रत्यक्षण	perception
प्रात्यक्षिक स्थिरता	perceptual constancy
प्रणाली विज्ञान	methodology
प्रमस्तिष्क वल्कुट	cerebral-cortical
प्रभाव नियम	law of effect
प्रभाव्यता	susceptibility
प्रशिक्षण अंतरण	transfer of training
प्रसरण	variance
प्रसामान्य संभाव्यता वक्र	normal probability curve
प्रावरोध	inhibition
प्रेषित धन	remittance
बहुकोशिक	multicellular
बहुभुज	polygon
बहु विकल्प प्रश्न	multiple choice question
बिंब	image
बिंबावली	imagery
बुक फोर्मेट	book format
बोधगम्यता	intelligibility
भूमिका निर्वाह	role taking
भ्रम	illusion
भ्रांति	delusions
भ्रूण	fetal
मंदित मना	mentally retarded
मध्यस्थता	mediation
मनस्तापी	psychotic

मनोगतिक	psychodynamic
मनोभौतिक मापन	psychophysical scaling
मनोविदलता	schizophrenia
मनोविलास	reverie
मानसिकतावाद	mentalism
मुक्त साहचर्य	free association
मुखरति कुंठा	oral frustration
मूल्य निर्धारण	appraisal
मेधावी	brilliant
युग्मित सहचर	paired associate
रात्रिक स्वप्न	nocturnal dream
रेखीय कार्यक्रमण	linear programming
लघुगणक	logarithms
लेखिम	grapheme
वंचन	deprivation
वर्गीकरण विज्ञान	taxonomy
वाहिका प्रसरण	vasodilation
विकर्षण	distraction
वल्कुट	cortical
विचारण	ideation
विद्युत प्रमष्तिक लेख	electrocephalogram
विपर्ययी	reversible
विपर्यास-विवर्तन	reversal shift
विभाज्यता	divisibility
विभेदीकरण	discriminisation
विभेदी सीखना, विभेदात्मक सीखना	discrimination learning
विभ्रांति	hallucination
विरेचक	cathartic
विलोभन	seduction
विलोम	antonym
विविक्त	discrete
विशदीकरण	elucidation
विशिष्टीकरण	specialisation
विश्लेषण प्रौद्योगिकी	analysis technology

व्युत्पत्ति	derivation
व्यनुकलन	adaptation
व्यवहारवादी	behaviouristic
शब्दार्थ	semantic
शब्दरूपात्मक	morphological
शाब्दिक बुद्धि परीक्षण	verbal intelligence test
शाब्दिक मध्यस्था	verbal mediation
शैक्षिक प्रौद्योगिकी	educational technology
शैलीगत संगतियां	stylistic consistencies
श्रेणी सहसंबंध	rank correlation
संकर	hybrid
संकेत	notation
संकोचन	tonus
संज्ञान	cognition
संज्ञानात्मक	cognitive
संज्ञानात्मक शैली	cognitive style
संगति	consistency
संयोग; संयोजन	combination
संतांत्रिकी	cybernatic
संपुट	capsule
संप्रत्यक्षी अभिज्ञान	perceptual recognition
संप्रत्यय निर्माण	concept formation
समंजन	accommodation
संयोजी	conjuctive
संलक्षण	syndrome
संवेदनात्मकता	sensitivity
संवेदी तीक्षणता	sensory acuity
संवेदी प्रकारता	sensory modalities
संसक्तता	coherence
संस्कृति मुक्त परीक्षण	culture free test
सकारात्मक	positive
समुपयोजन	exploitation
सहचारी	associative
सदिश	vector

समजातीयता	homogeneity
समन्वेषी	exploratory
समरूप यमज	identical twins
समस्थिति	homeostasis
समाकलित परिमेय सूचकांक	integral rational indices
समानता	equivalence
समाजमिति	sociometry
समुच्चयी सिद्धांत	set theory
समुच्चय प्रभाव	cummulative effect
सातत्य	continuity
सातत्यक	continum
सारणीयन	tabulation
साहचर्य समूहन	associative clustering
सीखने का अंतरण	transfer of learning
सौकर्य	facilitation
स्तन्य त्याग	weaning
स्थान विनिमय	transposition
स्थानापन्न	substitute
स्फूर्ति परीक्षण	agility test
स्वचालन सिद्धांत	automata theory
स्वनिम	phoneme
स्वर गुण	vowel quality
स्वराघात	pitch
स्वस्थितिग्राही	proprioceptive
स्व सीखना	auto learning
हरात्मक माध्य	harmonic mean

विशेषज्ञों का परिचय

1. प्रो. सच्चिदानन्द ढौंडियाल
शिक्षा आचार्य
स्नातकोत्तर अध्ययन और अनुसंधान विभाग,
विद्या भवन टीचर्स कालिज,
उदयपुर (राजस्थान) ।

2. प्रो. सी. एल. आनन्द
शिक्षा आचार्य
शैक्षिक अनुसंधान और अध्ययन विभाग,
उत्तर-पूर्वी पर्वतीय विश्वविद्यालय,
अपर नोंगथाईमाय
शिलौंग ।

3. श्री एस. पी. मलिक
प्राध्यापक
कप ग्रुप
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
श्री अरविन्दो मार्ग,
नई दिल्ली ।

4. डा. नरेन्द्र वद्या
आचार्य
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय,
अजमेर (राजस्थान) ।

5. प्रो. सी. एच. के. मिश्रा
आचार्य
अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,
श्री अरविन्दो मार्ग,
नई दिल्ली ।

84-M/P(N)610MofE&C—1,000—19-2-86—GIPS

© भारत सरकार 1985

पी०ई०डी० 572
1000-1985(डी०एस०के०-II)

मूल्य : देश में—रू० 58.00; विदेश में—पौंड 6.76 अथवा 20 डॉलर 88 सेंट्स

1986

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, शिमला द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन-नियंत्रक, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित।